महिला-माला—मणि १३

धात्री-शिक्षा

संपादिका—
कृष्णकुमारी

धात्री-शिक्षा

(Midwifery in Hindi)

लेखक

वैद्यराज श्रीअत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार, भिषग्रत्न

स्वास्थ्य-विज्ञान और शिशु-पालन

के रचयिता

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रथम संस्करण

सजिल्द २।)] संवत् १९८९ वि० [सादी २)

भूमिका

प्रसव यद्यपि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, फिर भी वेदना के प्रशमन और प्रसूति के स्वच्छ रहन-सहन के लिये चिरकाल से मनुष्य-जाति को सहायता लेने की आदत पड़ गई है—आवश्यकता हो गई है। यह आवश्यकता इतनी बढ़ गई है कि हमें प्रसववती का ध्यान होता है, तो उसी समय धात्री की भी चिंता होने लगती है। प्रसव-विज्ञान ने प्रत्येक सभ्य देश और समाज में पर्याप्त विकास पाया है। हिंदी में इस विषय की पुस्तकों का सर्वथा अभाव ही है। प्रसूति-तंत्र का प्रकाशन कर इस कार्यालय ने इस अभाव की पूर्ति की थी। प्रस्तुत पुस्तक उसका दूसरा प्रयास है। लेखक ने संस्कृत, अँगरेज़ी, बँगला और गुजराती-पुस्तकों के आधार पर इसे लिखा है। पुस्तक में धात्रियों की शिक्षा से संबद्ध प्रत्येक विषय सरलता-पूर्वक लिखे और समझाए गए हैं। कठिन स्थानों पर चित्रों की सहायता से विषय स्पष्ट किया गया है। प्रसव-संबंधी पूर्व और पश्चिम के विचार और उपचार इस पुस्तक में सन्निविष्ट होने के कारण यह संस्कृत-अँगरेज़ी न जाननेवालों के लिये अत्यंत उपयोगी है। धात्री-विद्या चिकित्सा-शास्त्र का ही अंग होने के कारण यह पुस्तक वैद्यों, हकीमों तथा आयुर्वेदिक स्कूलों और कॉलेजों के छात्रों के अध्ययन की चीज़ है। प्रत्येक माता और नववधू को चाहिए कि इस पुस्तक का अनुशीलन कर उसकी शिक्षाओं से पूरा-पूरा लाभ उठावें, और प्रसूति के भयंकर रोगों से मुक्त रहें।

वसंत-पंचमी
१९८९

संपादिका

विषय-सूची

प्रकरण		पृष्ठ
१. प्रसवकालीन स्वच्छता	... ...	१
२. वस्ति-गह्वर	... ...	१०
३. अंतरावयव	... ...	१८
४. गर्भ का विकास	... ...	२८
५. गर्भ-स्थिति के पश्चात् माता के अंगों में परिवर्तन	...	५१
६. गर्भ-स्थिति की पहचान	... ...	५६
७. गर्भ-स्थिति-काल में स्वास्थ्य-संबंधी नियम	...	७८
८. गर्भवती की परीक्षा	... ...	९१
९. प्रसूति	... ...	९५
१०. प्रसूति के घटक	... ...	१०१
११. साधारण प्रसूति-प्रबंध	... ...	११४
१२. शिरोदय तथा प्रसूति की प्रक्रिया	... ...	१२१
१३. साधारण प्रसूति की व्यवस्था	... ...	१३२
१४. फ़ेस प्रेजनटेशन	... ...	१४६
१५. नितंबोदय	... ...	१५३
१६. तिर्यक् उदयन	... ...	१६४
१७. बहुगर्भ	... ...	१६६
१८. सूतिका की अवस्था	... ...	१७३
१९. गर्भावस्था के दुःख	... ...	१८०
२०. गर्भ और गर्भ-कला के रोग	... ...	१८४

प्रकरण		पृष्ठ
२१. वृक्क के रोग	... ...	१८८
२२. गर्भ-पात, गर्भ-स्राव और पूर्व-प्रसव	... ...	१९३
२३. गर्भस्थान के बाहर रहनेवाला गर्भ	... ...	१९८
२४. प्रसूति के प्रारंभ होने से पूर्व का रक्त-स्राव	...	२०१
२५. सहसा प्रसव, गर्भाशय की अचेतनता और कमल का अंदर रहना	... ...	२०७
२६. वस्ति-प्रदेश का बेडौलपन	... ...	२१२
२७. फँसे हुए नितंब तथा स्कंध	... ...	२१८
२८. कठिन प्रसूति	... ...	२२२
२९. प्रसूति के पीछे होनेवाला रक्त-स्राव	... ...	२३१
३०. शिशु-जन्म के समय होनेवाले आघात	... ...	२३८
३१. 'सैप्रीमीय' और 'सैप्टीक इन्फ़ैक्शन'	... ...	२४३
३२. सूतिकावस्था के रोग	... ...	२४९
३३. 'ऑब्स्ट्रैक्लीकल ऑपरेशन' (अस्थि-छेदन)	...	२५६
३४. परिशिष्ट	... ...	२६९

चित्र-सूची

१. हाफ़टोन ब्लॉक

पृष्ठ

१. पूर्ण समय का गर्भाशय १

२. गर्भ का विकास ३०

३. उदयन के भिन्न-भिन्न रूप ४७

४. शिरोदय ४७

५. गर्भ की मासिक वृद्धि ६१

६. अंतःकंदुकोत्क्षेपणी ६६

७. उदर-परीक्षा ९२

८. चेहरे की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ १४७

९. अवतरण के भिन्न-भिन्न रूप १२६

१०. शिरोदय के भिन्न-भिन्न रूप १२२

११. चिह्नित स्थानों पर भिन्न-भिन्न स्थितियों का शब्द उदर के ऊपर सुना जा सकता है १४७

१२. तिर्यगुदयन के भिन्न-भिन्न रूप १६६

१३. युगल-प्रसव १६८

१४. गर्भाशय का संकुचित होना १७४

१५. योनि-मार्ग में स्कंध का फँसना २१३

१६. नाल का बाहर निकलना २२०

१७. सिर के पार्श्व में हाथ २२७

१८. न्यूकल पोज़ीशन २२७

१९. फँसे हुए स्कंध को बाहर निकालने की विधि ... २२८

२. लाइन ब्लॉक

पृष्ठ

१. शरीर में वस्ति का स्थान ११

२. वस्ति-गह्वर की अस्थियाँ १२

३-४. वस्ति-गह्वर की माप (२ चित्र) ... १२ और १५

५. बाह्य वस्तिमापक १६

६. अंतःवस्तिमापक १७

७. बाह्य जननेंद्रिय २०

८. स्त्रियों की अंतःजननेंद्रियाँ २३

९. अंतरीय स्त्री-जननेंद्रियाँ २४

१०-१२. भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति (३ चित्र) २८, २९ और ३०

१३. गर्भाशय-कला की साधारण रचना ३१

१४. गर्भ-कला की रचना ३१

१५. गर्भ-कला और भ्रूणावरण ३२

१६. कमल की उत्पत्ति ३४

१७. शिशु के कपालों के भिन्न-भिन्न व्यास ४०

१८. शिशु के कपालों की स्यूतियाँ ४२

१९. भ्रूण का रक्त-संचार ४४

२०-२३. गर्भस्थ बालक के उदय के आसन (४ चित्र) ... ४९

२४. हीगर साइन ६४

२५. श्रवण-परीक्षा ७०

२६-२९. स्पर्शन-परीक्षा (४ चित्र) ७१

३०. 'प्रेग' की विधि १६०

३१. 'स्मेली-वीट' की विधि १६१

३२. कमल के गर्भाशय में भिन्न-भिन्न रूप २०१

३३. सिंपल फ्लैट पैलविस २१३

पृष्ठ

३४. रीकेटी फ़्लैट पैलविस २१३

३५. जनरल कँट्रैक्स पैलविस २१४

धात्री-शिक्षा

उत्तम धात्री

"बहुशः प्रजाता, सौहार्दयुक्ता, सततमनुरक्ता, प्रदक्षिणाचारा, प्रतिपत्तिकुशला, प्रकृतिवत्सला, त्यक्तविषादा, क्लेशसहिष्णु-रभिमता ।" (आत्रेय)

१. बहुशः प्रजाता = जिसने अनेक प्रसव कराए हैं ।
२. सौहार्दयुक्ता = सौजन्य-स्वभाववाली ।
३. सततमनुरक्ता = प्रेम-मित्र-भाव रखनेवाली ।
४. प्रदक्षिणाचारा = कर्म-कौशल्य में चतुर ।
५. प्रतिपत्तिकुशला = उत्तम प्रतिभा(सूझ)वाली ।
६. प्रकृतिवत्सला = स्वभाव से ही प्रेम रखनेवाली ।
७. त्यक्तविषादा = आलस्य-रहित ।
८. क्लेशसहिष्णुः = दुःख को उठानेवाली ।
९. अभिमता = धात्री चाहिए ।
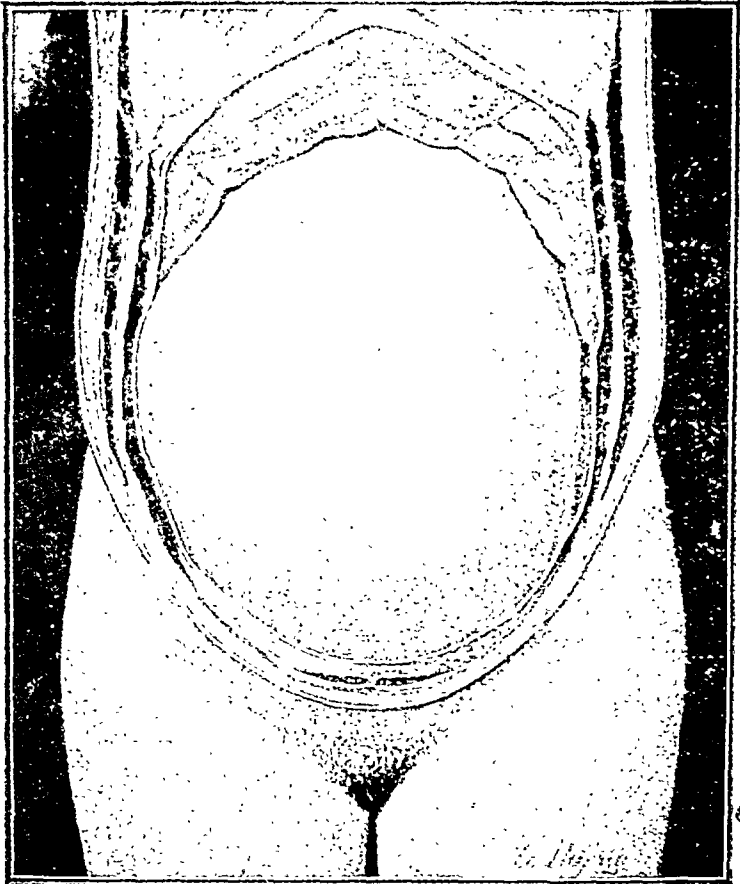
चित्र १—पूर्ण समय का गर्भाशय

पहला प्रकरण

प्रसवकालीन स्वच्छता

"सदा नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवाससा त्वया भवितव्यम्। तत्कस्य हेतोः ? हिंसाविहाराणि महावीर्याणि रक्षांसि धनपतिकुबेरानुचराणि मांसशोणितप्रियत्वात् व्राणिनं नित्यमुपसर्पन्ति । सत्कारार्थं जिघुंक्षनि वा कदाचित् ।"

"कृत्यानां प्रतिघातार्थं तथा रक्षोभयस्य च ;
रक्षाकर्म करिष्यामि ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ।"

(सुश्रुत)

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि धात्री-ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने में सबसे प्रथम और आवश्यक वस्तु यदि कोई है, तो 'ऐसेप्सीस' अर्थात् शुद्धता का ज्ञान है। शुद्धता का ज्ञान जिस प्रकार एक चिकित्सक के लिये आवश्यक है, उसी प्रकार एक धात्री के लिये भी। अतः आवश्यक है कि इस शिक्षा का श्रीगणेश इसी विषय से किया जाय।

'ऐसेप्सीस' अर्थात् स्वच्छता को समझने के लिये शब्दों का ज्ञान अत्यावश्यक है। यथा 'माईक्रोओरगेनीज़्स' अर्थात् बैक्टीरीया या जीवाणु। ये अत्यंत सूक्ष्म जंतु हैं, जो साधारण आँखों से नहीं देखे जा सकते। इन्हें देखने के लिये अन्य शक्तिशाली यंत्रों (हाई पावर माइक्रसकोप) की आवश्यकता होती है, जिनकी सहायता से ये अपने वास्तविक स्वरूप से कई गुने बड़े दिखाई देते हैं। इनकी रचना दो-तीन प्रकार की होती है। कोई तो लकीर के समान लंबे होते हैं

(वैसीलस), और कोई गोल (कोकाई) । इनमें से कुछ शरीर के लिये उपयोगी होते हैं, और कुछ शरीर को नष्ट करनेवाले एवं नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं। इन दूसरे प्रकार के जीवाणुओं को 'रोगोत्पादक जीवाणु' (पैथोजैनिक-माईक्रोऑर-गेनिज़्म) कहते हैं।

भिन्न-भिन्न रोगों को उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओं के दो भाग किए गए हैं। एक को 'सैप्रोफाइट्स' कहते हैं और दूसरे को 'पैरासाइट्स'। प्रथम प्रकार के जीवाणु वनस्पति में सड़ाँद उत्पन्न करते हैं। वायु-मंडल में ये अगणित संख्या में उपस्थित रहते हैं। जब तक मनुष्य का शरीर सशक्त होता है, तब तक ये किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं कर सकते। दूसरे प्रकार के जीवाणु (पैरासाइट्स) जीवित मांस अथवा वनस्पति खाकर जीवन-निर्वाह करते हैं। ये सूक्ष्म निर्बल तंतुओं पर आक्रमण करके रोग उत्पन्न करते हैं।

प्रसूति-ज्ञान में पूय उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओं से रक्षा करने का ज्ञान अत्यावश्यक है। कारण, प्रसूता स्त्री में प्रसव से पूर्व या पश्चात् होनेवाले रोगों का यह मुख्य कारण होता है। इस रोग को 'सैप्सीस' या 'सैप्टीक इन्फैक्शन' कहते हैं। कारण, यह रोग शरीर के जीवित तंतुओं पर पैरासाइट के आक्रमण से उत्पन्न होता है।

'स्ट्रैलाईज' अर्थात् जीवित जीवाणुओं को नष्ट करना; 'एसैप्टीक' सैप्टीक जीवाणुओं से रहित; 'एंटीसैप्टीक' जीवाणुओं को नाश करनेवाले पदार्थ; 'सर्जिकल क्लीनलीनैस' अर्थात् शल्यकर्म के समय की स्वच्छता; अस्थि-छेद करते समय अथवा प्रसव के समय (पूर्व एवं पश्चात्) कार्य में आनेवाली सब वस्तुओं को जीवा-णुओं से पृथक् रखना अभिप्रेत है। सर्वथा सरजिकल क्लीनलीनैश रहे; यह बात सोलह आने असंभव है। कारण, वायु में हर समय हज़ारों प्रकार के असंख्य जीवाणु उपस्थित रहते हैं। उनसे वायु-

मंडल स्वच्छ रह सकेगा, यह कल्पना ही असंभव है। अतः हाथ, रुई, पट्टी, धातु से बने सामान, औज़ार आदि वस्तुओं को 'एंटी-सैप्टीक' पदार्थों से या गरमकर जंतु-रहित कर सकते हैं। इस क्रिया को 'स्टरलाईजेशन' कहते हैं।

रोगोत्पत्ति रोकने की विधि—एक स्वस्थ स्त्री बिना किसी पीड़ा या सहायता के सुख-शांति-पूर्वक शिशु उत्पन्न करे, तो उसे किसी प्रकार का रोग नहीं होता। परंतु यदि उसकी योनि-मार्ग से परीक्षा की जाय, अथवा अन्य कोई शल्यकर्म किया जाय, तो रोगोत्पत्ति होना संभव है। शरीर में कोई ऐसी रचना होनी आवश्यक है, जो बाह्य रोगोत्पादक जीवाणुओं तथा अंदर उत्पन्न होनेवाले जीवाणुओं को नष्ट कर सके या अंदर न जाने दे। प्रसव के आरंभ होने पर स्वस्थ योनि-मार्ग में एक द्रव पदार्थ आ जाता है, जिससे योनि स्निग्ध हो जाती है। यह पदार्थ योनि-मार्ग और कमल से आता है। इस द्रव में असंख्य जीवाणु होते हैं। परंतु वे रोगोत्पादक नहीं, अपितु रोगों से बचानेवाले होते हैं। इस द्रव को हम 'एंटीसैप्टीक' कह सकते हैं। ये जंतु एक प्रकार का अम्ल उत्पन्न करते हैं, जिसे 'लैक्टिक एसिड' कहते हैं। रोगोत्पादक जंतु इस अम्ल में जीवित नहीं रह सकते, अतः वे योनि में मर जाते हैं। इसके अतिरिक्त कमल का चिक्कण पदार्थ, जिसको 'ओपरक्युलम' कहते हैं, गर्भवती स्त्री की रोगोत्पत्ति से रक्षा करता है। इस 'ओपरक्युलम' का इतना प्रभाव है कि इससे ऊपर का भाग सर्वथा जीवाणु-रहित होता है। परंतु इससे निचले स्थान में असंख्य जीवाणु होते हैं। प्रसव के पश्चात् बहुत-से जंतु योनि-मार्ग से बाहर निकल आते हैं। प्रारंभ में झिल्लियाँ फट जाती हैं, और गर्भ-जल बह जाता है। इसके साथ योनि-मार्ग स्थित जंतु भी धोए जाते हैं। इसके पीछे शिशु के आने के लिये योनि-मार्ग

चौड़ा हो जाता है। फिर गर्भ-जल एवं कमल के साथ बहुत जंतु बाहर आ जाते हैं। इस प्रकार शिशु की उत्पत्ति के पीछे रोगोत्पत्ति से रक्षा हो जाती है।

अब प्रश्न होता है कि जब परमात्मा ने रोगोत्पत्ति से बचने के पूर्ण साधन दिए हैं, फिर किस प्रकार रोग उत्पन्न हो जाते हैं? निम्न-लिखित तीन कारणों से रोगोत्पादक जीवाणु योनि-मार्ग में प्रविष्ट हो सकते हैं—

१. अस्वच्छ हाथों से।

२. अस्वच्छ औज़ारों से।

३. अपनी उँगलियों अथवा हथियारों से योनि-मार्ग में या बाह्य भाग में अस्वच्छ वस्तुओं को प्रविष्ट करने से।

प्रथम कारण से बचने के लिये आवश्यक है कि अपने हाथों को ख़ूब साफ़ किया जाय। इसके लिये निम्न-लिखित विधि रोटनडा हॉस्पिटल में व्यवहार की जाती है—

(१) अपने हाथों को कोहनी तक नंगा करके नख बहुत सूक्ष्म रूप से काट देने चाहिए। फिर साबुन (कार्बोलिक साबुन) तथा नेलब्रश के साथ नखों को पाँच मिनट तक पूर्ण रूप से घिसकर साफ़ कर देना चाहिए। फिर उँगलियों को बीच से, पीछे से और आगे से साफ़ करना चाहिए। फिर पानी के नल में हाथों को धोकर 'लाईजोल लोशन' में हाथों को ब्रश से साफ़ करके नल में धो देना चाहिए। पीछे 'स्प्रीट-परक्लोराईड्' (एक भाग हाइड्राजराई परक्लोराईड् और १००० भाग रेक्टीफाईटस्प्रीट) में हाथों को मलकर साफ़ करें। इससे हाथों की चिकनाई निकल जाती है। फिर पानी से हाथ धोकर हाथों को 'पर क्लोराईड् ऑफ़् मरकरी' या 'विनीआयोडाईट और मरकरी' के घोल में ($\frac{१}{१०००}$) पाँच मिनट तक भिगो रक्खें।

इस प्रकार हाथ स्वच्छ करने में कम-से-कम १९ मिनट लग जाते

हैं। हाथों की सफ़ाई में कभी जल्दी नहीं करनी चाहिए । हाथों से फिर अस्वच्छ वस्तु न छूना चाहिए।

योनि-मार्ग या गुदा में परीक्षा करते समय किसी प्रकार का भी चिक्कण पदार्थ व्यवहार में न लाना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो उसे भी स्वच्छ कर लेना चाहिए। 'कार्बोलिक वैज़लीन' उत्तम नहीं है। कारण, उसमें अस्वच्छता का होना पूर्ण संभव है। चिक्कण पदार्थ रखने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि पदार्थ को 'कौलेप्सोवल ट्यूब' में रक्खा जाय। 'ल्युब्रीकेट' के लिये व्यवहार में लाने के लिये 'लाईजोल' का घोल उत्तम है। इसके अतिरिक्त 'ग्लैसरीन परक्लोराईड्' (१०००) भी उत्तम है। कार्बोलिक तेल उत्तम नहीं। कारण, उसको जंतु-रहित बनाने में अम्ल की मात्रा बढ़ानी पड़ती है, जो हानिकारक होती है *।

इसके पीछे स्टरलाईज्ड रबर का दस्ताना अथवा 'फींगर स्टौल्स' पहनना चाहिए। यह दस्ताना दो प्रकार का होता है। एक तो सब उँगलियों में पहना जाता है, और दूसरा जिन उँगलियों में न पहनना हो, उनमें न पहनकर शेष उँगलियों को ढाँप सकता है। साधारणतः दूसरी प्रकार का उत्तम है। काम में न आनेवाली उँगलियाँ इसके द्वारा योनि-मार्ग से स्पर्श नहीं कर सकतीं।

इसके उपरांत अपनी पोशाक स्वच्छ होनी चाहिए, जो शीघ्र धुल सके, एवं बदली जा सके। हाथ के कफ़ ऐसे होने चाहिए, जो ऊपर चढ़ाए जा सकें।

(२) दूसरे कारण से रक्षा करने के लिये यथासंभव सब शस्त्र धातु के बनाए जाने चाहिए, जो कि सुगमता से उबाले जा

---

* प्राचीन चिकित्सा-पद्धति में 'घृत' का उपयोग ल्युब्रीकेट करने के लिये किया जाता था। यथा गुद-भ्रंश रोग में—"घृताभ्यक्तां वर्तिं प्रवेशयेत्"

सकें ❋। हथियारों को पानी में दस मिनट तक उबालना चाहिए। उन पर ज़ंग न आ जाय, इसलिये पानी में थोड़ा 'सोडा कार्बोनास' डाल देना चाहिए। जितने काटने के शस्त्र हों, उनकी धार पर रुई लपेटकर उबालना चाहिए। पानी में 'बोरैक्स' या टंकण-क्षार अथवा थोड़ा 'लाईजोल' डालने से भी ज़ंग नहीं लगता।

(३) तीसरे कारण को रोकने के लिये बाहर के मार्ग को, परीक्षा करने से पूर्व, पूर्ण स्वच्छ तथा जंतु-रहित कर देना चाहिए, और जब हाथ या शस्त्र का उपयोग अपेक्षित हो, तो योनि-मार्ग को जंतु-रहित कर लेना चाहिए। कारण, प्रायः योनि-मार्ग में द्रव का अभाव होता है।

योनि-मार्ग को जंतु-रहित करने के लिये 'लाईजोल' या 'क्रिओ-लिन' से पिचकारी लगाना और हाथ की उँगली पर लिंट का टुकड़ा लगाकर साबुन घिसकर साफ़ कर देना चाहिए।

यदि प्रसूता के समीप चिकित्सिका न हो, केवल धात्री ही हो, तो ऐसी अवस्था में प्रसव से पूर्व या पश्चात् योनि-मार्ग में वस्ति (उत्तरवस्ति) देने का निश्चय करना धात्री के ज्ञान पर ही निर्भर है, और यदि चिकित्सिका हो, तो धात्री को उसके आदेशानुसार कार्य करना चाहिए। उत्तरवस्ति के प्रयोग के विषय में बहुत मतभेद है। कई चिकित्सक वस्ति के विरुद्ध हैं और कई इसके पक्ष में। इँगलैंड के रोटैंडा चिकित्सालय में और बंबई के मोतलीबाई-चिकित्सालय में पिचकारी देना निषिद्ध है, जिससे हानि के बदले अधिक लाभ देखा गया है।

यदि योनि-मार्ग की परीक्षा आवश्यक हो, तो वस्ति-प्रयोग करना उत्तम है। परंतु यदि गर्भाशय में कोई कार्य न करना हो, तो वस्ति

❋ तानि प्रायशः लौहानि भवन्ति । तत्समानि वा तदालाभे। (सुश्रुत)

निरर्थक है। यदि योनि-मार्ग में कोई रोग (पूय) हो, तो वस्ति का प्रयोग अति मूल्य रखता है। वस्ति के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रोग या विष एक भाग में से दूसरे भाग में वस्ति द्वारा न पहुँच जायँ।

निम्न-लिखित अवस्थाओं में योनि-मार्ग में वस्ति का उपयोग अति लाभदायक है—

१. यदि कहीं शस्त्र-प्रयोग करना अभीष्ट हो।

२. योनि-मार्ग या गर्भाशय से कोई विष-युक्त ख़राब पदार्थ निकलता हो।

३. यदि प्रसवावस्था अधिक लंबी हो जाय, गर्भ-जल शनैः-शनैः निकले, शिरोदय होने पर आगे प्रसव न हो, तो पूय की उत्पत्ति की संभावना है। या गर्भ-जल के चिरकाल तक योनि में सड़ने से।

एक स्वस्थ स्त्री को प्रसव के समय वस्ति की सर्वथा आवश्यकता नहीं होती। यदि वस्ति लाभदायक न हो, तो छोड़ देना चाहिए।

शिशु की उत्पत्ति के पीछे पिचकारी की कोई आवश्यकता नहीं है। कारण—

१. शिशु के उत्पन्न होने के उपरांत योनि में जंतु नहीं रहते।

२. योनि में 'सैप्रोफाइट्स' रहते हैं, जो रोगोत्पादक जीवाणुओं को खाकर नष्ट कर देते हैं। वस्ति के द्वारा वे बाहर आ जाते हैं, जिससे रोगोत्पादक जीवाणु योनि में प्रवेश कर सकते हैं।

३. कई बार 'हीजन-सीरींज' जो गुदा में प्रयुक्त होती है, योनि में प्रयुक्त करनी होती है, जिससे विष शीघ्र पहुँच जाता है।

निम्न-लिखित अवस्थाओं में शिशु के प्रसव के पीछे वस्ति-प्रयोग किया जाता है। परंतु वस्ति का प्रयोग गंभीर मानकर ही करना चाहिए—

१. यदि गर्भाशय में हाथ का प्रवेश करना हो—यथा कमल निकालते समय।

२. यदि बच्चा, गर्भ-जल या कमल सड़ गया हो।

३. यदि गर्भाशय मे पूय-युक्त स्राव हो।

४. प्रसव के समय यदि कभी बुरी दुर्गंधि आने लगे।

पिचकारी के लिये निम्न-लिखित दवाइयाँ निम्न शक्ति में प्रायः प्रयुक्त होती हैं। इनको बनाते समय पानी को 'स्टरलाईज़ड' करके ठंडा (उबालकर ठंडा होने पर) होने पर मिलाना चाहिए—

लाईज़ोल	१ भाग	लाईज़ोल और	१००	भाग	पानी
क्रीओलीन	,,	क्रीओलीन	,,	,,	,,
कार्बोलिक	,,	कार्बोलिक एसिड	६०	,,	,,
बोरिक	,,	बोरिक एसिड	१६०	,,	,,
पोटास परमैंगनेट (कौंडीस)	,,	पो० परमैंगनेट	१००	,,	,,
आयोडीन	,,	आयोडीन	१६०	,,	,,
सेलाईन	,,	सेंधा नमक	१६०	,,	,,
परक्लोराईड् ऑफ़् मर्करी	,,	परक्लोराईड्	२०००	,,	,,

साधारणतः वस्ति के पानी का ताप १००° फ़० चाहिए। परंतु यदि रक्त बंद करना अभीष्ट हो, तो १२०° फ़० का पानी चाहिए।

'मरक्युरी परक्लोराईड्' का डूश यथासंभव नहीं बरतना चाहिए। कारण, यदि प्रसव से पूर्व दिया जाय, तो योनि-मार्ग तथा अन्य मार्ग संकुचित हो जाते हैं। अतः शिशु के निकलते समय ये भाग फट सकते हैं। प्रसव के पीछे भी इसका व्यवहार उत्तम नहीं है। कारण, इसके रह जाने से पारद विष (मर्करी प्वाइज़निंग) होना संभव होता है।

वस्ति के उपयोग से योनि-मार्ग तथा गर्भाशय के जंतु मर नहीं जाते। डूश के द्वारा जंतु बाहर निकल आते हैं।

यदि गर्भाशय में हाथ या हथियार प्रयोग करना पड़े, तो—

१. बाह्य भाग और समीपवर्ती त्वचा बराबर साबुन और पानी से साफ़ कर देनी चाहिए।

२. योनि-मार्ग को 'लाईजोल' से धोकर उँगली पर स्वच्छ साबुन लेकर दीवारों को घिसकर साफ़ करना चाहिए।

३. उपर्युक्त विधानों को प्रयुक्त करने से पूर्व अपने हाथों को पूर्ण 'स्टर-लाईज' अथवा स्वच्छ कर लेना चाहिए।

दूसरा प्रकरण

वस्ति-गह्वर

'वस्ति-गह्वर' या 'पैलवीस' अस्थियों से बना एक कोठा है, जो पेट के नीचे पेड़ू में आता है। इसके कारण पेट में आए हुए अवयवों को आराम या सहारा मिलता है।

वस्ति-गह्वर चार अस्थियों से मिलकर बना है। जिनमें दो पार्श्वस्थ अस्थियाँ हैं, जिनको 'ईनोमीनेट' नाम दिया गया है। जिसका शब्दार्थ यह है कि इनका कोई नाम नहीं है। तीसरी अस्थि 'सैक्रम' है, जो पृष्ठ भाग को बनाती है, और इसी के नीचे चौथी अस्थि 'कौक्सीस' है। यहाँ पशुओं में पूँछ होती है।

'ईनोमीनेट' या 'जंघन कपालास्थि' तीन अस्थियों से मिलकर बनी है। प्रथम भाग 'ईलीयम' है, जो बड़ा और चौड़ा भाग है। दूसरा भाग 'ईसक्रीयम' है, जो निचला मोटा भाग है। तीसरा भाग 'प्युबीस' है। यह अस्थि का अगला भाग है, जहाँ पर पुरुष-स्त्री के गुह्य भाग में बाल होते हैं। 'ईनोमीनेट' अस्थि में एक बड़ी गुहा या खड्ड होता है, जिसे 'ऐस्टेब्युलम कैवीटी' कहते हैं। इसमें ऊरु अस्थि या फ़ीमर का सिर रहता है।

'ईनोमीनेट' अस्थि के अंदर के भाग में एक किनारी मोटी, खुरदरी होती है, जिसको 'ईलीयो पैक्टोनीयल रीड्ज़' कहते हैं। इस अस्थि के ऊपर की किनारी को 'क्रीस्ट ऑफ़् ईलीयम' कहते हैं। इस किनारी के बाहर की ओर निकलते छोटे भाग को 'एंटीरयर सुपीरयर स्पाइन ऑफ़् ईलीयम' और पिछले भाग को 'पोस्टीरयर
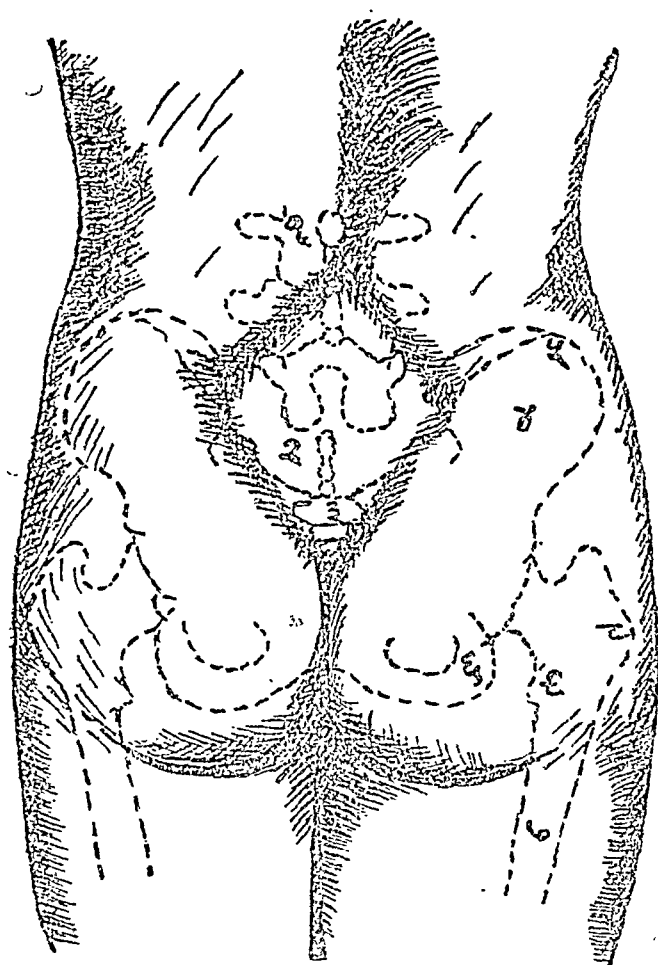
चित्र १—शरीर में वस्ति का स्थान

सुपीरियर स्पाइन ऑफ़् ईलीयस' कहते हैं। 'ईस्कीयम' के बहुत मोटे और मज़बूत भाग को 'ईसकीयल ट्यूबरोसीटी' कहते हैं। जब मनुष्य बैठता है, तो उसके शरीर का भार इसी पर रहता है। इस टेकड़ी के ऊपर पीछे के पार्श्व में 'स्पाइन ऑफ़् ईलीयम'
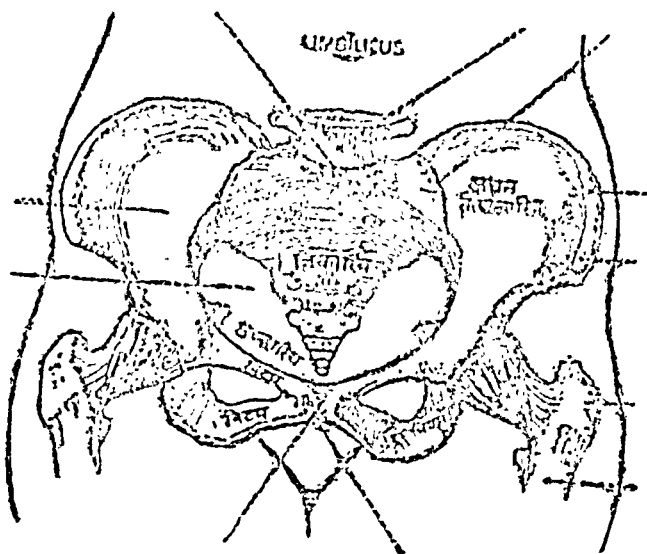
चित्र २—वस्ति-गह्वर की अस्थियाँ

है। ईस्कीयम के अंदर के भाग को 'ईनक्लाइंड प्लेन ऑफ़् ईस्कीयम' कहते हैं। 'ईनक्लाइंड प्लेन ऑफ़् ईस्कीयम' के बीच में एक
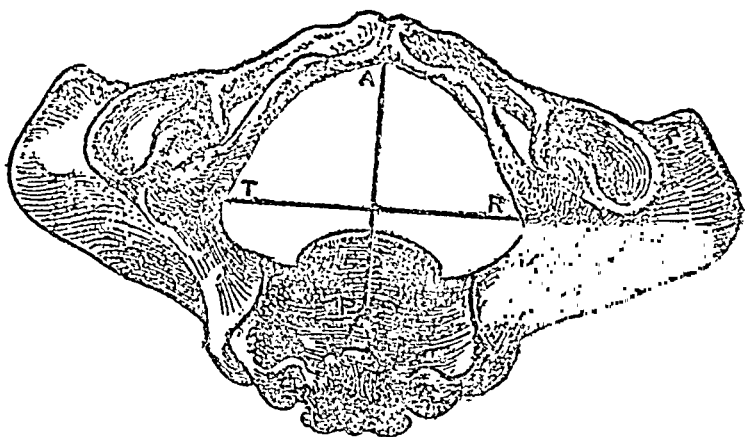
चित्र ३—वस्ति-गह्वर की माप

पतली रेखा है। यह रेखा 'स्पाइन ऑफ़् ईलीयम से ईलीयो पैक्टीनीयल एमीनैंस' तक जाती है, जिससे यह प्लेन दो भागों में

बँट जाता है । अगले भाग को 'एंटीरयर प्लेन' और पिछले भाग को 'पोस्टीरियर प्लेन' कहते हैं। ये ढाल शिशु को बाहर आने में किस प्रकार सहायता करते हैं, यह हम आगे चलकर देखेंगे।

'प्युबीस अस्थि' के अंदर एक 'औवब्युरेटर फ़ॉमैन' होता है, जिसमें से 'औवब्युरेटर' रक्त-प्रणाली जाती है। इसके ऊपर एक पतली झिल्ली होती है, जिसे 'औवब्युरेटर मैंब्रेन' कहते हैं।

सैक्रम अस्थि का आकार त्रिकोणाकार होता है। यह दोनो 'ईनो-मीनेट' अस्थियों के बीच में पीछे की ओर जुड़ी हुई है। यह पाँच कसे-रुओं या 'बरटीब्री' से मिलकर बनी है। इसका ऊपर का भाग ऊपर को निकला होता है, जिसे 'प्रोमीनेटरी ऑफ़् सैक्रम' कहते हैं। निचला भाग भी आगे को निकला होता है, जिसे 'हौलो ऑफ़् दी सैक्रम' कहते हैं।

'कौक्सीक'—यह भी पाँच 'बरटीब्री' से मिलकर बना है। यह सैक्रम के साथ जुड़ा हुआ है।

'ईनोमीनेट' अस्थियाँ जहाँ आगे की ओर जुड़ती हैं, उस संधि को 'सीम्फीसीस प्युबीस' कहते हैं, जहाँ पीछे की ओर सैक्रम से जुड़ती हैं, उसे 'सैक्रो-ईलीयल' संधि कहते हैं, एवं सैक्रम और कौक्सीक की संधि को 'सैक्रो-कौक्सीक' कहते हैं। यह संधि बहुत ढीली है, अतः जब बच्चा बाहर आता है, तो दबाव पड़ने से पीछे हट जाती है, जिससे बच्चे को बाहर आने के लिये खुली जगह मिल जाती है।

आप यदि वस्ति-गह्वर को देखें, तो आपको दिखाई देगा कि यह दो भागों में विभक्त है। ऊपर के भाग में थोड़ी-सी अस्थियाँ हैं, और निचला भाग संपूर्ण अस्थियों का ही बना है। इन दोनो भागों के बीच में एक रेखा पड़ी है, जो सामने 'सिफसिस-प्युबीस' पर से एवं पार्श्वों में 'ईलीयोपैक्टीनीयल-लाइन' पर से तथा पीछे 'प्रोमेनैटरी ऑफ़् सैक्रम' पर से गुज़रती है। इस रेखा को 'ब्रीम

ऑफ़् दी पैल्वीस' कहते हैं। इस रेखा से ऊपर की वस्ति को 'फौल्स पैल्वीस' अर्थात् 'झूठी वस्ति' कहते हैं। और निचले भाग को 'ट्रू-पैल्वीस' या 'सच्ची वस्ति' कहते हैं। 'ट्रू-पैल्वीस' में सामने की ओर 'प्युवीस' अस्थि, पार्श्वों में 'ईलीयम' और 'ईस्कीयम' के भाग तथा पीछे 'सेक्रम' और 'कौक्सीक' है। 'फौल्स पैल्वीस' का शिशु की उत्पत्ति में कोई कार्य नहीं है। परंतु 'ट्रू-पैल्वीस' एक आवश्यक एवं महत्त्व-पूर्ण अवयव है। शिशु की उत्पत्ति के समय इसी में फेर-फार होता है। यदि यह साधारण हो, तो शिशु सुगमता से उत्पन्न हो जाता है। धात्री के लिये इस 'ट्रू-पैल्वीस' का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है।

'ट्रू-पैल्वीस' के तीन भाग हैं—१ 'ब्रीम' या कोठा, प्रविष्ट होने का रास्ता (इनलेट), २ 'कैविटी' या गुहा के बीच का स्थान, ३ 'आउटलैट' या बाहर निकलने का मार्ग। इसके सामने की ओर 'आर्च ऑफ़् प्युवीस,' पार्श्वों में 'ईस्कीयम की ट्यूबरोसीटी' (टेकड़ी) और पीछे 'कौक्सीक' है। वस्ति के बीच की ख़ाली जगह में लिगमैंट (स्नायु-बंधन) आए हुए हैं।

'ट्रू-पैल्वीस' का माप जानना आवश्यक है। कारण, यदि सब स्त्रियों में एक ही माप होता, तो स्वाभाविक परिवर्तनों के समय बहुत कठिनता पड़ती, जिससे शिशु के बाहर निकलने में बाधा होती। इसलिये आवश्यक है कि 'वस्ति के व्यास' (डायमैटर्स ऑफ़् पैल्वीस) जाने जायँ। ये व्यास निम्न-लिखित हैं—

'डायमैटर्स ऑफ़् ब्रीम' (कोठे के व्यास)—

१. 'एंटीरयर-पोस्टीरयर-डायमैटर' (अग्रिम-पश्चिम व्यास)—यह 'कौक्सीक' (पुच्छास्थि) तथा 'सैक्रम' से लेकर आगे तक लिया गया है। इसकी लंबाई ४ से ४½ इंच होती है।

२. 'ट्रांसवर्स डायमैटर' (तिर्यक् व्यास)—ये व्यास दोनो 'इलीयो

पैक्टोनीयल लाईन' के बीच में से लिया जाता है। लंबाई, ४$\frac{1}{4}$ इंच होती है। चित्र नं० ४
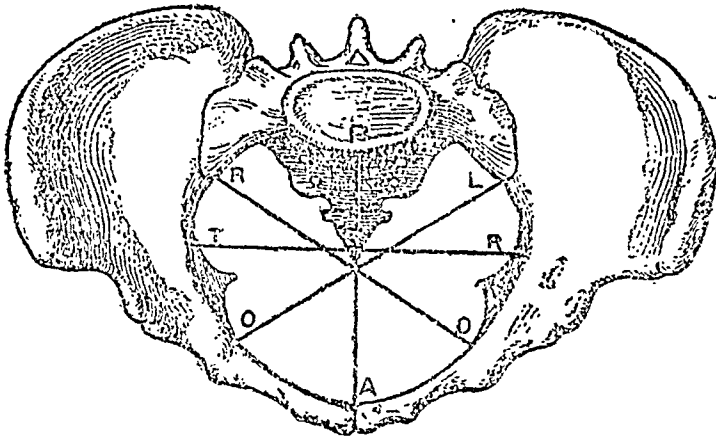
चित्र ४—वस्ति-गह्वर की माप

३-४. दो 'औब्लीक डायमैटर्स—सैक्रो इलीयल' संधि से लेकर 'ईलीय-पैक्टीनल-ट्यूब रोसीटी' तक लिया जाता है। इसमें जो दक्षिण 'सैक्रो इलीयल' संधि से मापा जाता है, उसे दक्षिण औब्लीक और जो वाम-संधि से मापा जाता है, उसे वाम औब्लीक कहते हैं। इनकी लंबाई ५ इंच होती है।

'डायमैटर्स ऑफ् आउटलैट' ('बहिर्द्वार के व्यास')

१—अग्रिम-पश्चिम व्यास (एंटीरीयो पोस्टीरयर)—यह व्यास पुच्छास्थि की नोक से सिंफसिस प्युबीस तक मापा जाता है। इसकी लंबाई ३$\frac{4}{5}$ इंच है। और जब कौक्सीक पीछे हट जाय, तब $\frac{3}{4}$ इंच लंबाई और बढ़ सकती है।

२—तिर्यक् व्यास (ट्रांसवर्स डायमैटर्स) ईटकीयम की ट्यूब रोसीटीयों के बीच की लंबाई, जो ४$\frac{2}{5}$ इंच है।

इनके अतिरिक्त एक और आवश्यक व्यास है, जिसे 'डायगोनल कौनजुगेट' (कर्णसंयुक्त व्यास) कहा जाता है।

डायमैटर्स ऑफ् दी फौलस पैल्वीस, (झूठी वस्ति के व्यास)

इसके व्यास ट्रू-पैलवीस-जितने आवश्यक नहीं। परंतु चूँकि जीवित स्त्री में सच्ची वस्ति के व्यास नहीं नापे जा सकते, अतः झूठी वस्ति के मापों से यह निश्चय हो सकता है कि प्रसव में कठिनता होगी या नहीं। इसके द्वारा 'ट्रू-पैल्वीस' के व्यासों का अनुमान किया जा सकता है।

झूठी वस्ति के मुख्य व्यास चार हैं—

१—'इंटर क्रीस्टल' (शिखर-मध्य व्यास)—ईलीयक क्रीस्ट। (अर्थात् ईलीयम के किनारे) से सबसे दूर के भाग के बीच का व्यास। लंबाई ११ इंच होती है।

२—'इंटर स्पाईन' (कूट मध्य व्यास)—ईलीयम की दोनो 'एंटीरयर सुपीरयर स्पाईन' के बीच का व्यास। लंबाई १० इंच।

३—'बाइ ट्रो कैंट्रा'—ऊर्वस्थि के ट्यूब रोसीटी के बीच का व्यास। लंबाई १२ इंच।

४—'एक्सटरनैल कौनजीगेट'—कमर के अंतिम कसेरू से पुच्छास्थि के ऊपर भाग तक। लंबाई ७½ इंच।
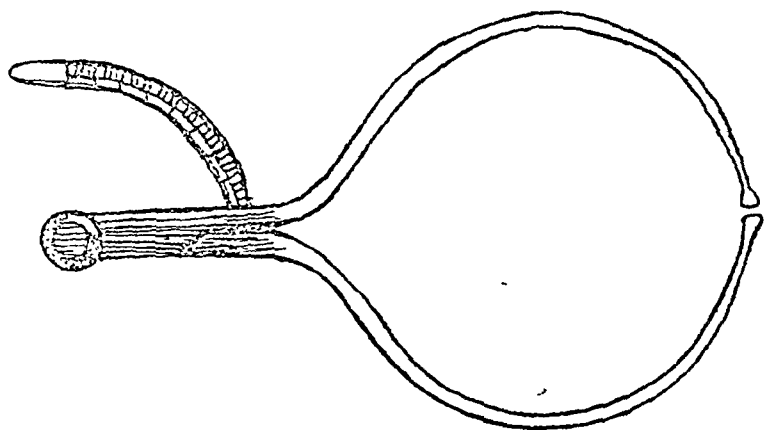
चित्र ९—बाह्य वस्ति मापक
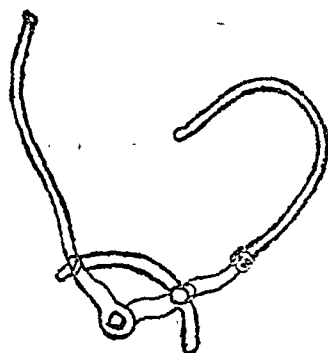
चित्र ६—अंतःवस्तिमापक

इन व्यासों को माप करने के लिये एक विशेष यंत्र बना होता है, जिसे 'पैल्वीमेटर' या वस्तिमापक कहते हैं।

तीसरा प्रकरण

अंतरावयव

"वरांगरन्ध्रात् ऊर्ध्वं तु नासिकाभं यदस्ति तत् ;
मन्मथच्छत्रमित्याहुराढ्यं मदशिराचयैः ।
योनिरन्ध्रे नातिदूरात्पूर्णचन्द्राऽस्ति नाडिका ;
मनोजवारिसंपूर्णा स्त्रीणां तिष्ठति सर्वदा ।" (अनंगरंग)

वस्ति के अंदर के भागों का वर्णन—वस्ति के अंदर के अवयव मुख्य रूप से तीन हैं। यथा—(१) संतान उत्पन्न करनेवाले अंदर के भाग, (२) मूत्राशय और (३) मलाशय।

१—संतान उत्पन्न करनेवाले अंदर के भाग—ये ६ भाग हैं। गर्भाशय; दो डिंब-प्रणाली या फल-वाहिनी; दो ओवैरी या डिंब-कोश; वैजाइना या योनि-मार्ग।

गर्भाशय या गर्भस्थान—यह मांस की बनी एक कठोर कोथली है। आरंभ से लेकर ६ मास तक गर्भ का पोषण इसी में होता है। इसके दो भाग हैं। एक को 'बौडी' या गात्र कहते हैं, और दूसरे को 'सरवीक्स' या ग्रीवा। ग्रीवा योनि-मार्ग में रहती है। ग्रीवा का जो मुख योनि-मार्ग में खुलता है, उसे 'बाह्य मुख' या 'एक्सटरनल ओस' और अंदर के मुख को 'इंटरनल ओस' या अंतःमुख कहते हैं।

फल-वाहिनी—ये दोनो नालियाँ गर्भाशय के पार्श्व में लगी हुई हैं। इनके द्वारा पका हुआ डिंब डिंब-कोश से गर्भाशय में पहुँचता है। ये गर्भाशय के दोनो ओर होती हैं।

डिंब-कोश—ये दो होते हैं। डिंब-कोश में छोटे-छोटे डिंब या अंडे हैं, जिन्हें 'ओवा' कहते हैं।

योनि-मार्ग—यह मांस से बनी नाली की भाँति है। इसके अंदर गर्भाशय की बाह्य ग्रीवा रहती है। इसकी लंबाई ६ इंच होती है *।

ये संतान उत्पन्न करनेवाले अवयव मूत्राशय और मलाशय के बीच में रहते हैं। सामने मूत्राशय और पीछे मलाशय होता है।

२—मूत्राशय—इसमें वृकों में उत्पन्न मूत्र मूत्र-प्रणालियों द्वारा बहकर एकत्रित होता रहता है। यह मांस से बनी थैली है। भरने पर फैल जाती और ख़ाली होने पर सिकुड़ जाती है। मूत्र मूत्र-मार्ग (यूरिथ्रा) से बाहर हो जाता है।

३—मलाशय—यह बृहदंत्र का अंतिम ६ से ८ इंच लंबा टुकड़ा है। इसमें मल एकत्रित होकर फिर गुदा के द्वारा बाहर हो जाता है। गुदा के पास मांस की कपाटी है, जिसके कारण यह सदा बंद रहती है। इसको 'स्फींक्टर एनाई' कहते हैं।

उत्पादक बाह्य अंग—(एक्सटरनल औरगंस ऑफ़् जैनरेशन)—ये निम्न-लिखित हैं—

१—'मोनसवैरीनस', २—लेबीया मेजर (बृहद् भगोष्ठ), ३—लेबीया माईनर (स्वल्प भगोष्ठ), ४—क्लीटोरस (कामांकुश)।

मोनसवैरीनस (मन्मथ-छत्र)—केश-भूमि—सिफसिस प्युबीस पर आई हुई चर्बी की तह है। जब कन्या यौवनावस्था में प्रवेश करने लगती है, तब इसमें बिखरे हुए बाल उगने लगते हैं। बृहद् भगोष्ठ—केश-भूमि से नीचे गुदा की ओर जाती हुई दो मांस

* साधारणतः जब शिश्न संकुचित रहता है, तब उसकी लबाई ४ से ५ इंच होती है। परंतु उत्तेजित होने पर ६ से ८ इंच तक हो जाता है। तब वह गर्भाशय के अंतःमुख तक पहुँच जाता है, जिससे वीर्य का निक्षेप उचित रूप से हो जाता है। अन्यथा वीर्य योनि-मार्ग में ही रह जाता है।

की बनी नरम और गोलाकार किनारी हैं। इनके ऊपर बाल आए हुए होते हैं। इनका ऊपर का सिरा केश-भूमि से निकलता है, और दूसरा अंतिम सिरा 'पेरेनीयम' सीवन के साथ मिल जाता है। 'सीवन'—यह गुदा और योनि-मार्ग के बीच का स्थान है।
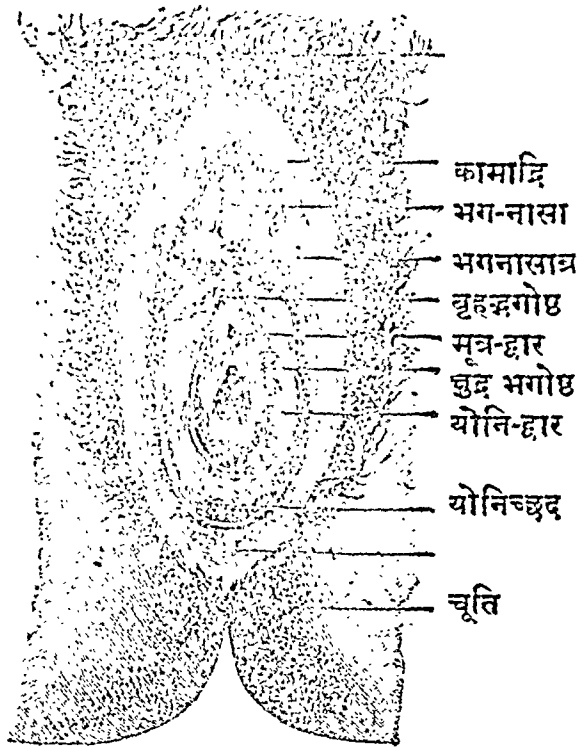
चित्र ७—बाह्य जननेंद्रिय

स्वल्प भगोष्ठ—ये श्लेष्म कला से बने होते हैं। ये मूत्र-मार्ग के भाग से आरंभ होकर योनि-मार्ग के दोनो ओर आते हैं। स्वल्प भगोष्ठों के बीच के स्थान को 'वैस्टीब्युल' कहते हैं। इसके अंदर आवश्यक भाग हैं। ऊपर की ओर जहाँ ये स्वल्प भगोष्ठ मिलते हैं, वहाँ एक गोल बटन-जैसा भाग है, जिसे 'क्लीटोरस' या

'कामांकुर' कहते हैं। इसके नीचे मूत्र-द्वार है, और उसके नीचे योनि-मार्ग का छिद्र है। योनि-मार्ग के छिद्र पर एक पतला पड़ होता है, जिसे 'हाईमन' या योनि-पटल कहते हैं। योनि-मार्ग के मुख के निचले भाग में एक पतला पड़ होता है, जो वृहद् भगोष्ठ को नीचे के भागों के साथ संयुक्त करता है। इसको 'पोस्टीरयर पुरसैट' कहते हैं। योनि और गुदा के बीच के भाग को 'सीवन' कहते हैं। बाहर के इन छिपे अंगों को 'वलवा'-योनि कहते हैं।

'योनि-पटल' प्रायः कुमारी (जिन्होंने सांसारिक सुख नहीं भोगा) स्त्रियों में ही मिलता है। संभोग के पीछे यह फट जाता है, और संपूर्ण पड़दे के स्थान पर बारीक चमड़ी के टूटे टुकड़े दिखाई देते हैं। प्रथम शिशु के उत्पत्ति-काल में ये टुकड़े और भी छोटे टुकड़ों में टूटकर योनि-मार्ग के पार्श्वों में लग जाते हैं, जिनको अब 'कैरंक्युली मीरटी फौरमीस' कहते हैं।

उत्पत्ति में भाग लेनेवाले अवयव—

योनि-मार्ग—यह गर्भाशय और बाह्य अवयवों को जोड़ता है। इसकी लंबाई ३ से ४ इंच है। केवल इसमें दो ही अंगुल जा सकते हैं, परंतु यह फैल सकता है। यही कारण है कि प्रसव के समय फैलने से शिशु का शिर सुगमता से निकल आता है। प्रसव के पीछे फिर संकुचित हो जाता है; परंतु पहले-जितना नहीं। योनि-मार्ग के ऊपर के भाग में एक और भाग दिखाई देता है, जिसकी लंबाई १ इंच होती है। इसको गर्भाशय का मुख कहते हैं। योनि-मार्ग के ऊपर के भाग में कमल के आस-पास चक्कर हैं, जिनके कारण चार गोलाकार भाग बन जाते हैं। इनको 'फौरनीसीस' कहते हैं। गर्भाशय-मुख के निचले गहरे भाग को 'डगलस पाउच' कहते हैं।

गर्भाशय—इसके अंदर गर्भ की नींव रक्खी जाती है, और अंत तक गर्भ यहीं रहकर बढ़ता है। गर्भस्थिति-रहित गर्भाशय की

लंबाई २½ इंच, चौड़ाई १½ इंच और मोटाई १ इंच होती है। इसके दो भाग हैं। एक को शरीर और दूसरे को ग्रीवा कहते हैं। शरीर गर्भाशय के ऊपर का भाग है, जिसमें बच्चा रहता है *। ग्रीवा नीचे का भाग है, जो योनि-मार्ग में रहता है। गर्भाशय में पहुँचने का यही मार्ग है। योनि-मार्ग की भाँति प्रसव के समय विस्तृत हो सकता है। ग्रीवा के दो मुख हैं—एक बाह्य मुख, जो योनि-मार्ग में खुलता है, और दूसरा अंतर्मुख, जो गर्भाशय के समीप का है। गर्भधृति होने पर यह मुख बंद हो जाता है, अतः मासिक धर्म भी नहीं होता †। परंतु प्रसव के समय यह खुल जाता है। गर्भाशय पेट के अंदर पेड़ू में रहता है। इसके समीप आँतें हैं। इसके ऊपर एक पतला पड़ है, जिसे 'पेरीटोनियम' (उदरावरण झिल्ली) कहते हैं। इसी प्रकार सारे गर्भाशय पर फैले हुए दो पड़ गर्भाशय के दोनो पार्श्वों में जाते हैं, जिनको 'ब्राडड लिगमैंट' अर्थात् 'चौड़े स्नायु-बंधन' कहते हैं। इन स्नायु-बंधनों के ऊपर डिंब-प्रणालियाँ हैं।

गर्भाशय की दीवारें तीन पड़ से बनी हैं। सबसे अंदर का पड़ पतली झिल्ली का बना है। इसके अंदर बहुत-सी गाँठे हैं। इसको 'एंडोमैट्रीयम' कहते हैं। मध्यस्थ पड़ मांस के रेशों से बना है। जिनमें कई लंबे हैं, जो गर्भाशय के शिखर से ग्रीवा तक आते हैं। दूसरे गर्भाशय के आस-पास वर्तुलाकार फैले हुए हैं। कुछ तिरछे फैले हुए हैं। तीसरा सबसे ऊपर का पड़ पैरोटोनियम का बना है। इन्हीं पड़ों से गर्भ के आवरण बनते हैं।

गर्भाशय को रक्त 'यूटराईन आर्टरी' (गर्भाशय-धमनी) द्वारा आता

---

* गर्भाशय के मुख्य भाग तीन हैं। यथा—शिखर, शरीर और ग्रीवा।

† गर्भधृति से चूँकि गर्भाशय का मुख बंद हो जाता है, अतः संभोग करने से कृत्रिम उत्तेजना द्वारा मुख के खुलने से गर्भपात हो जाता है।

है। ये दो हैं—एक दक्षिण और दूसरी वाम। यह धमनी 'इंटरनल ईलीयक आर्टरी' की शाखा है, जो स्वयं 'कौमन ईलयक आर्टरी'

चित्र ८—स्त्रियों की अंतःजननेंद्रियाँ

से निकलती है, और यह 'एसैंडिग ऐओर्ट' से फटती है। इस प्रकार से गर्भाशय का पोषण होता है, और अशुद्ध रक्त 'यूटराईन वेन' (गर्भाशय-शिरा) से वापस होकर 'ईलीयक वेन' में पहुँचता है। जहाँ से 'इनफीरियर वेना केवा' में चला जाता है।

डिंब-प्रणालियाँ—इनकी लंबाई ४ से ४½ इंच है। यह उपर्युक्त चौड़े स्नायु-बंधन के ऊपर के भाग से गुज़रती हैं। ये गर्भाशय के शिखर में खुलती हैं। वाहर के सिरे पर झालर होती है। इस

झालर को 'फीमब्री' कहते हैं। इसके द्वारा 'डिंब' डिंब-कोश से गर्भाशय में जाता है।

डिंब-कोश—ये बादाम के आकार और कबूतर के अंडे के समान बड़े होते हैं। ये चौड़े स्नायु-बंधन के पीछे रहते हैं। इनके समीप
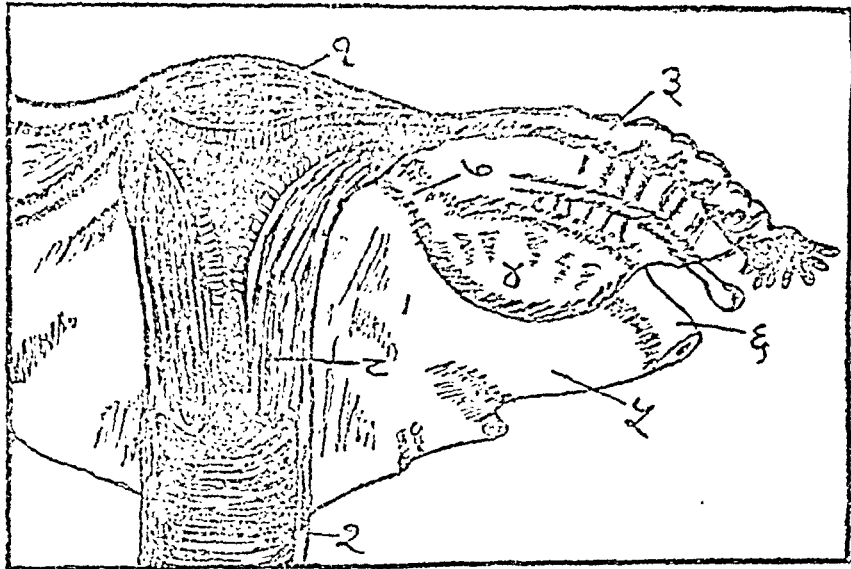
चित्र ६—अंतरीय स्त्री-जननेंद्रियाँ

१ गर्भाशय-मुंड २ योनि ३ डिंब-प्रणाली ४ डिंब-ग्रंथि ५ विस्तृत स्नायु ६ गोल स्नायु ७ डिंब-ग्रंथि-स्नायु ८ गर्भाशय-ग्रीवा।

झालरवाला भाग है। इनके अंदर डिंब रहता है, जो मनुष्य-तत्त्व से मिलकर गर्भ उत्पन्न करता है। डिंब-कोश में असंख्य डिंब हैं। प्रत्येक मास में एक या दो डिंब पककर बाहर आते हैं।

मासिक धर्म या ऋतुस्राव और गर्भाधान

मासिक धर्म—यह ऋतुस्राव लड़की के कुँवारी होने पर प्रत्येक मास योनि-मार्ग से जाता है। इसका समय साधारणतः १२ वर्ष से

५० वर्ष तक रहता है। जब यह बंद होता है, उस समय इसको 'मैनापोज़' कहते हैं। इस ऋतु-स्राव में गर्भाशय से निकला रक्त, झिल्ली के टुकड़े होते हैं। इस रक्त का रंग प्रायः दाँतों से निकलनेवाले रक्त से मिलता है, जो कि दाँतों की अस्वच्छता के कारण आता है। यह ऋतु चार से पाँच दिन रहती है। गर्भधृति होने पर यह आर्तव बंद हो जाता है। और यदि माता शिशु को दूध न पिलावे, तो प्रसव के एक मास बाद ऋतु आरंभ हो जाती है। परंतु जो दूध पिलाती रहे, तो बंद रहती है। अतः ग़रीब माताएँ गर्भ-धृति से बचने के लिये चिरकाल तक दूध पिलाती हैं *। और दूध बंद करने के एक मास पीछे आर्तव आता है।

ऋतुस्राव को चार भागों में बाँटा गया है। यथा †—

(१) 'प्रिमैंस्च्युल चैंजिज'—रचनात्मक परिवर्तन।

(२) 'एक्चुवल मैंस्च्युएशन'—वास्तविक स्राव।

(३) 'पोस्ट मैंस्च्युवल इनवोल्युशन'—उत्पादक अवस्था।

(४) रैस्टिंग स्टेज।

---

* देखिए लेखक का शिशु-पालन—

"गृहीतगर्भाणामार्तववाहानां स्रोतसां वर्त्मान्यवरुध्यन्ते गर्भेण। तस्माद्गृहीतगर्भाणामार्तवं न दृश्यते। ततस्तदधः प्रतिहतमूर्ध्वमागतमपरञ्चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते। शेषञ्चरोर्ध्वंभागतं पयोधरावभिप्रतिपद्यते। तस्माद् गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवन्ति।" (सुश्रुत)

† "रसादेव स्त्रियाः स्तन्यं रजः सञ्ज्ञं प्रवर्तते ;
तद् द्वादशवर्षादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्।" (विश्वामित्र)

"शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ;
तदार्त्तवं प्रशंसंति यद्वासो न रञ्जयेत्।" (सुश्रुत)

"सुरेंद्रगोपसंकाशमित्यादि...।" देखिए मधुकोश।

विश्रामावस्था

यह अवस्था बारह दिन तक रहती है। गर्भाशय की अंतः झिल्ली (एंडोमैट्रीयम) सामान्यावस्था में रहती है। श्लेष्मकला की मोटाई $\frac{१}{३०}$ से $\frac{१}{२५}$ इंच होती है। गर्भाशय की ग्रंथियाँ (मध्यस्थ पढ़) उतना ही रस-स्राव करती हैं, जिससे श्लेष्मकला आर्द्र रहे।

मासिक स्राव से पूर्व रक्त-संचय—यह चार या पाँच दिन तक रहता है। इसमें श्लेष्मकला की मोटाई बढ़ जाती है। एवं इस कला में रक्त-वृद्धि भी बढ़ जाती है। सैल्स कई गुणा बढ़ जाते और एक दूसरे से अलग हो जाते हैं। ग्रंथियाँ लंबी और फूल जाती हैं। केशिकाएँ रक्त से भर जाती हैं। ग्रंथियों से रस अधिक मात्रा में आता है। फलतः दीवार में से सीरम चूने लगता है। रक्त-कण भी केशिकाओं से निकलने लगते हैं। फलतः श्लेष्म-कला मोटी हो जाती है। अर्थात् $\frac{१}{६}$ से $\frac{१}{४}$ इंच तक।

गर्भाधान—प्रत्येक मास में एक अंड या डिंब डिंब-कोश से पककर गर्भाशय में आता है। जब इसका मेल पुरुष-तत्त्व से हो जाता है, तब इस क्रिया को गर्भाधान या 'कन्सेप्शन' कहते हैं। और पुरुष-तत्त्व से मिले इस अंड को 'इंप्रेगनैंट ओवम' कहते हैं। यह गर्भाशय में रहकर बढ़ता है। और यदि यह अंड पुरुष-तत्त्व के साथ न मिले, तो मासिक स्राव के साथ बाहर हो जाता है *।

---

* १. "कामान्मिथुनसंयोगे शुक्रशोणितयोगजः ;
गर्भः संजायते नार्यां सजातो बाल उच्यते ।" (शार्ङ्गधर)

२. "ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद् गर्भः स्याद् विधिपूर्वकः ;
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्याददङ्कुरो यथा ।" (सुश्रुत)

३. "नियतं दिवसेऽतीते संकुचयत्यम्बुजं यथा ;
ऋतौ व्यतीतेनार्यस्तु योनिः संव्रियते तथा ।" (सुश्रुत)

४. जिस प्रकार दिन के व्यतीत होने पर कमल बंद हो जाता है, उसी प्रकार ऋतुकाल (अर्थात् १६ रात्रि) व्यतीत होने पर गर्भाशय का बहिर्मुख भी बंद हो जाता है, जिससे पुरुष-तत्त्व गर्भाशय में पहुँच नहीं सकता।

५. जिस प्रकार बहती हुई नदी में फेंकी वस्तु स्थिर नहीं हो सकती है, उसी प्रकार आर्त्तव के दिनों में किया गया संभोग निष्फल होता है।

६. ऋतु के आने से स्त्री में संभोगेच्छा बढ़ जाती है। और ज्यों-ज्यों समय घटता जाता है, इच्छा भी कम होती जाती है। अतः ऋतु के व्यतीत होने की प्रथम रात्रियों में संभोग करने पर गर्भ-धृति की संभावना सबसे अधिक होती है।

७. शुक्राणु और डिंब में एक विशेष प्रेम होता है। यह प्रेम वैसा ही है, जैसा संखिया और आमाशय के तंतुओं में है, या पारे को मसूड़ों से है। कहीं भी ओवम क्यों न हो, वह शुक्राणु को वहीं खींच लेता है। यही कारण है कि कई बार डिंब-प्रणाली में ही गर्भ-धृति हो जाती है।

"सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषामप्यत्र भूतानां सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण। परस्परोपसंसर्गात्, परस्परानुग्रहात्, परस्परानुप्रवेशाच्च।"

चौथा प्रकरण

गर्भ का विकास

(१) "शुक्रशोणितजीवसंयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति।"

(२) "तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे तेजः शरीराद्दुदीरयति। ततस्तेजोऽनिलसंन्निपाताच्छुक्र च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते। संसृज्यते चार्त्तवेन। ततोऽग्निषोमीयसंयोगात् संसृज्यमानो गर्भो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते।"

(सुश्रुत)

यदि हम 'इंप्रैनेंट ओवम' को देखें, तो वह एक कण या बारीक दाने-सा होता है। इसके पीछे यह शीघ्र बढ़ने लगता है। एक मास के
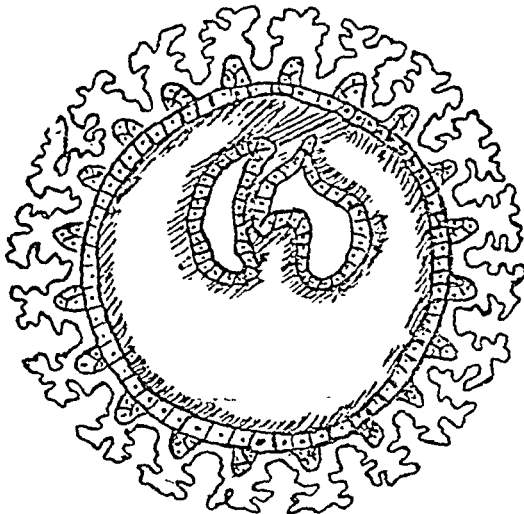
चित्र १०—भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति

अंत में यह एक कबूतर के अंडे के समान बड़ा हो जाता है। प्रथम तीन मास तक इसके ऊपर एक खुरदरा स्तर होता है। यह स्तर

'कोरयोनिक विल्हा' से बना होता है। 'कोरीओन'—यह गर्भीभूत डिंब का बाह्य स्तर है। इसमें रक्त की बारीक नसें आती हैं। यह
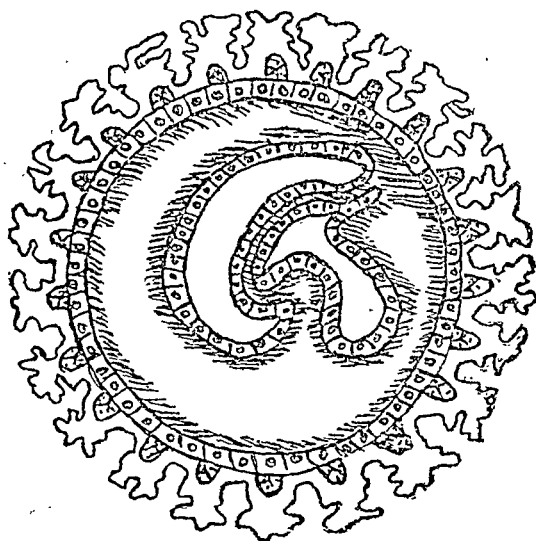
चित्र ११—भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति

विल्हा (बाहर निकलनेवाली उँगलियाँ) 'डैसीडूवा' में जाती हैं। 'डैसीडूवा' गर्भ-धृति होने पर गर्भाशय की अधिक मोटी तथा अधिक रक्त-वृद्धिवाले स्तर का नाम है। इस प्रकार इन विल्हा द्वारा माता का रक्त शिशु को मिलता है, जिससे उसका पोषण होता है। 'कोरीओन' के अंदर एक दूसरा स्तर है, जिसको 'एमनीओन' कहते हैं। इसके अंदर पानी है। इसको 'लाइकर एमनीआई' या 'गर्भ-जल' कहते हैं। इस पानी में शिशु तैरता रहता है।

तीन महीने के अंदर 'कोरयोनिक व्लीआई' का बहुत-सा भाग नष्ट हो जाता है, और थोड़ा-सा भाग जो गर्भाशय के साथ गर्भ को जोड़े हुए है, बहुत अधिक बढ़ जाता है। यह डैसीडूवा के साथ

मिलकर कमल बनाता है। चौथे मास की समाप्ति पर शिशु का पोषण कमल द्वारा होने लगता है।
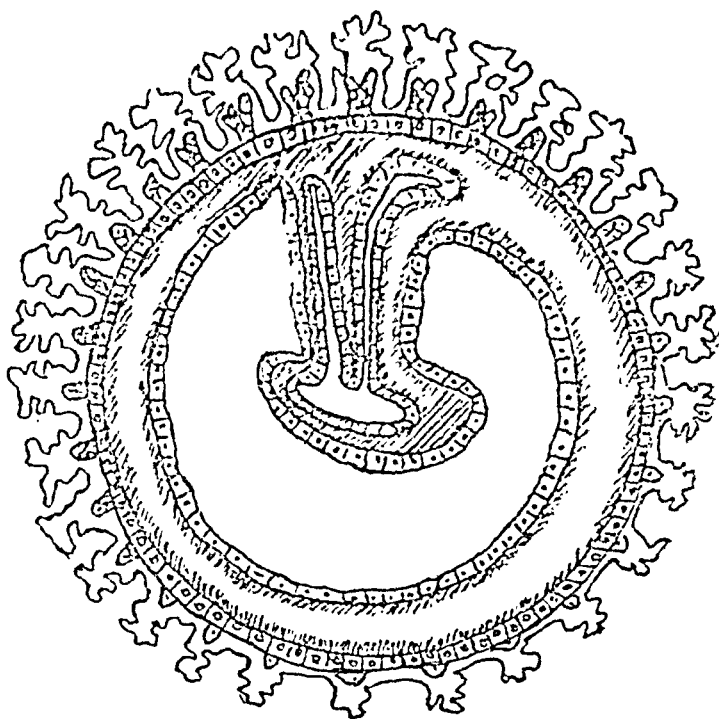
चित्र १२—भ्रूण की क्रमशः उत्पत्ति

कोरीओन—यह सबसे बाहर का स्तर है, जो नाज़ुक उँगलियाँ इसमें से उत्पन्न होती हैं, वे गर्भाशय के स्तर के अंदर घुस जाती हैं। जिनमें से माता का रक्त गर्भ में आता है। गर्भ का जीवन चार सप्ताह के पश्चात् इस पर आश्रित रहता है।

एमनीओन—यह अंतःस्तर है। यह कोरीओन के नीचे रहता है। इसके अंदर की ख़ाली जगह को 'ऐमनी ओनिक कैविटी' कहते हैं। इसके अंदर भरे जल को 'लाइकर एमनीआई' कहते हैं, जिसमें बच्चा तैरता रहता है।

गर्भ-जल—यह एक प्रवाही है, जो कि गर्भ-पटल के अंदर भरा
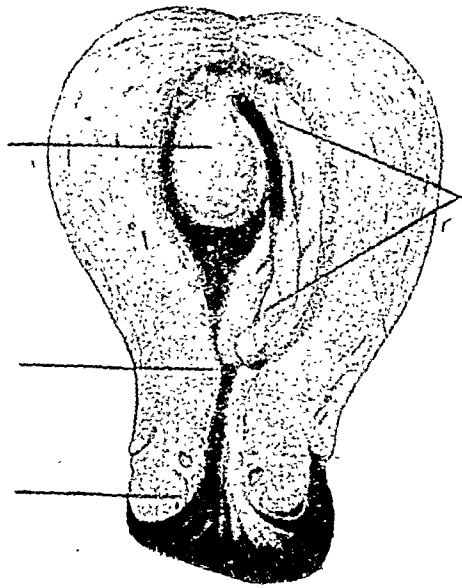
चित्र २—गर्भ का विकास (पृष्ठ ३०)

होता है। साधारणतः इसकी मात्रा दो से चार पाइंट होती है। परंतु कई बार इससे भी अधिक होती है। तब इसको 'हाइड्रो-

चित्र १४—गर्भ-कला की रचना
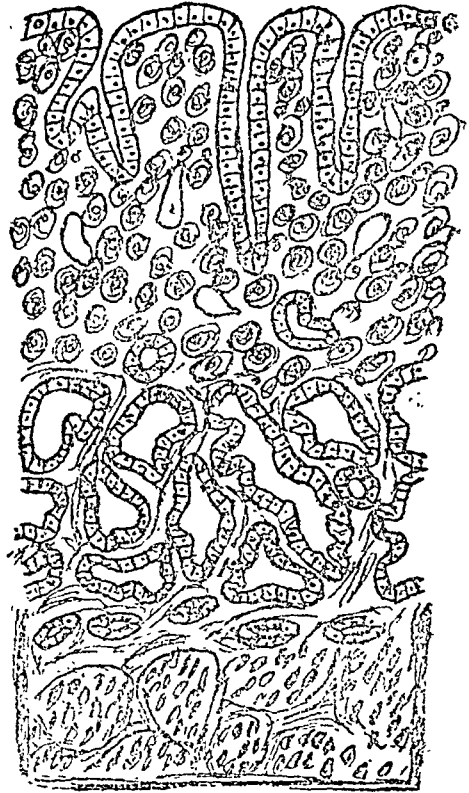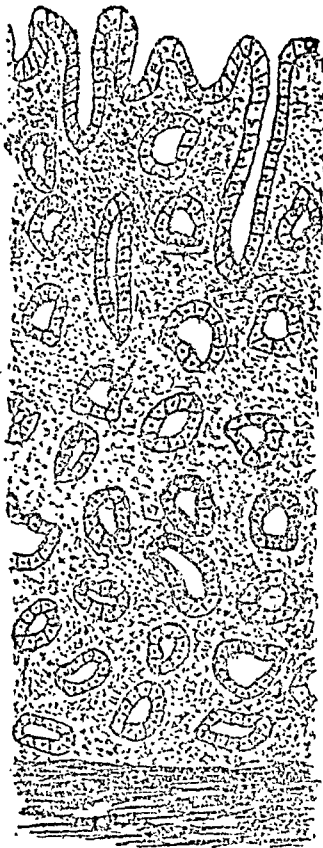
चित्र १३—गर्भाशय-कला की साधारण रचना

एमनी ओस' कहते हैं। अधिक-से-अधिक २० पाइंट तक पानी देखा गया है। यह द्रव मुख्यतः माता के रक्त में से आता है। थोड़ा-सा भाग गर्भ के मूत्र आदि से बनता है। और कुछ भाग कमल एवं नाल के स्राव से बनता है। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है,

इसकी मात्रा घटती जाती है। और अंत में प्रसव के समय कुछ औंस ही रह जाता है।
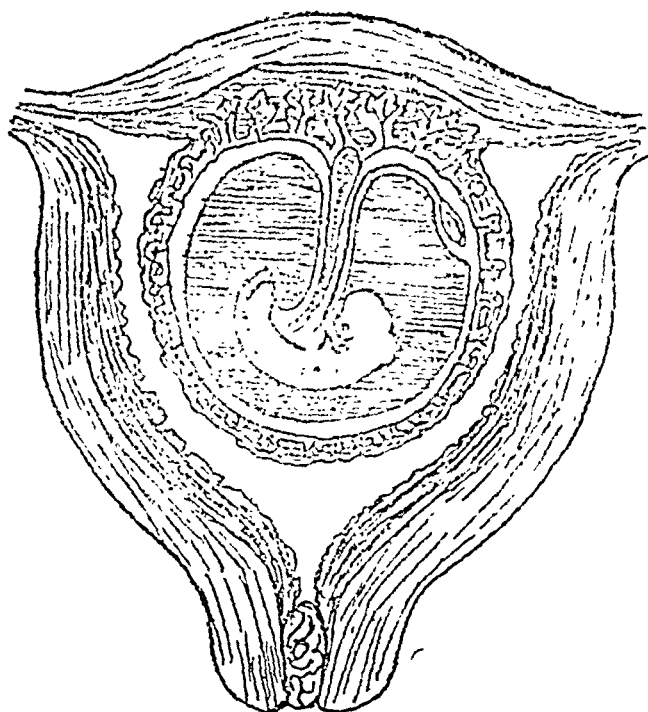
चित्र १५—गर्भ-कला और भ्रूणावरण

गर्भ-जल में 'क्लोराईड्स' और 'फौस्फेप्स' होते हैं। इसके पश्चात् कुछ 'एल्ब्युमन' तथा अंतिम मास में यूरिया भी मिलता है। इसका रंग हलका पीला और गुरुत्व १०१० होता है।

गर्भ-जल का उपयोग—

१—गर्भ और नाल के ऊपर दबाव आने से रोकता है।

२—गर्भ के स्तरों को गर्भ के साथ जुड़ने से बचाता है।

३—प्रसव के समय गर्भाशय के मुख को खोल देता और योनि-मार्ग को धो देता है।

४—गर्भ के लिये एकसाँ ताप रखता है।

नाल—यह कमल के साथ शिशु को जोड़ती है। गर्भ में नाभि के साथ जुड़ी होती है। कारण, गर्भ का केंद्र यही होता है। इसके अंदर रक्त की नसें जाती हैं। इसके द्वारा शुद्ध रक्त कमल से गर्भ में आता है, और गर्भ का अशुद्ध रक्त कमल में जाता है। मुख्य नसें तीन हैं। दो 'अंबलाईकल आर्टरी', 'नाभि-धमनी' और एक 'अंबलाईकल वेन' नाभि-शिरा होती हैं। इन नसों के समीप में एक चिकना पदार्थ होता है, जिसको 'वोरटंस जेली' कहते हैं। संपूर्ण नाल पर 'एमनी-ओन' का स्तर आता है। साधारणतः नाल की लंबाई २२ इंच होती है। परंतु कभी ६ इंच लंबी और कभी ६४ इंच तक लंबी होती है। इसकी मोटाई मध्यमांगुली-जितनी होती है। इसके ऊपर दक्षिण से वाम पार्श्व में जाते हुए बल होते हैं।

कमल—कमल से शिशु का पोषण होता है, और ओषजन का अधिक भाग शिशु में जाता है। कमल के दो भाग हैं। एक 'फीटल पार्ट' या गर्भ का भाग और दूसरा 'मैटरनल' या माता से संबंधित भाग है। प्रथम भाग 'कोरी-ओन' से और दूसरा 'डैसीडूवा सेरीटीना' से बनता है। पूर्ण समय का कमल एक रोटी के समान गोल होता है। इसका भार एक रत्तल ($\frac{1}{2}$ सेर) होता है। यह बीच से मोटा और किनारे से पतला होता है। बीच में $1\frac{1}{4}$ इंच मोटा होता है। इसकी किनारी 'कोरी-ओन' और 'डैसीडूवा' से मिल जाती है। अंदर के भाग में 'एमनी-ओन' घुसी होती है, जिसमें नाल की नसों की शाखाएँ देख पड़ती हैं। बीच में नाल जुड़ी होती है। गर्भाशय का पृष्ठ खुरदरा होता है। गर्भावस्था में यह गर्भ के साथ संयुक्त होता है, और पीछे पृथक् हो जाता है।

गर्भावस्था में कमल के कार्य—

१. इसके द्वारा शिशु में ऑक्सीजन पहुँचती है, अर्थात् यह श्वास का साधन है।

२. माता के रक्त में से पौष्टिक पदार्थ इसके द्वारा गर्भ में जाते हैं। यह गर्भ में पाचन-संस्थान का कार्य करता है।
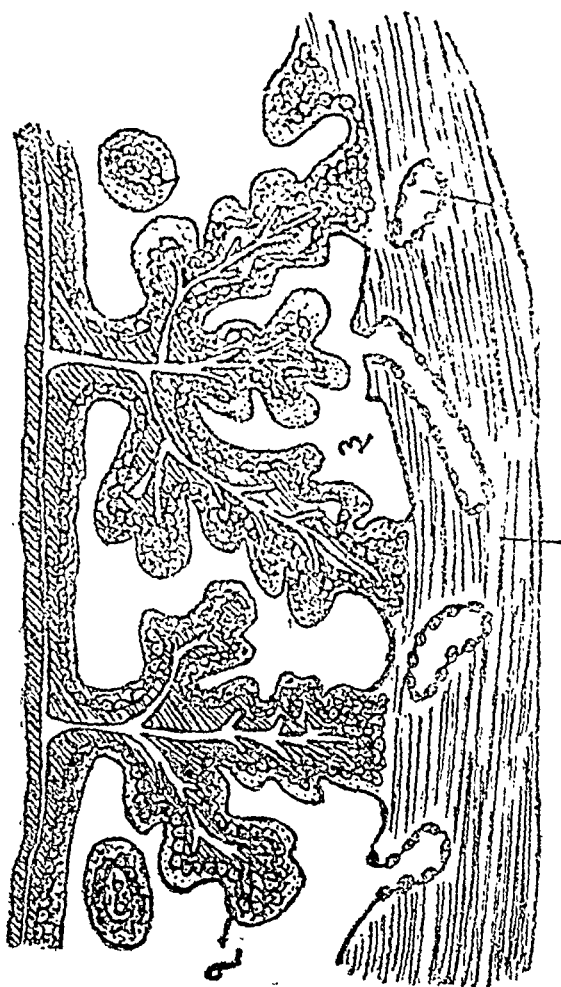
चित्र १६—कमल की उत्पत्ति

१ भ्रूण-आवरण के अंकुर २ गर्भ-कला ३ आशय ४ कोशिकाएँ।

३. गर्भ अपनी निकम्मी वस्तुएँ इसके द्वारा बाहर फेकता है। एक प्रकार से निस्सारक अवयवों का कार्य करता है।

कमल

डैसीडूवा सैरीटीना | डैसीडूवल स्पेस, जिसमें माता का रक्त भरा होता है | कोरी-ओन

गर्भ का बढ़ना

कई बार अपूर्ण समय में उत्पन्न हुए शिशुओं की परीक्षा करनी पड़ जाती है, अतः आवश्यक है कि धात्री को उसका भी ज्ञान हो। यहाँ पर महीना या मास शब्द से २८ दिन अभिप्रेत हैं।

प्रथम मास

चार सप्ताह के अंत में 'एंब्रीयो' या गर्भ एक कबूतर के अंडे के बराबर होता है, जिसकी लंबाई $\frac{१}{३}$ इंच होती है।

द्वितीय मास

द्वितीय मास में इसका व्यास २$\frac{३}{४}$ इंच, लंबाई १$\frac{१}{२}$ इंच और भार २४० ग्रेन होता है।

तृतीय मास

तृतीय मास में आकार नारंगी-जितना हो जाता है। व्यास २$\frac{१}{२}$ से ४ इंच, लंबाई ३ से ३$\frac{१}{२}$ इंच और भार ३ औंस होता है। कमल बना होता है। लिंग-विभेदक जननेंद्रियाँ बनी होती हैं, परंतु स्पष्ट नहीं होतीं। उँगली पर नख होते हैं।

चतुर्थ मास

अब इसे 'गर्भ' कहने लगते हैं। इसकी लंबाई ५$\frac{१}{२}$ इंच और भार ७$\frac{१}{२}$ औंस होता है। कमल के स्थान के अतिरिक्त सब स्थानों की 'कोरी-ओनिक विल्हा' नष्ट हो जाती हैं। गर्भ के लिंग-

विभेदक अवयव स्पष्ट हो जाते हैं। गर्भ के शरीर पर लोम आने लगते हैं।

पाँचवाँ मास

अब लंबाई ६ इंच और भार $\frac{1}{2}$ सेर होता है। सिर पर बाल आने लगते हैं। संपूर्ण शरीर पर 'वरनीकस-कैसी-ओस्सा' पदार्थ आ जाता है, जिससे गर्भ-जल की हानिकारक वस्तु शिशु को हानि नहीं पहुँचा सकती। यथा मल-मूत्र आदि से त्वचा बची रहती है।

षष्ठ मास

अब गर्भ एक फ़ुट लंबा होता है। भार २ से २$\frac{1}{2}$ रत्तल होता है। पलकें और भ्रू उत्पन्न होने लगते हैं।

सातवाँ मास

गर्भ की लंबाई १५ इंच होती है। इसका भार २$\frac{1}{2}$ रत्तल होता है। यदि गर्भ पुरुष-लिंग हो, तो अंडकोष में एक अंड उतर आता है। इस समय उत्पन्न शिशु धीरे-धीरे रोता है। इस समय का उत्पन्न शिशु जीवित रक्खा जा सकता है।

अष्टम मास

लंबाई १६ इंच और भार ४ से ४$\frac{1}{2}$ रत्तल होता है। चमड़ी के नीचे वसा आ जाती है।

नवम मास

लंबाई १८ इंच और भार ४$\frac{1}{2}$ से ५ रत्तल होता है। त्वचा का रंग लाल या गुलाबी होता है। नख उँगली के सिरे तक पहुँचे नहीं होते।

दशम मास

अब लंबाई १६$\frac{1}{2}$ से २० इंच और भार ७ रत्तल होता है। नख उँगली के छोर तक पहुँच जाते हैं। सिर के बाल एक से दो इंच लंबे होते हैं। शिशु ज़ोर से रोता और हाथ-पाँव हिलाता है। पुरुष-

लिंग होने पर दोनों अंड अंडकोश में उतर आते हैं, और यदि स्त्री-लिंग हो, तो छोटा भगोष्ठ बृहद् भगोष्ठ से ढका होता है। प्रसव के कुछ समय बाद मल (म्युकोनियम) और मूत्र होते हैं * ।

पूर्ण समय का गर्भ—पूर्ण समय का गर्भ निम्न-लिखित वस्तुओं से बना होता है—

(१) 'कोरी-ओन'
(२) 'एमनी-ओन'
(३) 'गर्भ-जल'
(४) 'नाल'
(५) 'कमल' और 'गर्भ'

---

* "प्रथमे मासे सम्मूर्च्छित: सर्वधातुकलनांकृत: खेटभूतो भवति। अव्यक्त-विग्रह: सदसद् भूताङ्गावयव:। द्वितीये मासि घन: संपद्यते पिंड:; पेश्यर्बुदं वा। तत्र घन: पुरुष:, स्त्री पेशी, अर्बुदं नपुंसकम्। तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि, सर्वांगावयवाश्च योगपद्येनाभिर्निवर्तन्ते। तस्य यत्कालमेवेन्द्रियाणि संतिष्ठंते, तत्कालमेव चेतसि वेदना निबंधं प्राप्नोति। तस्मात्तदा प्रभृति गर्भ: स्पन्दते प्रार्थयते च। तद्दौर्हृदामाचक्षते। चतुर्थे मासि स्थिरत्वमापद्यते गर्भ:। तस्मात्तदा गर्भिणी गुरुगात्रत्वमधिकमापद्यते। पंचमे मासि गर्भस्य मांसशोणितोपचयो भवति। अधिकमन्येभ्य: मासेभ्य: तस्मात्तदा गर्भिणी कार्श्यमापद्येत विशेषेण। षष्ठे मासि गर्भस्यबलवर्णोपचयो भवति। अधिकेभ्यो मासेभ्य:। सप्तमे मासि गर्भ: सर्वै: भावैराप्यायते सहसा। तस्मात्तदा गर्भिणी सर्वावयवै: क्लांतात्मा भवति। अष्टमे मासि गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रसहारिणीभि: संवाहिनीभि: मुहु: मुहुरोज: परस्परत आददते गर्भस्यासंपूर्णत्वात्।

"तस्मिन्नेकदिवसातिक्रांतेऽपि नवमं मासमुपादाय कालमित्याहु: आदशमासात्।"

(चरक)

अंगों का निर्माण

एक्टो-डरमा (बहिस्त्वक्)

१. संपूर्ण वात-संस्थान।
२. त्वचा का उपरि चर्म।
३. सीबीसीयस ग्लैंड्स के लायनिंग सैल।
४. स्वेद-ग्रंथि तथा चूचुक।
५. बाल तथा नख।
६. नाक की तथा समीपवर्ती एयर सायनस की एपीथिलीयम तथा गाल और मुख के ऊपर की छत की एपीथिलीयम।
७. पिच्युट्री (पोषण-ग्रंथि) ग्लैंड का पूर्ववर्ती भाग।
८. कौर्निया की एपीथिलीयम।
९. कनजैकटाइवा और लैक्रीमल (अश्रु-ग्रंथि) ग्लैंड।
१०. 'सैंसरी ओरगंस' की नर्व-एपीथिलीयम।
११. दाँत का इनेमल

मीज़ो-डरमा (मध्य त्वक्)

यह शरीर का अवशिष्ट भाग बनाती है।

सौत्रिक तंतु और अस्थि-पिंजर (दाँत और इनेमल को छोड़कर)।

दोनो प्रकार की मांस-पेशियाँ।

रक्त और रक्त-संस्थान।

लसीका-संस्थान।

सीरयस कला।

वृक्क और मूत्र-प्रणाली।

उत्पादक संस्थान।

एंडो-डरमा (अंतरत्वक्)

१. संपूर्ण अन्न-प्रणाली की लायनिंग एपीथिलीयम (मुख, फैरिंक्स और गुदा के अंतिम भाग को छोड़कर)।
२. अन्न-प्रणाली में खुलने-वाली ग्रंथियों के लायनिंग सैल्स (यकृत और क्लोम के साथ)।
३. 'टिंपैनिक कैविटी' और ऑडिटरी ट्यूब की एपीथिलीयम।
४. ट्रैकिया, ब्रोंकाई और फुफ्फुस के सैल की एपीथिलीयम।
५. यूरिथ्रा (मूत्र-मार्ग) का कुछ भाग और मूत्राशय की एपीथिलीयम।
६. उस एपीथिलीयम को जो थाईरोयड (निकंठकंठ-ग्रंथि) और थाईमस ग्रंथि को बनाती है।

नोट—इन तीनो स्तरों का निर्माण 'विस्तार'-भय से यहाँ नहीं दिया, जिन्हें देखना हो, वे जोहंस्टन की 'टैक्स्ट बुक ऑफ़ मिड्‌विफ़्री' में देख सकते हैं।

गर्भ का कपाल (फ़ीटल स्कल)

शिशु का सिर दो भागों से मिलकर बना है। एक को सिर या खोपड़ी और दूसरे को चेहरा कहते हैं। खोपड़ी बहुत-सी अस्थियों से मिलकर बनी है। यथा—

(१) 'फ्रैंटल बोन' अर्थात् अग्रिम शिरोऽस्थि, (२) 'औक्सीपिटल बोन' शिरःपश्चादस्थि, (३) दो 'पैरायटल बोन' और दो 'टैंम्रल बोन' (शंखास्थि)। कुल मिलाकर छ हैं।

सुचर्स (संधियाँ)—अस्थियों को एक दूसरे से जोड़नेवाली संधियाँ शिशु में स्पष्ट होती हैं। परंतु बड़े मनुष्य में ये स्पष्ट नहीं होतीं। उस समय सब अस्थियाँ आपस में जुड़ जाती हैं। संधियाँ निम्न-लिखित हैं—

१. लैंबोयड—अर्थात् त्रिकोण आकार की। इसके द्वारा दोनो पैरायटल अस्थियाँ पश्चादस्थि से जुड़ती हैं।

२. सैजीटल—अर्थात् तीर के आकार का। दोनो पैरायटल के बीच की संधि।

३. कौरीनल—दोनो पैरायटल को अग्रिम अस्थि से जोड़ने की संधि का नाम है।

४. फ्रैंटल सूचर—ये दोनो फ्रैंटल के बीच में आई हुई है।

५. टैम्प्रल सूचर—शंखास्थि को फ्रैंटल, औसिपिटल और पैरायटल के साथ जोड़ती है।

फौनटीनेलेस (विवर)—भिन्न-भिन्न संधियाँ जहाँ मिलती हैं, वहाँ खुली जगह को विवर नाम दिया जाता है।

१. एंटीरीयर फौनटीनेलेस (पूर्व विवर)—इसको 'ब्रेगमा' या ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इसका स्थान सैजीटल, कोरोनल (ताज रखने की जगह) तथा फ्रैंटल संधि के मिलने का स्थान है। इसका आकार पतंग का-सा है। इसमें चार संधियाँ भाग लेती हैं।
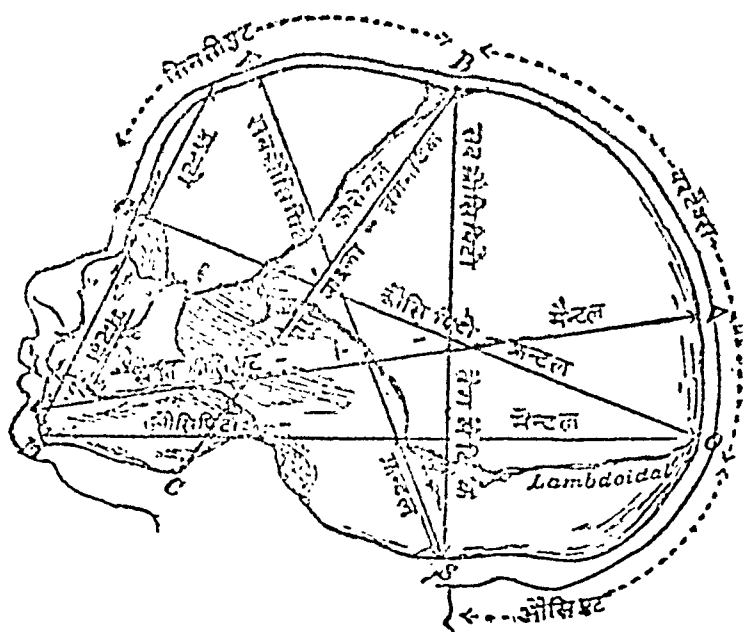
चित्र १७—शिशु के कपालों के भिन्न-भिन्न व्यास

२. पोस्टीरयर फौनटोनेलेस (पश्चाद् विवर)—यह छोटा है। लैंबोयड और सैजीटल संधि के अगले भाग पर है। यह त्रिकोणाकार है। इसमें तीन संधियाँ मिलती प्रतीत होती हैं।

३-४. टैंप्रल फौनटीनेलेस (पूर्व और पश्चाद् शंख विवर)—ये टैंप्रल सूचर के अगले और पिछले छोर पर हैं।

पूर्व विवर से शिशु के जीवन का पता लगता है। यदि वहाँ धड़कन है, तो शिशु का जीवित होना सोलह आने निश्चित है। इसके अतिरिक्त योनि-मार्ग से परीक्षा करते समय अगले और पिछले भाग को पहचानना आवश्यक है।

कपाल के विभाग—विषय सुगम करने के लिये कपाल के भिन्न-भिन्न भागों को भिन्न-भिन्न नाम दे दिए गए हैं। यथा—

(१) औक्सी पिटल (पश्चाद् भाग)—पश्चादस्थि के ऊपर का भाग।

(२) वरटैक्स (शिखर)—पूर्व और पश्चाद् विवर का मध्य-वर्ती भाग।

(३) सीनसीपट (कपाल)—माथा और नाक से ऊपर का स्थान।

(४) फ़ेस (चेहरा)—नाक से चिबुक तक का भाग।

शिशु के सिर का व्यास—

चूँकि वस्ति का एक विशेष माप होता है, अतः आवश्यक है कि सिर का भी व्यास निश्चित हो, जिससे सुगमता से बाहर आ सके। यह माप एक निश्चित स्थान से दूसरे निश्चित स्थान तक लेते हैं। इसको व्यास कहते हैं। व्यास दो प्रकार से लिया जाता है। एक को 'लौनजीट्युडल' अर्थात् लंबाई का व्यास और दूसरे को चौड़ाई का व्यास कहते हैं।

लंबाई (ट्रांसवर्स) के व्यास—

१. सब औक्सीपिटो फ्रौंटल—माथे के उठाव से पश्चादस्थि की ट्यूबरोसिटी के नीचे तक ... ... ४ इंच

२. सब औक्सीपिटो ब्रेगमेटिक—पूर्व विवर से पश्चादस्थि की ट्यूबरोसिटी के नीचे तक ... ... ३$\frac{3}{4}$,,

३. सर वायको ब्रेगमेटिक—पूर्व विवर से ग्रीवा के अगले भाग को सिर के साथ जोड़ने तक ... ... ३$\frac{3}{4}$,,

४. फ्रौंटो मैंटल—चिबुक से माथे के ऊँचे भाग तक ३$\frac{1}{2}$,,

५. औक्सीपिटो मैंटल—चिबुक से पश्चाद् विवर तक ५ ,,

६. सुपरा औक्सीपिटो मैंटल—चिबुक से कपाल के उन्नत भाग तक ... ... ५$\frac{1}{4}$,,

७. औक्सीपिटो फ्रौंटल—पश्चाद् विवर से कपाल की टेकड़ी तक ... ... ४$\frac{1}{2}$,,

चौड़ाई के व्यास—

१. बाई पैरायटल—दोनो 'पैरायटल' टेकड़ियों के बीच का ... ... ३$\frac{3}{4}$,,

२. बाई टैम्प्रल—कोरोनल संधि से दूर की जगह के बीच का ... ... ३$\frac{1}{2}$ इंच

३. बाई जागोमैटिक—दोनो जागोमैटिक के बीच का ३ „

४. बाई मैस्टोईड—दोनो मैस्टोईड के बीच का ३ „

इन व्यासों को मापने के लिये एक हथियार होता है, जिसे 'कैफली मीटर' कहते हैं। व्यास लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नोक सिर में न चुभ जाय। अतः नोकों पर उँगली रखकर माप लेना चाहिए और पीछे वह घटा देना चाहिए।
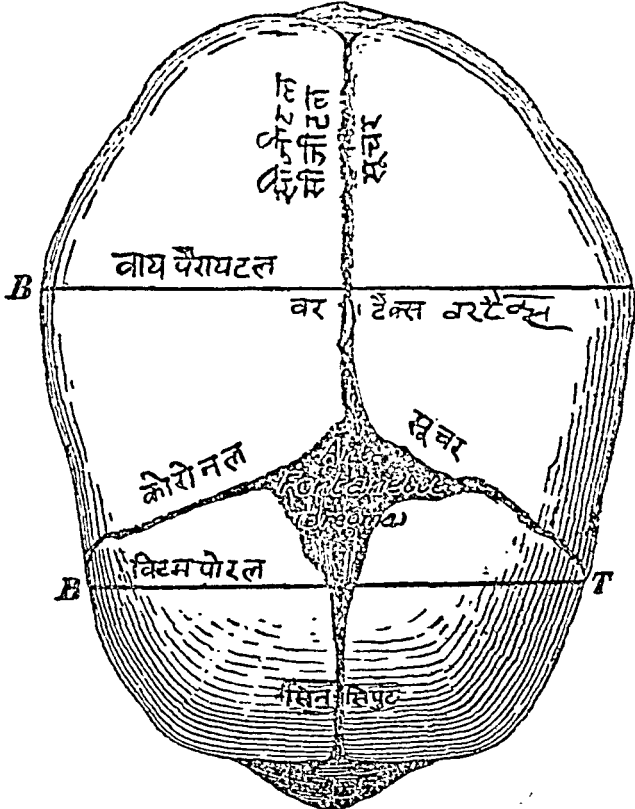
चित्र १८—शिशु के कपालों की स्यूतियाँ

शिशु का धड़—शिशु के धड़ का व्यास उतना क़ीमती नहीं, जितना सिर का। कारण, यह दबकर घट सकता है। धड़ का सबसे बड़ा व्यास दोनो 'एकरोमीयल' के बीच का है, जिसको 'वीस-एकरोमीयल' कहते हैं। इसकी लंबाई ४$\frac{२}{५}$ इंच है। दबकर यह ३$\frac{३}{५}$ इंच हो सकता है। सबसे बड़ा व्यास आगे से पीछे तक 'स्टरनो डोरसल' छाती की अस्थि से कमर तक का है, जिसकी लंबाई ३$\frac{४}{५}$ इंच है। यह घटकर ३$\frac{१}{५}$ इंच हो सकता है।

शिशु का नितंब—इसका जानना आवश्यक नहीं। कारण, यह भाग नरम होता है, अतः दबकर घट सकता है। इसमें मुख्य व्यास तीन हैं—

(१) बाई ट्रोकैंट्रीक—दोनो ट्रोकैंटर के बीच का भाग, जिसकी लंबाई ३$\frac{४}{५}$ इंच है।

(२) बाई ईलीयक—ईलीयक के दोनो किनारे के बीच का स्थान ३$\frac{३}{५}$ इंच है।

(३) सैक्रो प्युबीक—२$\frac{४}{५}$ इंच।

भ्रूण में रक्त-संचार

जिस धात्री को साधारण मनुष्य के रक्त-संचार का ज्ञान नहीं, उसको इसका ज्ञान होना कठिन है। उसके ज्ञान के लिये यहाँ संक्षेप से वर्णन किया जाता है।

गर्भावस्था में शिशु के फुप्फुस श्वास-प्रश्वास क्रिया नहीं करते। इस समय यह क्रिया कमल द्वारा संपादित होती है। स्वच्छ रक्त कमल में से नाभि-शिरा द्वारा शिशु के नाभि के समीप शरीर में पहुँचता है। वहाँ इस शिरा के दो भाग हो जाते हैं। एक बड़ा भाग, जो 'डक्टस विनोसिस' के रास्ते 'इनफीरयर-वेना-केवा' में जाकर मिल जाता है, जिससे अधो भाग का पोषण होता है। दूसरा छोटा भाग 'पोरटल वेन' में जाकर मिल जाता है। वहाँ से यकृत में
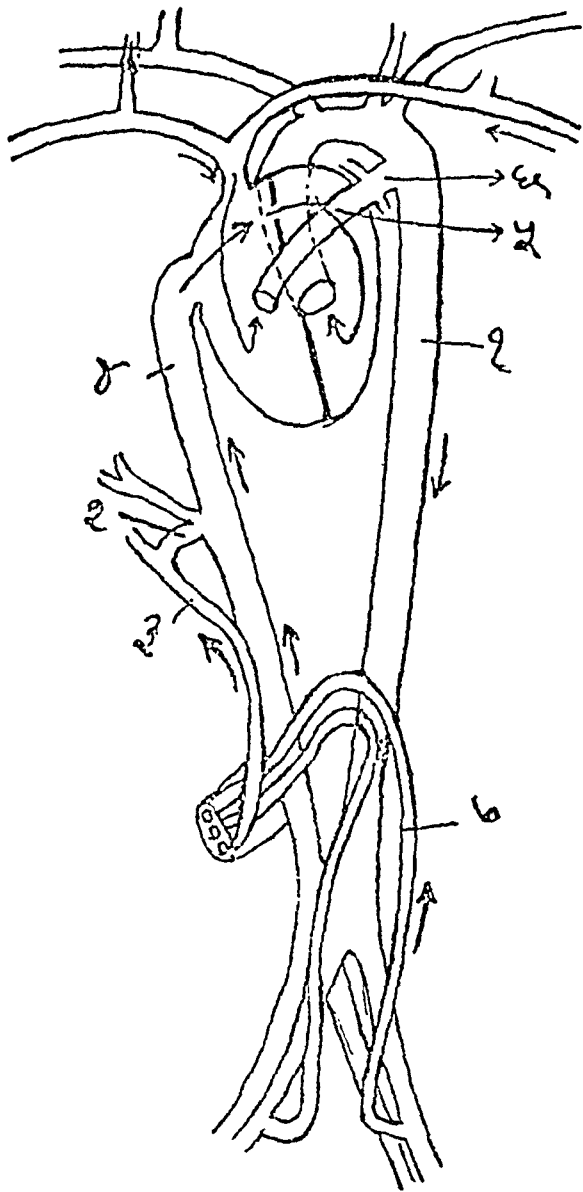
चित्र १६—भ्रूण का रक्त-संचार

१ महाधमनी २ शिरा-संयोजक ३ नाभि-शिरा ४ ऊर्ध्वगामिनी महाशिरा ५ फुप्फुस-धमनी ६ धमनी-संयोजक ७ नाभि-धमनी ।

फैलता है और अंत में फिर 'इनफीरयर-वेना-केवा' में आ जाता है। इस प्रकार 'इनफीरयर-वेना-केवा' कमल का स्वच्छ रक्त तथा यकृत के भाग में व्यवहृत रक्त लेकर 'राइट औरिकल' (दक्षिण ग्राहक कोष्ठ) में पहुँच जाती है।

दक्षिण क्षेपक कोष्ठ में से यह रक्त 'यूस्टेचीयन वाल्व' के मार्ग से 'फौरामेन ओवल्व' में से होकर 'लैफ्ट औरीकल' (वाम ग्राहक कोष्ठ) में पहुँचता है। इस प्रकार यह रक्त 'सुपीरयर-वेना-केवा' के द्वारा आनेवाले अस्वच्छ रक्त के साथ नहीं मिलता। वाम ग्राहक कोष्ठ में आया हुआ 'पलमोनेरी वेन' फुप्फुस शिरा द्वारा व्यवहृत अस्वच्छ रक्त इसके साथ मिलकर इसको भी अशुद्ध बना देता है।

वाम ग्राहक कोष्ठ से यह रक्त वाम क्षेपक कोष्ठ में जाता है। वहाँ से 'एओरटा' महाधमनी में पहुँचता है। वहाँ से थोड़ा-सा भाग सिर और हाथों में जाता है, और इनका व्यवहृत रक्त 'सुपीरयर-वेना-केवा' द्वारा फिर दक्षिण ग्राहक कोष्ठ में आ जाता है। रक्त का मुख्य भाग महाधमनी से निचले भागों में जाता है। वह रक्त 'डक्टस-आर्टरी ओसिस' द्वारा फुप्फुस धमनी (पलमनरी आर्टरी) में आते हुए अशुद्ध रक्त से मिल जाता है। यहाँ से यह मिश्रित रक्त शरीर के निचले भाग में जाता है, जिसमें से थोड़ा रक्त 'इनफीरयर-वेना-केवा' द्वारा पीछे जाता है, और थोड़ा भाग 'हाइपोगैस्ट्रीक आर्टरी' द्वारा नाभि-नाल में जाता है। वहाँ से नाभि-नाल की धमनी द्वारा कमल में पहुँचता है।

जो रक्त 'आर्च ऑफ़् दी एओरटा' द्वारा सिर और हाथों में जाता है, और 'सुपीरयर-वेना-केवा' द्वारा दक्षिण ग्राहक कोष्ठ में आता है, वह व्यवहृत रक्त के साथ मिल जाता है। यह मिश्रित रक्त दक्षिण क्षेपक (राइट वैंट्रीकल) कोष्ठ से होकर 'पलमनरी आर्टरी' में जाता है। 'पलमनरी आर्टरी' से अधिक भाग 'डकटस आरटीरी ओसिस' द्वारा 'डिसैंडींग एओरटा' (अधोगामी महाधमनी) में जाता

है, जहाँ से उपर्युक्त लेखानुसार वाम ग्राहक कोष्ठ से रक्त आता है। इसका थोड़ा-सा भाग फुप्फुस की शिरा द्वारा फुप्फुस में जाता है। वहाँ से फुप्फुस की शिरा द्वारा वाम ग्राहक कोष्ठ में आ जाता है। और वहाँ 'इनफीरयर-वेना-केवा' द्वारा आए रक्त से मिल जाता है।

शिशु के उत्पन्न होकर श्वास लेने पर रक्त-संचार में परिवर्तन आरंभ हो जाता है। जब फुप्फुस वायु से सबसे प्रथम भरते हैं, तब उस दबाव के कारण फुप्फुस में रक्त का दबाव बढ़ने से कमल की ओर जाता हुआ रक्त-संचार बंद हो जाता है। फिर 'डक्टस आर्टरी ओसिस' और 'हाइपोगैस्ट्रीक आर्टरी' बंद हो जाती है। एवं 'फोरामेन ओवेल', नाभि-शिरा और 'डक्टस विनोसिस' में फिरता रक्त रुक जाता है। यकृत-धमनी (हाइपोगैस्टिक आर्टरी) प्रायः उत्पत्ति के २-४ दिन पीछे बंद हो जाती है। 'डक्टस आर्टरी ओसिस' आठ से दस दिन में और नाभि-शिरा तथा 'डक्टस वीनोसिस' ६ से ७ दिन में बंद हो जाती हैं। रक्त 'फोरामेन ओवेल' द्वारा न भी जाय, तो भी एक वर्ष की आयु तक यह छिद्र बंद नहीं होता।

गर्भ की गर्भावस्था में स्थिति—इस स्थिति के कारण गर्भ सुगमता से रह सकता है। सिर छाती पर मुड़ा होता है। पीठ मुड़ी होती है। हाथ छाती पर मुड़े होते हैं। जाँघें पेट पर और टाँगें जाँघों पर मुड़ी होती हैं। पाँव एक दूसरे पर चढ़े होते हैं। पाँव की तली नितंब के समीप होती है। इसके दो छोर होते हैं। एक सिर का और दूसरा नितंब का। नितंब का छोर चौड़ा और बड़ा है *।

* स्थिति—गर्भस्तु खलु मातुपृष्ठाभिमुख ऊर्ध्वशिरः संकुचिताङ्गान्यास्तेऽन्तःकुक्षौ। व्यपगत पिपासा बुभुक्षुः खलु गर्भः परतंत्रवृत्तिः मातरमाश्रित्य वर्त्तति नाभ्यां ह्यस्य नाडी प्रसक्ता सा नाभ्यां चापरा। अपरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये। मातृहृदयं ह्यस्य तामपराभिः संप्लव्यते शिराभिः। स्पन्दमानाभिः। स रसः बलवर्णकरः सम्पद्यते। (सुश्रुत)

चित्र ३—उदयन के भिन्न-भिन्न रूप (पृष्ठ ४७)
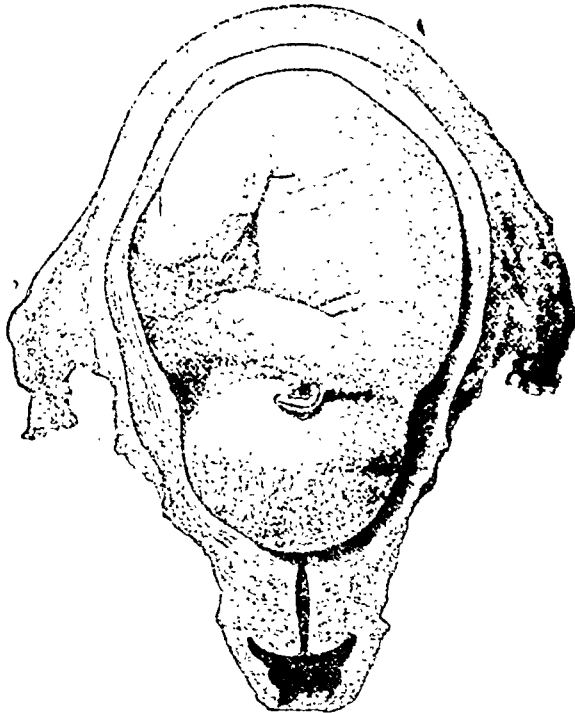
चित्र ४—शिरोदय (पृष्ठ ४७)

प्रेजेंटेशन (उत्पत्ति-दर्शन)—गर्भ का जो भाग वस्ति-गह्वर में प्रविष्ट हुआ हो या हो रहा हो, उसको यदि गर्भाशय-ग्रीवा में उँगली प्रविष्ट करके स्पर्श करे, तो उसे 'दर्शन' कहते हैं। शरीर का कोई भाग नीचे आ सकता है, परंतु प्रायः सिर या नितंब का भाग आता है। इसमें भी प्रायः सिर ही नीचे रहता है। ९७ प्रति-शत अवस्थाओं में सिर आता है।

सिर के प्रथम आने के कारण—

१. गर्भाशय का आकार—जब बच्चा छोटा होता है, तो सुगमता से गर्भाशय में फिर सकता है। जब गर्भ बड़ा हो जाता है, तो गर्भाशय की दीवार उस पर दबाव देती है। अतः जिस प्रकार सुगमता से रह सके, वैसे रखती है। गर्भाशय की लंबाई चौड़ाई से अधिक है, अतः गर्भ की लंबाई गर्भाशय की लंबाई में ही रहती है। गर्भाशय का शिखर चौड़ा होने के कारण शिशु का नितंब भाग वहाँ ठीक आ जाता है, और निचला भाग तंग होने के कारण वहाँ सिर रहता है।

२. ग्रेवेटी (गुरुत्व)—यदि शिशु को नाल से पकड़कर पानी में लटकावें, तो नितंब का भाग ऊपर जायगा और सिर नीचे आएगा। कारण, सिर भारी और चौड़ाई में कम है। इसी प्रकार शिशु गर्भ-जल में नाल से लटका है। अतः नितंब-भाग ऊपर है और सिर का भाग नीचे।

३. बच्चे का पाँव हिलाना—यदि नितंब का भाग नीचे रहे, तो शिशु को पाँव हिलाने के लिये पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। इस हरकत के कारण तंग भाग में सिर आ जाता है। एक बार सिर नीचे आकर फिर ऊपर जा नहीं सकता, और फिर पाँव भी हरकत नहीं कर सकते, जिससे नितंब फिर नहीं सकते। भिन्न-भिन्न दर्शन निम्न-लिखित रूप में होते हैं—

वरटैक्स (कपाल-दर्शन)—यह ९५ प्रतिशत होता है। सिर का वरटैक्स भाग नीचे होता है।

फ़ेस (चेहरे का दर्शन)—जब शिशु का सिर पीठ की ओर खिंचा हो, और सबसे नीचे चेहरा हो, तब यह $\frac{1}{2}$ प्रतिशत होता है।

ब्र —जब सिर थोड़ा खिंचा हो, तब यह $\frac{1}{5}$ प्रतिशत होता है।

पैलविक प्रेजेंटेशन (नितंबोदय)—यह २$\frac{1}{4}$ प्रतिशत होता है। इसके दो भाग हैं। यथा—

१. संपूर्ण—इसमें कुल्हा (नितंब) पाँव के तलवे के साथ नीचे आता है।

२. असंपूर्ण—इसमें (क) केवल नितंब नीचे आवें। (ख) एक अथवा दोनो घुटने नीचे आवें। (ग) प्रथम एक या दोनो पाँव नीचे आवें।

ट्रांसवर्स प्रेजेंटेशन (तिर्यक् दर्शन)—इसमें शिशु के धड़ का कोई भी भाग (प्रायः स्कंध) नीचे आता है। ऐसा २०० प्रसूतियों में से एक प्रसूति में होता है।

पोज़ीशन (स्थिति)—शिशु के शरीर के भाग का माता के शरीर की मध्य रेखा के साथ संबंध—

सिर और नितंब-दर्शन में पीठ स्थिर भाग गिनी जाती है। पीठ आगे या पीछे, दक्षिण या वाम पार्श्व में हो, तो चार स्थितियाँ हो जाती हैं। यथा—

प्रथम स्थिति में—पीठ आगे आई हुई हो और बाज़ू वाम पार्श्व में हो।

द्वितीय स्थिति में—पीठ आगे आई हुई हो और बाज़ू दक्षिण पार्श्व में हो।

तृतीय स्थिति में—पीठ पीछे हो और बाज़ू दक्षिण पार्श्व में हो।

चतुर्थ स्थिति में—पीठ पीछे हो और बाज़ू वाम पार्श्व में हो।
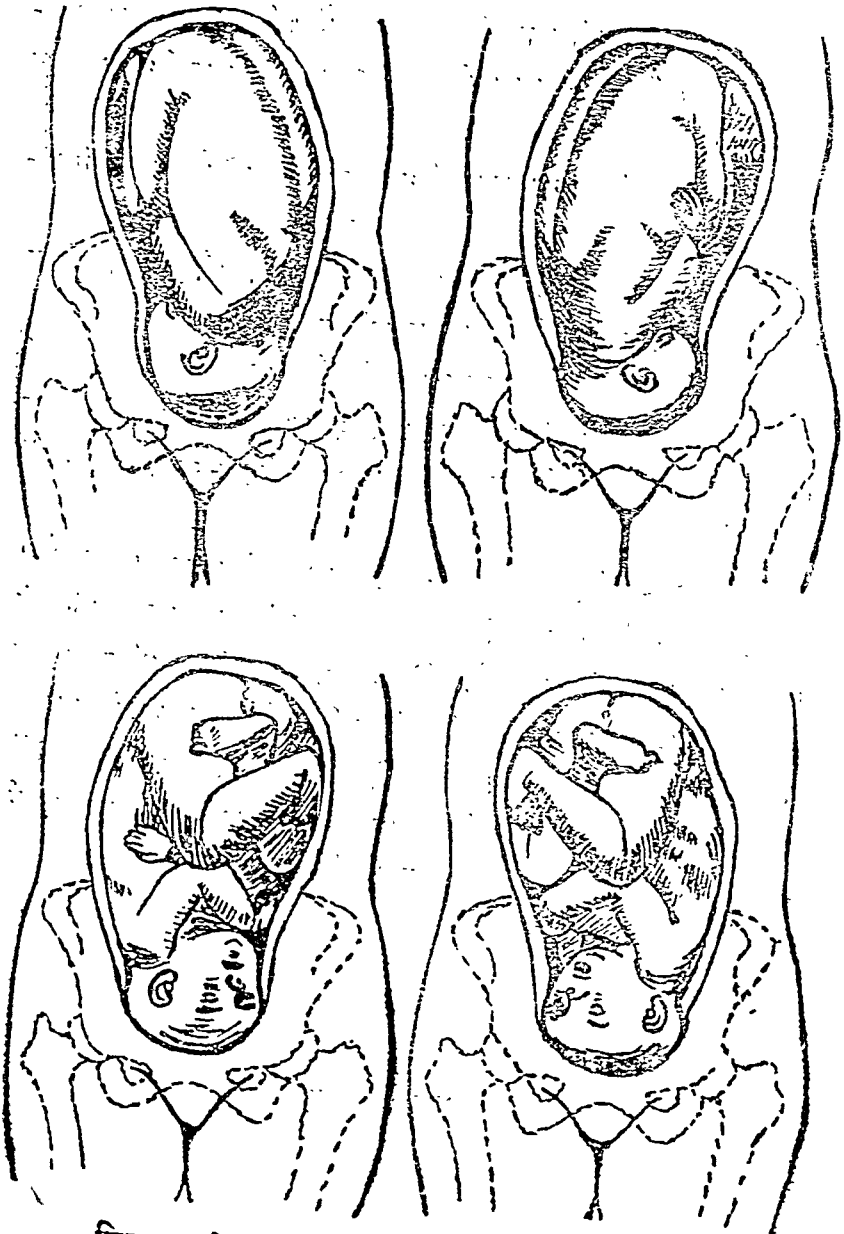
चित्र २० से २३—गर्भस्थ बालक के उदय के आसन

तिर्यक् दर्शन में भी चार ही स्थितियाँ हैं। सिर दक्षिण या वाम-पार्श्व में और पीठ आगे या पीछे हो, तो उपर्युक्त चार स्थितियाँ बन जाती हैं।

सिर और नितंबोदय में प्रथम स्थिति प्रायः होती है। इसके निम्न-लिखित कारण हैं—

१. गर्भ जब गर्भाशय में होता है, तब उसकी चौड़ाई की अपेक्षा मोटाई, अर्थात् आगे-पीछे का व्यास अधिक बड़ा होता है।

२. गर्भाशय केवल गोलाकार नहीं है, परंतु इसकी चौड़ाई मोटाई से अधिक है। जिस प्रकार यह साधारणतः रहता है, उस प्रकार इसकी चौड़ाई का बड़ा व्यास दक्षिण-तिर्यक् व्यास में रहता है।

३. दक्षिण-तिर्यक् व्यास वाम-तिर्यक् व्यास से थोड़ा अधिक है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गर्भ का सबसे बड़ा व्यास वस्ति के सबसे बड़े व्यास में रहता है, जिससे इसका अग्रिम पश्चिम-व्यास गर्भ का तिर्यक् व्यास और वस्ति के दक्षिण-तिर्यक् व्यास के बराबर रहता है। इस समय गुरुत्वाकर्षण से गर्भ की पीठ अगले भाग में रहती है। अर्थात् गर्भ की पीठ सम्मुख और मध्यरेखा के वाम-पार्श्व में रहती है। इस प्रकार यह प्रथम स्थिति में रहती है।

पाँचवाँ प्रकरण

गर्भ-स्थिति के पश्चात् माता के अंगों में परिवर्तन

"गृहीतगर्भाणां आर्त्तवहानां स्रोतसां वर्त्मानि अवरुध्यन्ते गर्भेण। तस्माद् गृहीतगर्भाणां आर्त्तवं न दृश्यते। ततस्तदधः प्रतिहतमूर्ध्वभागतमपरञ्चोपचीयमानं 'अपरा' इत्यभिधीयते। शेषञ्चोर्ध्वभागतं पयोधरावभिप्रतिपद्येत। तस्माद् गर्भिण्यः पीनोन्नत-पयोधरा भवन्ति।"

गर्भ-धृति के कारण माता के अंगों में परिवर्तन होने आरंभ हो जाते हैं। उन परिवर्तनों को जानना एक धात्री के लिये आवश्यक है। ये परिवर्तन मुख्य रूप से निम्न-लिखित हैं—

१. गर्भाशय—गर्भ-धृति होने पर बढ़ते हुए डिंब को स्थान देने के लिये गर्भाशय भी बढ़ जाता है। गर्भाधान से पूर्व इसका माप ३×२×१ इंच और भार १½ औंस होता है, परंतु प्रसूति के अंत में इसका माप १२×६×८ और भार ३० औंस हो जाता है। इसकी समाई ५०० गुणा बढ़ जाती है। इस वृद्धि में गर्भाशय के सब घटक भाग लेते हैं। यथा—

मांस-पेशियों में वृद्धि—यह वृद्धि उपस्थित मांस-तंतुओं के बड़े हो जाने से तथा नए तंतुओं के बनने से होती है। उपस्थित तंतु लंबाई में १० गुणा और चौड़ाई में पाँच गुणा बढ़ते हैं। इस वृद्धि के कारण मांस-तंतु कई स्तरों में विभक्त हो जाते हैं।

बहिःस्तर—इसमें पृष्ठ के तंतुओं का जाल उपरि पृष्ठ में भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाता हुआ बनता है।

अंतःस्तर—इसके तीन भाग हो जाते हैं। यथा—

(क) औटर लेयर (बहिःस्तर)—इसमें तंतु सामने की तरफ़ में ग्रीवा के सिरे से चलकर ऊर्ध्वांश तक पहुँचते हैं। वहाँ से ग्रीवा के पिछले भाग में जाकर समाप्त होते हैं।

(ख) मिडिल लेयर (मध्यस्तर)—इसमें तंतु सब ओर जाते और एक जाल-सा बनाते हैं। कई तंतु मुड़ी हुई रक्त-प्रणालियों के चारो ओर फंदा डाल देते हैं, जिससे अँगरेज़ी का आठ (8) बन जाता है। यह स्तर गर्भाशय की मोटाई का बहुत-सा भाग बनाता है। इसके तंतुओं को जीवित फंदा कहते हैं, जो प्रजनन-काल में कमल के अलग होने पर रक्त-वाहिनियों के मुख को बंद कर देता है।

(ग) इनर लेयर (अंतःस्तर)—इसमें वृत्ताकार तंतु होते हैं, जो गर्भाशय के अंतःमुख पर तथा डिंब-प्रणाली के मुख पर कपाटि 'स्फिंगटर' बना देते हैं, जिससे कोई बाह्य वस्तु अंदर न आने पावे।

२. रक्त-वाहिनियाँ—धमनियाँ लंबी और मोटी हो जाती हैं। उनके मुड़ाव स्पष्ट दीखने लगते हैं, विशेषतः जहाँ पर कमल लगा होता है। शिराएँ भी इसी प्रकार लंबी और मोटी हो जाती हैं, विशेषतः जो कमल के पास होती हैं।

३. लसीका-वाहिनियाँ—इनको काम बहुत करना पड़ता है, अतः ये बहुत बढ़ जाती हैं। प्रारंभ में गर्भ के पोषण का भार इन्हीं के ऊपर होता है।

४. नर्व्स—इनका भी आकार और संख्या बढ़ जाती है। नर्व की क्रिया-शक्ति भी बढ़ जाती है। इसीलिये गर्भ-स्थिति के समय परावर्ति क्रिया 'रिफलैक्स एक्शन' भी बहुत शीघ्रता से होती है।

प्रथम तीन मासों में गर्भाशय-स्थित तंतुओं के विस्तार के कारण ही गर्भाशय में वृद्धि होती है, जिससे इसकी भित्ति मोटी हो जाती

है, परंतु पीछे से बढ़ते हुए डिंब के कारण फैल जाती है, और इसकी भित्तियाँ 1/8 इंच पतली पड़ जाती हैं। इस प्रकार इसकी दीवारें कोमल तथा लचीली हो जाती हैं। प्रसूति के उत्तरार्द्ध काल में हम बच्चे को गर्भाशय की पिछली दीवारों में टटोल सकते हैं। ज्यों-ज्यों प्रसूति-काल बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों गर्भाशय की स्थिति भी बदलती जाती है। प्रथम तीन मासों में यह अपना नासपाती का आकार छोड़कर वृत्ताकार हो जाता है। फिर चौथे मास में उदर की ओर बढ़ता हुआ गर्भाशय अंडाकार हो जाता है।

गर्भाशय का भिन्न-भिन्न मासों में माप—

दो मास के अंत में—हंस के अंडे के बराबर।

तीन मास के अंत में—बड़ी नारंगी के बराबर। अब इसके शिखर को 'सिंफसिस प्युबीस' पर टटोल सकते हैं।

चार मास के अंत में—'वस्ति-गह्वर' के किनारों तक आ जाता है, और ऊपर की सम्मुख भित्ति से लग जाता है।

इस समय इसका ऊर्ध्वांश 'सिंफसिस प्युबीस' से २ इंच ऊपर आ जाता है।

पाँचवें मास के अंत में—नाभि से दो अंगुल नीचे रहता है।

छठे मास के अंत में—नाभि से कुछ ऊपर पहुँच जाता है।

सप्तम, अष्टम और नवम मास में प्रत्येक मास में दो अंगुल नाभि से ऊपर बढ़ता जाता और नवें मास के अंत में 'ज़ीफोयड कार्टिलेज' (उरोऽस्थि का निचला भाग) के समतल पर पहुँच जाता है।

दसवें मास में या प्रसूति के अंतिम सप्ताहों में गर्भाशय 'ज़िफो-यड कार्टिलेज' से दो अंगुल नीचे उतर आता है।

गर्भ-स्थिति के पश्चात् प्रथम सप्ताह में गर्भाशय सामने की ओर मूत्राशय के ऊपर झुक जाता है।

ग्रीवा—यद्यपि वृद्धि गर्भाशय के शरीर में ही स्थिर रहती है, तथापि थोड़ा-सा परिवर्तन गर्भाशय-ग्रीवा में होता है। ग्रीवा में रक्त-संचार की वृद्धि होना मुख्य परिवर्तन है, जिसके कारण ग्रंथियों का स्राव बढ़ जाता है, जिससे ग्रीवा ढीली तथा कोमल हो जाती है। परिणाम यह होता है कि श्लेष्मा का एक दृढ़ 'प्लग' (डाट) बन जाता है, जिससे ग्रीवा का मुख गर्भ-काल में बंद रहता है। यह परिवर्तन गर्भाशय के बहिर्मुख से आरंभ होकर संपूर्ण ग्रीवा में फैल जाता है। अधृतगर्भा गर्भाशय-ग्रीवा की तुलना हम नाक से कर सकते हैं तथा धृतगर्भा की ओष्ठों से। नाक कठोर होती है, और ओष्ठ मृदु होते हैं।

डिंब-ग्रंथियाँ तथा डिंब-प्रणाली—इनमें भी रक्त-संचार बढ़ जाता है, तथा एक पार्श्व का 'डिंब' प्रसूति के 'कौर्पसल्युटीयम' (पीतांग) के निर्माण के कारण बड़ा प्रतीत होता है। ज्यों-ज्यों गर्भाशय उदर की ओर बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों डिंब-प्रणाली और ग्रंथि गर्भाशय के साथ लंब रूप में (वर्टीकल) स्थित होती जाती है, जो 'चौड़े स्नायु-बंधन' के कारण सहज में ही हो जाती है। गर्भाशय का शिखर ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्रणालियों की संधि ऊपर के सिरे से अपेक्षया दूर होती जाती है, और अंत में प्रणाली गर्भाशय के सिरे से $\frac{1}{3}$ हिस्सा नीचे की ओर जुड़ती प्रतीत होती है।

योनि—रक्त-संचार के बढ़ने से योनि के स्राव में भी अंतर आ जाता है। योनि की शिराएँ फूल जाती हैं, जिससे इसकी शिराएँ नीली दिखाई देती हैं। 'एपीथिलीयम' के नीचे की 'पैपिला' बढ़ जाती हैं, जिससे योनि के नीचे का पृष्ठ बछड़े की जीभ के समान खुरदरा हो जाता है।

त्वचा—बहुत-सी स्त्रियों में (विशेषतः भूरी और काले रंग की) रंग निक्षिप्त हो जाता है। यह श्यामवर्ण निक्षेप प्रायः उदर

की मध्यस्थ श्वेत रेखा (लीनी या एल्बा) और इससे शाखाओं में निकलती हुई कई दिगंत सम रेखाओं में सबसे अधिक पाया जाता है। मुख और ग्रीवा में भी बिखरे हुए रंग के दाने दिखाई देते हैं। तब इनको 'क्लौज्मा अवरीनिया' कहते हैं। उदर के शीघ्रता से बढ़ने के कारण उदर-भित्ति की त्वचा बहुत खिंच जाती है, जिससे चर्म का निचला स्तर फट जाता है। इससे उदर पर दरारें-सी मालूम होने लगती हैं। छाती के नीचे भी ऐसी रेखाएँ दिखाई देती हैं। इन रेखाओं को 'स्ट्राग्रैविडम किकिस' कहते हैं। गर्भाधान के अतिरिक्त अन्य (अर्बुद आदि) कारणों से भी उदर के तन जाने से ये रेखाएँ पड़ जाती हैं। प्रसव-काल समाप्त होने पर ये रेखाएँ भर जाती हैं, परंतु इनके श्वेत चिह्न स्थिर रूप से अवशिष्ट रह जाते हैं।

स्तन—यह अपने मुख्य उद्देश्य 'दुग्ध-स्रवण' की तैयारी में तुरंत लग जाते हैं। गर्भाधान के तीसरे या चौथे मास में गर्भवती स्त्री अपने स्तनों में गुदगुदी तथा चुभने का अनुभव करने लगती है। इनमें द्वितीय मास से ही वृद्धि स्पष्ट हो जाती है। चूचुक अधिक स्तंभित और श्यामवर्ण हो जाते हैं। चौथे या पाँचवें मास में एक पतला स्निग्ध द्रव इन्हें दबाकर निकाल सकते हैं, जिसको 'कोलस्ट्रम' या 'खीस' कहते हैं। तृतीय मास में चूचुक के चारो ओर स्तन-मंडल में रंग निक्षिप्त होने लगता है, जिससे यह भूरा काला-सा दिखाई देता है। श्वेत रंग की स्त्रियों में यह रंग गहरा लाल होता है। स्तन-मंडल पर 'सीबीसियस ग्लैंड' (स्नेह-ग्रंथियों) के मुख फूल जाने से मसूर के समान १५ या १६ दाने दिखाई देते हैं। इनको 'मौंट गैमिरयस ट्युबरकल' कहते हैं। पिछले मासों में अधिक कृष्णकाय कामिनियों में एक बाह्य स्तन-मंडल भी दिखाई देता है। गर्भ-स्थिति के प्रथम काल में ही केशिकाएँ फूल जाती और त्वचा के नीचे नीली रेखाओं के रूप में दिखाई देने लगती हैं।

ग्रीवा—यद्यपि वृद्धि गर्भाशय के शरीर में ही स्थिर रहती है, तथापि थोड़ा-सा परिवर्तन गर्भाशय-ग्रीवा में होता है। ग्रीवा में रक्त-संचार की वृद्धि होना मुख्य परिवर्तन है, जिसके कारण ग्रंथियों का स्राव बढ़ जाता है, जिससे ग्रीवा ढीली तथा कोमल हो जाती है। परिणाम यह होता है कि श्लेष्मा का एक दृढ़ 'प्लग' (डाट) बन जाता है, जिससे ग्रीवा का मुख गर्भ-काल में बंद रहता है। यह परिवर्तन गर्भाशय के बहिर्मुख से आरंभ होकर संपूर्ण ग्रीवा में फैल जाता है। अधृतगर्भा गर्भाशय-ग्रीवा की तुलना हम नाक से कर सकते हैं तथा धृतगर्भा की ओष्ठों से। नाक कठोर होती है, और ओष्ठ मृदु होते हैं।

डिंब-ग्रंथियाँ तथा डिंब-प्रणाली—इनमें भी रक्त-संचार बढ़ जाता है, तथा एक पार्श्व का 'डिंब' प्रसूति के 'कौर्पसल्युटीयम' (पीतांग) के निर्माण के कारण बड़ा प्रतीत होता है। ज्यों-ज्यों गर्भाशय उदर की ओर बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों डिंब-प्रणाली और ग्रंथि गर्भाशय के साथ लंब रूप में (वर्टीकल) स्थित होती जाती है, जो 'चौड़े स्नायु-बंधन' के कारण सहज में ही हो जाती है। गर्भाशय का शिखर ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्रणालियों की संधि ऊपर के सिरे से अपेक्षया दूर होती जाती है, और अंत में प्रणाली गर्भाशय के सिरे से $\frac{1}{3}$ हिस्सा नीचे की ओर जुड़ती प्रतीत होती है।

योनि—रक्त-संचार के बढ़ने से योनि के स्राव में भी अंतर आ जाता है। योनि की शिराएँ फूल जाती हैं, जिससे इसकी शिराएँ नीली दिखाई देती हैं। 'एपीथिलीयम' के नीचे की 'पैपिला' बढ़ जाती हैं, जिससे योनि के नीचे का पृष्ठ बछड़े की जीभ के समान खुरदरा हो जाता है।

त्वचा—बहुत-सी स्त्रियों में (विशेषतः भूरी और काले रंग की) रंग निक्षिप्त हो जाता है। यह श्यामवर्ण निक्षेप प्रायः उदर

की मध्यस्थ श्वेत रेखा (लीनी या एल्बा) और इससे शाखाओं में निकलती हुई कई दिगंत सम रेखाओं में सबसे अधिक पाया जाता है। मुख और ग्रीवा में भी बिखरे हुए रंग के दाने दिखाई देते हैं। तब इनको 'क्लौज्मा अवरीनिया' कहते हैं। उदर के शीघ्रता से बढ़ने के कारण उदर-भित्ति की त्वचा बहुत खिंच जाती है, जिससे चर्म का निचला स्तर फट जाता है। इससे उदर पर दरारें-सी मालूम होने लगती हैं। छाती के नीचे भी ऐसी रेखाएँ दिखाई देती हैं। इन रेखाओं को 'स्ट्राइवैविडम किक्सि' कहते हैं। गर्भाधान के अतिरिक्त अन्य (अर्बुद आदि) कारणों से भी उदर के तन जाने से ये रेखाएँ पड़ जाती हैं। प्रसव-काल समाप्त होने पर ये रेखाएँ भर जाती हैं, परंतु इनके श्वेत चिह्न स्थिर रूप से अवशिष्ट रह जाते हैं।

स्तन—यह अपने मुख्य उद्देश्य 'दुग्ध-स्रवण' की तैयारी में तुरंत लग जाते हैं। गर्भाधान के तीसरे या चौथे मास में गर्भवती स्त्री अपने स्तनों में गुदगुदी तथा चुभने का अनुभव करने लगती है। इनमें द्वितीय मास से ही वृद्धि स्पष्ट हो जाती है। चूचुक अधिक स्तंभित और श्यामवर्ण हो जाते हैं। चौथे या पाँचवें मास में एक पतला स्निग्ध द्रव इन्हें दबाकर निकाल सकते हैं, जिसको 'कोलस्ट्रम' या 'खीस' कहते हैं। तृतीय मास में चूचुक के चारो ओर स्तन-मंडल में रंग निक्षिप्त होने लगता है, जिससे यह भूरा काला-सा दिखाई देता है। श्वेत रंग की स्त्रियों में यह रंग गहरा लाल होता है। स्तन-मंडल पर 'सीवीसियस ग्लैंड' (स्नेह-ग्रंथियों) के मुख फूल जाने से मसूर के समान १२ या १६ दाने दिखाई देते हैं। इनको 'मौंट गैमिरयस ट्युवरकल' कहते हैं। पिछले मासों में अधिक कृष्णकाय कामिनियों में एक बाह्य स्तन-मंडल भी दिखाई देता है। गर्भ-स्थिति के प्रथम काल में ही केशिकाएँ फूल जाती और त्वचा के नीचे नीली रेखाओं के रूप में दिखाई देने लगती हैं।

रक्त—इसमें प्रायः बहुत कम परिवर्तन होता है। प्रसूति के अंतिम मासों में रक्ताणु और 'होमो ग्लोबीन' की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। प्रजनन से पूर्व श्वेताणुओं में भी वृद्धि (ल्युको सायटोसिस) हो जाती है, जो सूतिका-गृह में भी तीन-चार दिन तक रहती है। कहा जाता है कि रक्त में क्षारीयपन बढ़ जाता है। परंतु अभी तक सिद्ध करनेवाले प्रमाणों की आवश्यकता है।

हृदय तथा रक्त-संचार—नवीन विचार यह है कि हृदय का दक्षिण भाग कुछ फैल जाता है, अर्थात् उसमें थोड़ी-सी 'कंपैनसैट्री हाईपर ट्रौफी' (सामयिक अतिवृद्धि) हो जाती है। उरोऽस्थि के दक्षिण-पार्श्व में जो डलनैस (ठोसपन) प्रतीत होती है, वह इसी के कारण होता है। परंतु यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रसूति के अंतिम समय में डायफ्राम वक्षोदर मध्यस्थ पेशी तथा हृदय ऊपर की ओर धकेल दिया जाता है, जिससे हृदय उरःस्थल की भित्ति के साथ आकर लग जाता है। अतएव बहुत कुछ ठोसपन इसी कारण होता है।

सामान्य प्रसूति-काल में रक्त का दवाव विशेष रूप से नहीं बढ़ता, किंतु प्रजनन-काल में मांस-पेशियों के प्रबल आकुंचन होने से दवाव बढ़ जाता है। परंतु धमनियों में कोई परिवर्तन नहीं होता। बढ़ते हुए गर्भ में उदर के दवाव के कारण शिराएँ फूलकर मुड़-सी जाती हैं।

डक्टलैस ग्लैंड्स (प्रणाली-रहित ग्रंथियाँ)—निकंठ कंठ-ग्रंथि बढ़ जाती है। यह बात सिद्ध हो चुकी है कि प्रसूति-काल में इस ग्रंथि के स्राव के कारण गर्भ बढ़ता है। डॉ० निकलसन ने यह सिद्ध कर दिया है कि इसी ग्रंथि के स्राव की कमी के कारण प्रसूति-काल में विषैले चिह्न उत्पन्न होते हैं *।

---

* इस ग्रंथि का स्राव बढ़ाने के लिये सर्वांगासन, हलासन, मत्स्येंद्रासन उत्तम हैं।

वृक्क और मूत्राशय—प्रसूति-काल में मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है, पर रचना में सामान्यतः कोई अंतर नहीं आता। प्रायः मूत्र में 'एल्ब्युमिन' पाई जाती है, जो योनि-स्राव के कारण भी हो सकती है। प्रसूति के दोषों में हम यह पढ़ेंगे कि थोड़ी भी 'एल्ब्युमिन' विशेष अर्थ रखती है, अतः विशेष रूप से अन्वेषण करना चाहिए। चौथे या पाँचवें मास में थोड़ी-सी शर्करा भी प्रायः आ जाती है, जो बहुत अवस्थाओं में 'लैक्टोज' (दुग्ध शर्करा) ही के रूप में होती है। यह स्तनों से अंतर्लीन होकर आती है।

प्रसूति के प्रथम सप्ताहों में गर्भाशय के दबाव से मूत्राशय झुक जाता और अगले दिनों में गर्भाशय के चढ़ाव के कारण मूत्राशय उदर में चढ़ जाता है। तब यह उदर का अंग बन सकता है।

फुप्फुस—वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के चढ़ाव से छाती की गहराई घट जाती और चौड़ाई उतनी ही बढ़ जाती है। पिछले दिनों में साँस में भी कुछ कठिनता हो जाती है। भ्रूण के 'मैटावोलिक प्रोसिस' के कारण कार्बोनिक एसिड गैस का निःसरण बढ़ जाता है, परंतु ओषजन की अंतःग्रहण की वृद्धि के लिये अभी कोई साक्षी नहीं मिली।

शरीर-भार—प्रसूति के उत्तरार्द्ध में भ्रूण के बढ़ने से शरीर-भार भी बढ़ जाता है। वसा की वृद्धि के कारण शरीर के भार में भी वृद्धि हो जाती है।

वात-संस्थान—प्रसूति के पूर्व मासों में माता के जिन अंगों में परिवर्तन होता है, उसके अनुकूल माता के अंगों को बनना पड़ता है। इसलिये यदि वात-संस्थान में कोई परिवर्तन हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। मुख्यतः प्रत्यावरण क्रिया बढ़ जाती है, जो मॉर्निंग सिकनैस (प्रातःकालीन वमन) के रूप में प्रकट होती है। अधिक सामयिक चिह्न—राल का टपकना, सिर-दर्द, भूख का न लगना तथा

स्वभाव में परिवर्तन (चिड़चिड़ापन) आवश्यक हैं। गर्भ-स्थिति के समय वात-प्रकृति की स्त्रियों में ये चिह्न विशेष रूप से प्रकट होते हैं। अतः बहुत-सी स्त्रियाँ अपने को अस्वस्थ अनुभव करती हैं, परंतु उत्तर काल में जब शरीर अपने को प्रत्यावरण क्रिया के लिये तुलित कर लेता है, तो पूर्ण स्वस्थ हो जाती हैं।

छठा प्रकरण

गर्भ-स्थिति की पहचान

"आर्त्तवादर्शनम्, आस्यसंश्रवणमनन्नाभिलाषः छर्दिररोचको-ऽम्लकामता च विशेषेण, श्रद्धाप्रणयश्चोच्चावचेषु भावेषु, गुरुगात्रत्वम्, चक्षुषो ग्लानिः, स्तन्योस्तन्यमोष्ठस्तनमण्डलयोश्च कृष्णात्वम्, कार्श्य-मत्यर्थम्, श्वयथु पादयोः ईषल्लोमराज्या योन्याश्चाटलत्वमिति गर्भ पर्यागते रूपाणि भवन्ति।" (चरक)

"स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा ;
अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः समील्यन्ते विशेषतः ।
अकामतः छर्दयति गन्धादुद्विजिते शुभात् ;
प्रसेकः सदनञ्चापि गर्भिण्या लिंगमुच्यते ।" (सुश्रुत)

उपद्रव-रहित गर्भ-स्थिति की पहचान पिछले दिनों में कठिन नहीं है। परंतु प्रथम तीन मासों में गर्भ-स्थिति के विषय में सम्मति देना अति कठिन है। भाग्य-वश इन्हीं दिनों निश्चित सम्मति देना आवश्यक होता है। इस समय बहुत-से चिह्नों को एकत्रित कर (जिनमें एक भी निश्चित नहीं) हम निश्चित सम्मति बना सकते हैं। चिकित्सक को इस समय की परीक्षा में पूरा ठीक उतरना चाहिए। कारण, पीछे से निश्चय हो ही जाता है। उपद्रव-सहित गर्भ-स्थिति की पहचान प्रत्येक अवस्था में दुष्कर है।

गर्भ-स्थिति के परिचायक चिह्नों को निश्चय की दृष्टि से हम तीन भागों में बाँट सकते हैं—

१. काल्पनिक २. संभवनीय ३. अवश्यंभावी।

काल्पनिक—इन चिह्नों का अनुभव स्त्रियाँ स्वयं करती हैं। परीक्षा करने पर यह अनिश्चित रूप में ही होते हैं।

१. मासिक स्राव का अवरोध—यह सबसे पूर्व चिह्न है, जिसके कारण स्त्रियाँ अपने को सगर्भा समझने लगती हैं। विवाहित स्त्रियों में जिनको यह धर्म नियमित रूप से होता है, यह चिह्न विशेष मूल्य का है। परंतु मासिक स्राव का अवरोध कई अन्य कारणों से भी हो सकता है। यथा—

(क) क्लोरोसिस (कुंभकामला) यौवनारंभ में क्षय रोग एवं अन्य निर्बल करनेवाले रोग।

(ख) नवोढ़ा स्त्रियों में कभी-कभी कुछ काल के लिये भी स्राव का अवरोध हो जाता है। कई अविवाहित स्त्रियों में गर्भ-स्थिति के डर से ही अवरोध हो जाता है। कई वंध्या स्त्रियों में (जो बच्चे के लिये बड़ी लालायित रहती हैं) स्राव अवरोध हो जाता है।

(ग) मैनापोज (निवृत्ति) के समीप पहुँचने पर भी स्रावावरोध हो जाता है। इसके अतिरिक्त—

(घ) गर्भ-स्थिति हो जाने पर भी कभी-कभी स्राव प्रचलित रहता है। यद्यपि यह बहुत कम होता है, तथापि प्रथम तीन मासों में जब तक आधार गर्भ-कला वेष्ठन गर्भ-कला तक नहीं मिलती, इसका होना बहुत संभव है। इस प्रकार के स्राव असली स्रावों से बहुत कम राशि में होते हैं।

(ङ) भावी गर्भपतन के समय होनेवाले स्राव मासिक धर्म का भ्रम करा सकते हैं।

(च) दुग्ध-काल में यदि स्रावावरोध हो, तो भी गर्भ-स्थिति हो जाती है। जिन स्त्रियों में दुग्ध-काल के समय भी स्राव प्रचलित रहे, तो गर्भ-स्थिति बहुत शीघ्र हो जाती है।
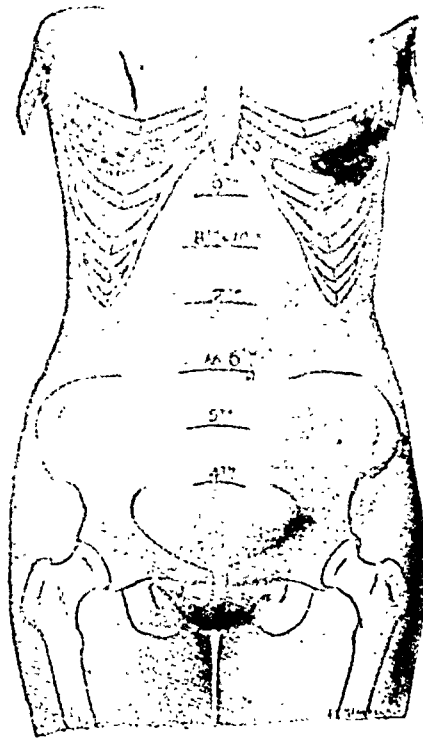
चित्र ९—गर्भ की मासिक वृद्धि (पृष्ठ ६१)

(छ) रजोदर्शन से पूर्व तथा पश्चात् भी गर्भ-स्थिति देखी गई है।

२. प्रातःकालीन वमन—गर्भ-स्थिति के पहले मासों में ३/४ स्त्रियों को यह होता है। सामान्यतः यह दूसरे मास से आरंभ होकर चौथे में समाप्त हो जाता है। स्त्रियाँ प्रातः जब बिस्तर से उठती हैं, तब उनको वमन होती है। कइयों का जी मिचलाता है; दूसरों को चमकते हुए श्लेष्मा की वमन और कइयों को, जो भाग्यहीन होती हैं, उत्क्लेश, वमन और हृल्लास सब होते हैं। इससे प्रायः शरीर की कोई क्षति नहीं होती।

३. स्तनों में परिवर्तन—प्रथम गर्भ-स्थिति में ये लक्षण विशेष महत्त्व के हैं, परंतु बहुप्रजाता स्त्रियों में इनका विशेष मूल्य नहीं। कारण, प्रथम गर्भ-स्थिति के पश्चात् रंग का निक्षेप सर्वथा लुप्त नहीं होता, अपितु प्रत्येक गर्भ-स्थिति इसको बढ़ाती जाती है। दुग्ध-स्राव कई वर्षों तक जारी रहता है। ओवेरियन ट्युमर (डिंबार्बुद) की अवस्था में दुग्ध-स्राव और स्तन-वृद्धि दोनो पाए जाते हैं।

४. उदर में परिवर्तन—अन्य लक्षणों के उपस्थित होने पर उदर पर किकिसों के चिह्न गर्भ-स्थिति के निश्चायक होते हैं। उदर की शनैः-शनैः वृद्धि बड़े महत्त्व की है, जो विवाहित स्त्रियों में प्रायः गर्भ-धारण के कारण ही होती है। प्रथम दो मासों में उदर का निचला भाग फैल जाया करता है।

अन्य अवस्था में, यथा—आँतों में हवा भरने से तथा उदर में चर्बी के निक्षेप के कारण प्रथम मास में ही उदर-वृद्धि होती है। प्रथम गर्भ-स्थिति में उदर की मांस-पेशियाँ कठिन तथा खिंची होती हैं, अतः वृद्धि बहुत स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। पश्चात् उदर-पेशियों के खिंचाव न होने से उदर-वृद्धि बहुत अधिक दिखाई देती है।

५. नाभि की स्थिति—प्रथम तीन मासों में गहरी तथा संकुचित होती है। द्वितीय मासत्रयी में क्रमशः उथली हो जाती है। सातवें मास में उदर के पृष्ठ के समतल हो जाती है। पिछले दो मासों में उदर के पृष्ठ से ऊपर उभर आती है।

६. क्विक्निंग (गति-ज्ञान)—इससे माता को गर्भ की गति का सबसे प्रथम ज्ञान अभिप्रेत है। यह ४½ या ५वें मास के बाद ज्ञात होता है। इसके दो कारण हैं—

(क) चूँकि इस समय से पूर्व गर्भाशय उदर-भित्ति के साथ नहीं लगता। माता को गति का ज्ञान तभी हो सकता है, जब गति गर्भाशय की भित्ति से गुज़रकर उदर-भित्ति में पहुँचे।

(ख) भ्रूण इस समय से पूर्व गति करने में असमर्थ होता है, एवं गर्भ-जल की मात्रा अपेक्षया अधिक होती है, जिससे गति के कंपन गर्भाशय को पार करके उदर-भित्ति तक नहीं पहुँच सकते। प्रथम गति बहुत मंद होती है। इसकी समता हम दोनो हाथों में दबे हुए पक्षी के फड़फड़ाने से कर सकते हैं। प्रीमीग्रैवाइड (धृतैकगर्भा) स्त्रियों में इस गति के कारण आँतों में हवा भरने का भी धोका हो सकता है। परंतु धृतबहुगर्भा स्त्रियों को इसका ज्ञान सुचारुतया हो जाता है। यदि परीक्षक के हाथ को इनका परिज्ञान न हो, तो इन्हें विशेष महत्त्व नहीं देना चाहिए।

७. मूत्राशय में उत्तेजना—यह पहले या अंतिम दो-तीन सप्ताहों में अनुभव होती है। गर्भ-स्थिति के प्रारंभ में यह गर्भाशय के सम्मुख झुकाव से तथा पिछले दिनों में गर्भाशय के उतार के कारण होती है।

८. अनेक प्रत्यावर्तित वात-चिह्न—दिखाई दे सकते हैं, एवं पहचान को दृढ़ कर सकते हैं। ये लक्षण प्रायः द्वितीय तथा अग्रिम गर्भ-स्थितियों में विशेष महत्त्व के हैं, जब कि प्रथम गर्भ-

स्थिति में स्त्री इनका अनुभव कर चुकी होती है। मुख्य चिह्न ये हैं—

स्वभाव का चिड़चिड़ा होना, सुस्ती, भूख बिगड़ना तथा स्त्रियों को कई पदार्थों में विशेष स्पृहा होना, यथा मिट्टी खाने की इच्छा, सुगंधित तैल या वस्तुओं की इच्छा, मसालेदार भोजन की चाह बहुत देखी गई है *।

संभाविक—ये सब शारीरिक चिह्न हैं, जो चिकित्सक की परीक्षा करने पर ही ज्ञात होते हैं। प्रायः इन सबका सीधा संबंध गर्भाशय से होता है।

१. गर्भाशय के परिमाण में परिवर्तन—गर्भ-स्थिति के अतिरिक्त अन्य किसी भी कारण से गर्भाशय इतनी शीघ्रता, इतने सातत्य या इतने क्रम से नहीं बढ़ता। इसलिये यद्यपि उदर के विस्तार का क्रमशः होना गर्भ-स्थिति का एक काल्पनिक चिह्न है, तथापि यदि एक वार यह दिखा दिया जाय कि यह विस्तार गर्भाशय की वृद्धि के कारण ही है, तो हमारी कल्पना एक दृढ़ साक्षी से परिपुष्ट हो जाती है।

(क) गर्भाशय की आकृति में परिवर्तन—पिछले अध्याय में इनका वर्णन हो चुका है। यदि इनका विचार गर्भाशय के विस्तार तथा घनता के साथ किया जाय, तो ये विशेष महत्त्व के हैं। गर्भाशय की वर्तुलाकृति तथा सम संतत विस्तार एवं गर्भाशय की सम्मुख तथा पृष्ठ-भित्ति पर 'सीता' (फरो) का दर्शन इत्यादि चिह्न गर्भाशय की संभावना के परिपोषक हैं।

---

* चरक शारीर—"यद्यद्यस्य यस्य व्याधेर्निदानमुक्तं तत्तदा सेवमानन्तर्वत्नी तद्विकारबहुलमपत्यं जनयति।"

"इन्द्रियार्थांस्तु यान् यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी;
गर्भाधातभयात् तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत्।" (सुश्रुत)

(ख) गर्भाशय की घनता में परिवर्तन—यह बताया जा चुका है कि पूर्व सप्ताहों में गर्भाशय मृदु तथा स्थिति-स्थापक हो जाता है। गर्भाशय की स्थिति-स्थापकता या दोलावृत्ति (फ्लैक-चुएशन) 'रेशस' के चिह्न से प्रसिद्ध है।

२. हीगर साइन—यह बहुत ही आवश्यक चिह्न है, जो छठे सप्ताह से १०वें सप्ताह तक प्रकट किया जा सकता है।
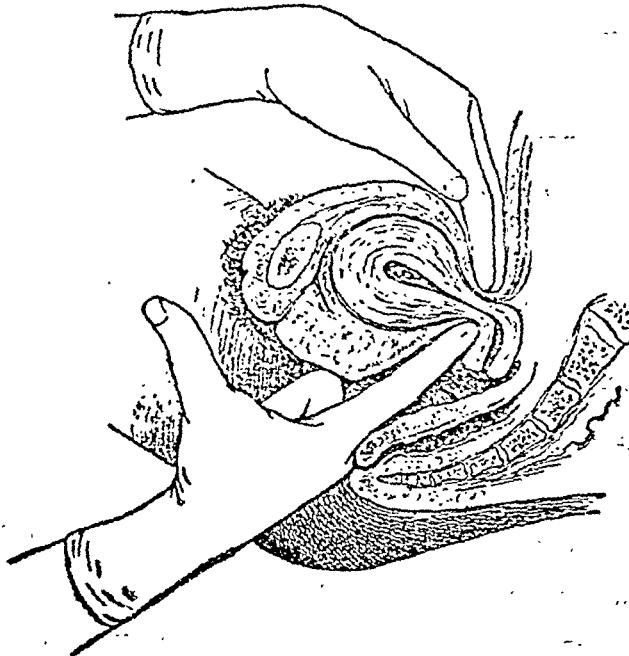
विधि—यदि गर्भाशय ठीक आगे को झुका हुआ है, तो एक हाथ की उँगली योनि के अग्र कोण में रक्खो, और दूसरे हाथ की उँगलियाँ कोष्ठ की ओर से गर्भाशय के पीछे ले जाकर अंदर की उँगली से मिलाने की चेष्टा करो, तो दोनो परस्पर मिल जायँगी, और बीच में कुछ नहीं प्रतीत होगा। गर्भाशय का शेष गात्र तथा ग्रीवा दो अलग-

चित्र २४—हीगर साइन

(ख) गर्भाशय की घनता में परिवर्तन—यह बताया जा चुका है कि पूर्व सप्ताहों में गर्भाशय मृदु तथा स्थिति-स्थापक हो जाता है। गर्भाशय की स्थिति-स्थापकता या दोलाकृत्ति (फ्लैक्चुएशन) 'रेशस' के चिह्न से प्रसिद्ध है।

२. हीगर साइन—यह बहुत ही आवश्यक चिह्न है, जो छठे सप्ताह से १०वें सप्ताह तक प्रकट किया जा सकता है।
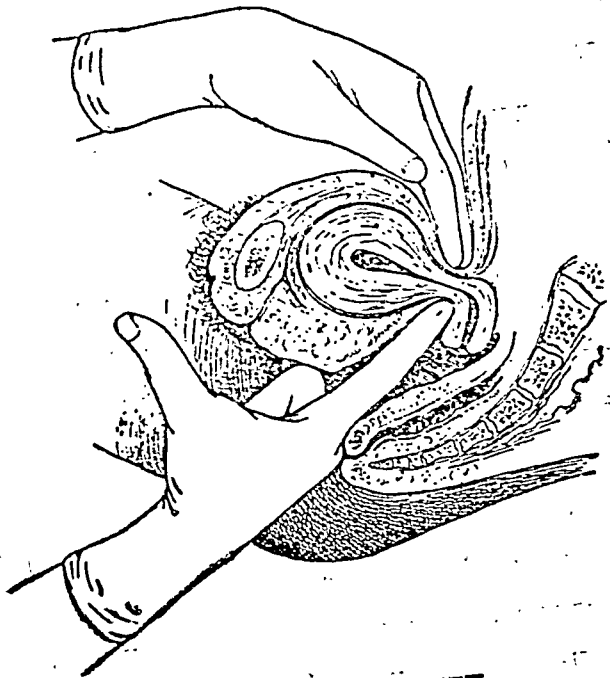
विधि—यदि गर्भाशय ठीक आगे को झुका हुआ है, तो एक हाथ की उँगली योनि के अग्र कोण में रक्खो, और दूसरे हाथ की उँगलियाँ कोष्ठ की ओर से गर्भाशय के पीछे ले जाकर अंदर की उँगली से मिलाने की चेष्टा करो, तो दोनों परस्पर मिल जायँगी, और बीच में कुछ नहीं प्रतीत होगा। गर्भाशय का शेष गात्र तथा ग्रीवा दो अलग-

चित्र २४—हीगर साइन

की श्लैष्मिक कला नीली पड़ जाती है, जो द्वितीय या तृतीय मास के प्रारंभ में होती है। यह लक्षण (जैकनरस साइन) श्रोणी में अधिक रक्त-संचार के कारण भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त योनि के निचले हिस्सों में शिराएँ फूलकर मुड़ जाती हैं। इसको 'व्लुगस साइन' कहते हैं।

श्लैष्मिक स्राव की वृद्धि तथा रंग के खुरदरेपन के विषय में पहले लिखा जा चुका है।

७. बैलेंटोमेंट (कंदुकोत्क्षेपण)—यह फ़रासीसी भाषा का शब्द है, जिसका शब्दार्थ गेंद उछालना है। यहाँ इस शब्द का अभिप्राय गर्भाशय में स्थित भ्रूण को धीरे से गति देकर परीक्षा करने की रीति से है। यह रीति (कंदुकोत्क्षेपण) दो प्रकार की है—अंतः और बाह्य।

(क) अंतःकंदुकोत्क्षेपण—यह बहिः कंदुकोत्क्षेपण से अधिक संतोषप्रद एवं आवश्यक है। इसकी विधि यह है—

स्त्री को पीठ के बल सीधा लिटाकर उसके कंधों को तकिए की सहायता से थोड़ा ऊँचा कर दो। अब उसकी योनि में दो उँगली डालो, जो गर्भाशय-ग्रीवा तक पहुँच जायँ। वहाँ गर्भ का कठिन सिर पड़ा मालूम होगा (चौथे या ५वें मास में)। दूसरा हाथ ऊर्ध्वांश के ऊपर अच्छी तरह जमाकर रक्खो। स्त्री से एक गहरी साँस लेने और दो-तीन बार रोकने के लिये कहो। अब योनि में प्रविष्ट उँगलियों को ऊपर की ओर एक तेज़ झटका दो। भ्रूण का सिर गर्भ-जल में चढ़ता हुआ तथा उँगलियों से पृथक् होता प्रतीत होगा। एक क्षण के बाद भ्रूण का सिर फिर नीचे आता और उँगलियों पर स्थित होता प्रतीत होगा।

यह चिह्न गर्भ-स्थिति का बहुत कुछ निश्चय करनेवाला समझा जाता है, और है भी एक सावधान परीक्षक के लिये, परंतु मूत्राशय में अश्मरी और गर्भाशय का तांतविक अर्बुद भ्रम करा सकते हैं। यह कंदुकोत्क्षेपण चौथे मास से सातवें मास तक किया जा सकता है।
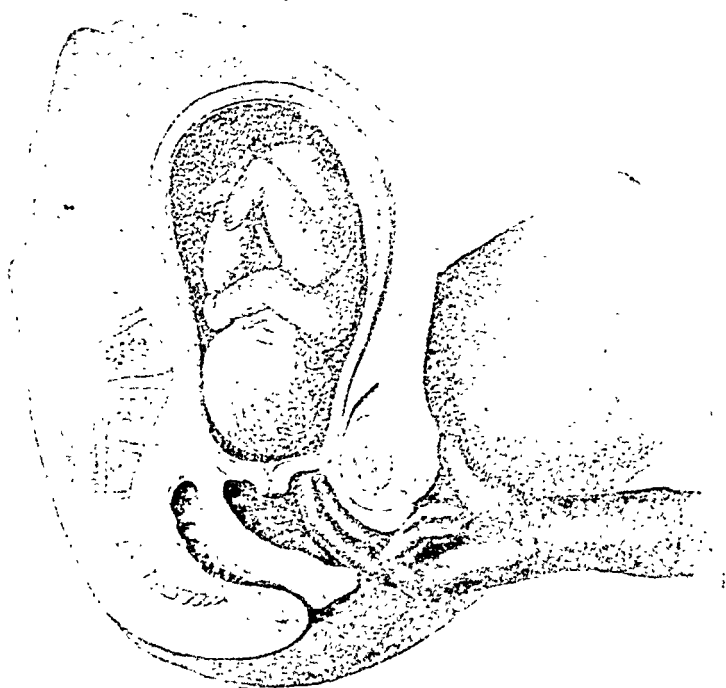
चित्र ६—अंतःकंदुकोत्क्षेपणी

(पृष्ठ ६४)

इससे पूर्व भ्रूण के सिर के अति मृदु होने तथा सातवें मास के पश्चात् गर्भ-जल की मात्रा अति कम होने से यह विधि कठिन हो जाती है।

(ख) बहिःकंदुकोत्क्षेपण—उदर पर गर्भाशय के दोनो ओर दोनो हाथों को रखकर एक हाथ की उँगली से उदर-भित्ति को झटका दो, तब भ्रूण दूसरे हाथ की उँगलियों को लगता प्रतीत होगा, और फिर लौटकर पहले हाथ की उँगलियों को भी लगता प्रतीत होगा। इस परीक्षा से जलोदर के जल में तैरता हुआ डंठलदार अर्बुद भी गर्भ का धोखा दे सकता है। इसका मूल्य अंतःकंदुकोत्क्षेपण से कम है।

८. यूटराइन सफ्ल (गर्भाशयैकस्वन)—मालगाड़ी के इंजन के चलते समय जैसा 'भभ-भभ' शब्द सुनाई देता है, वैसा ही शब्द गर्भ-स्थिति के चौथे मास के अंत से गर्भाशय के निचले भाग में दोनो ओर सुनाई देता है। यह शब्द माता की नाड़ी के समकाल में धौंकनी के एक हलके शब्द के समान 'मर-मर' होता है। प्रथम इसको 'कमलस्वन' (प्लैसैंटल सफ्ल) कहते थे, क्योंकि इसका कारण कमल के रिक्त स्थान में रक्त का बहाव समझा जाता था। परंतु अब यह विश्वास किया जाता है कि यह शब्द गर्भाशय की धमनियों की शाखाओं से, गर्भाशय की भित्ति में स्थित, फैली हुई रक्त-वाहिनियों में रक्त के गुज़रने, अर्थात् संकुचित स्थान से विस्तृत स्थान में जाने से, एक मर-मर के रूप में उत्पन्न होता है। निर्बल स्त्रियों में यह शब्द तीव्र सुनाई देता है। यदि इस शब्द को सुनते हुए गर्भाशय का आकुंचन हो जाय, तो इसकी तीव्रता और ऊँचाई बढ़ी मालूम होती है।

यह चिह्न अवश्यंभावी चिह्नों के विभजन में पहुँचने से थोड़ा ही चूकता है, चूँकि इसी प्रकार का शब्द सांतविक अर्बुद में भी सुनाई देता है, परंतु वह ऊँचाई और तीव्रता में बदलता नहीं। गर्भ-

स्थिति की पहचान में यह चिह्न बहुत मूल्यवान् है, क्योंकि, यह भ्रूण-हृदय-शब्द से दो-तीन सप्ताह पूर्व ही सुनाई देने लगता है।

अवश्यंभावी चिह्न—

१. भ्रूण-हृदय-शब्द का सुनना, उसकी गति का गिनना, यदि उपस्थित हो, तो नालस्वन (फ्युनिक सफ्ली) का सुनना।

२. भ्रूण की चपल गतियों का अनुसंधान।

३. भ्रूण के भिन्न-भिन्न भागों को छूकर पता लगाना। भ्रूण के चारो ओर की सीमा का स्पर्शन द्वारा पहचानना।

भ्रूण-हृदय-शब्द का सुनना—यह पाँचवें मास के आधे या अंत में सुनाई देता है। तकिए के नीचे रक्खी घड़ी के शब्द के समान होता है। इसकी संख्या १ मिनट में १२० से १४० होती है। बड़े बच्चों में कम और छोटों में अधिक होती है। बालकों में १३० से कम और बालिकाओं में १३० से अधिक होती है। परंतु पुत्र या कन्या के लिये भविष्यवाणी करने के लिये यह बहुत ही निर्बल आधार है। भ्रूण की चपल गतियों के कारण हृदय-शब्द की संख्या बढ़ जाती तथा गर्भाशय के आंकुचन के कारण एवं कमल-नाल पर किसी प्रकार का दबाव पड़ने (जैसा कि नितंबोदय में) और रक्त का दबाव बढ़ जाने के कारण कम हो जाती है। यह ओषजन की कमी एवं 'कार्बन डायौक्साईड' की अधिकता तथा बच्चे के थककर शिथिल हो जाने के कारण भी कम हो जाती है। इस प्रकार गति-संख्या भ्रूण की दशा की अच्छी परिचायक है, जो विलंब प्रसूति तथा कठिन प्रसूतियों में विशेष मूल्यवान् है। संक्षेप से हम यह कह सकते हैं कि यदि यह संख्या १०० से कम या १६० अधिक हो, तो भ्रूण का जीवन संकट में है।

जब सबसे प्रथम हृदय-शब्द सुनाई देने लगता है, तो वह विटप-संधि के ऊपर मध्य में द्विनाली-यंत्र (स्टैथसकोप) रखने से सबसे

अधिक स्पष्ट सुनाई देता है। उसके पश्चात् शब्द के तीव्रतम सुनाई देने का स्थान बच्चे की स्थिति के अनुसार बदलता रहेगा। चूँकि शब्द पर्शुकास्थियों और स्कंधास्थि को पार करके आता है, अतः गर्भाशय की भित्ति के उस भाग पर, जहाँ बच्चे का स्कंध रहता है, यह सबसे अधिक सुनाई देगा।

बच्चे के साधारणतम प्रदर्शन तथा परिस्थिति में (वरटैक्स-लैफ़्ट ऑक्सिपीटो एंटरीयर) हृदय-शब्द नाभि तथा वाम 'इंटिरयर सुपीरयर इलीयक स्पाईन' के बीच में अधिक सुनाई देता है। भ्रूण-हृदय-शब्द को सुनने के लिये गृह में पूर्ण शांति होनी चाहिए। द्विनाली-यंत्र और उदर के बीच में वस्त्र का व्यवधान सबसे कम रखना चाहिए। बच्चे के हृदय-शब्द की गिनती करके माता की तथा अपनी नाड़ी भी गिननी चाहिए, और फिर तीनों की तुलना करनी चाहिए।

भ्रूण-हृदय-शब्द का सुनाई देना गर्भ-स्थिति का एकांततम पूर्ण निश्चयात्मक लक्षण है। यह केवल गर्भ-स्थिति को ही सिद्ध नहीं करता, अपितु यह भी बताता है कि बच्चा जीवित है। भ्रूण-शब्द का सुनाई न देना गर्भ-स्थिति के अभाव का सूचक नहीं। चूँकि ऐसा कई अन्य कारणों से भी हो सकता है, परंतु एक बार सुनाई देने पर फिर अनेक प्रयत्न करने पर भी यदि सुनाई न दे, तो मृत्यु की शंका उत्पन्न कर सकता है।

भ्रूण-हृदय-शब्द तथा गर्भाशय के शब्द के अतिरिक्त कई और शब्द भी सुनाई दे सकते हैं। भ्रूण की गति के कारण जैसे खुरेचने, भपकने आदि के शब्द एवं कइयों में नाल-शब्द भी सुनाई देता है।

नाल-शब्द—यह शब्द भ्रूण-हृदय-शब्द के समकाल में, भक्षा के शब्द के समान सुनाई देता है, जो नाभि-नाल के रक्त-परिवाहन में बाधा पड़ने के कारण होता है। इस बाधा का कारण नाल में गाँठ पड़ने या भ्रूण के ऊपर चक्कर आने या इसके ऊपर दबाव पड़ने से उत्पन्न होता है। गर्भ-स्थिति के अंत में यह १० प्रतिशत स्त्रियों में

सुनाई देता है। इसका संपूर्ण प्रसूति-काल में सुनाई देना बच्चे के लिये एक अशकुन है। स्पष्ट शब्दों में यह चिह्न रोग-जन्य है। परंतु यदि सुनाई दे, तो गर्भ-स्थिति का पूर्ण निश्चयात्मक चिह्न है।
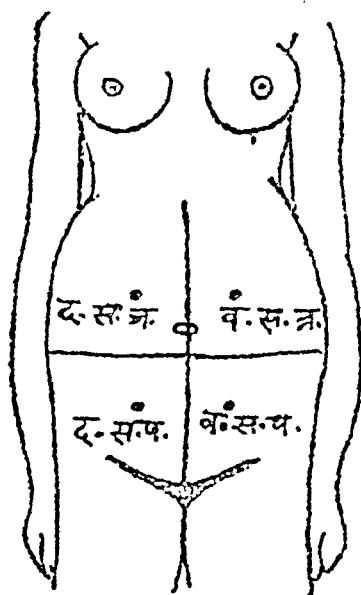
चित्र २९—श्रवण-परीक्षा

भ्रूण के भिन्न-भिन्न भागों की स्पर्श द्वारा पहचान—गर्भ-स्थिति के मध्यकाल से उदर पर स्पर्श करके हम भ्रूण के भिन्न-भिन्न भागों का पता लगा सकते हैं। स्पर्शन सावधानी से करना चाहिए, जिसके नियम आगे बताए जायँगे। भ्रूण के सिर, पीठ, नितंब आदि भागों की परीक्षा निश्चित रूप से कर लेनी चाहिए। क्योंकि 'गुणित अंतः-परिवेष्टित तांतविक अर्बुद' (मल्टीपल सब पैरोटोनियल फाईब्रल ट्युमर) की उपस्थिति गर्भ-स्थिति का धोखा दे सकती है। इसके कारण गर्भ-स्थिति की पहचान बड़े झमेले में पड़ जाती है।

भ्रूण-गति-परिज्ञान—यह बताया जा चुका है कि इनका ज्ञान

चित्र २६ से २६—स्पर्शन-परीक्षा
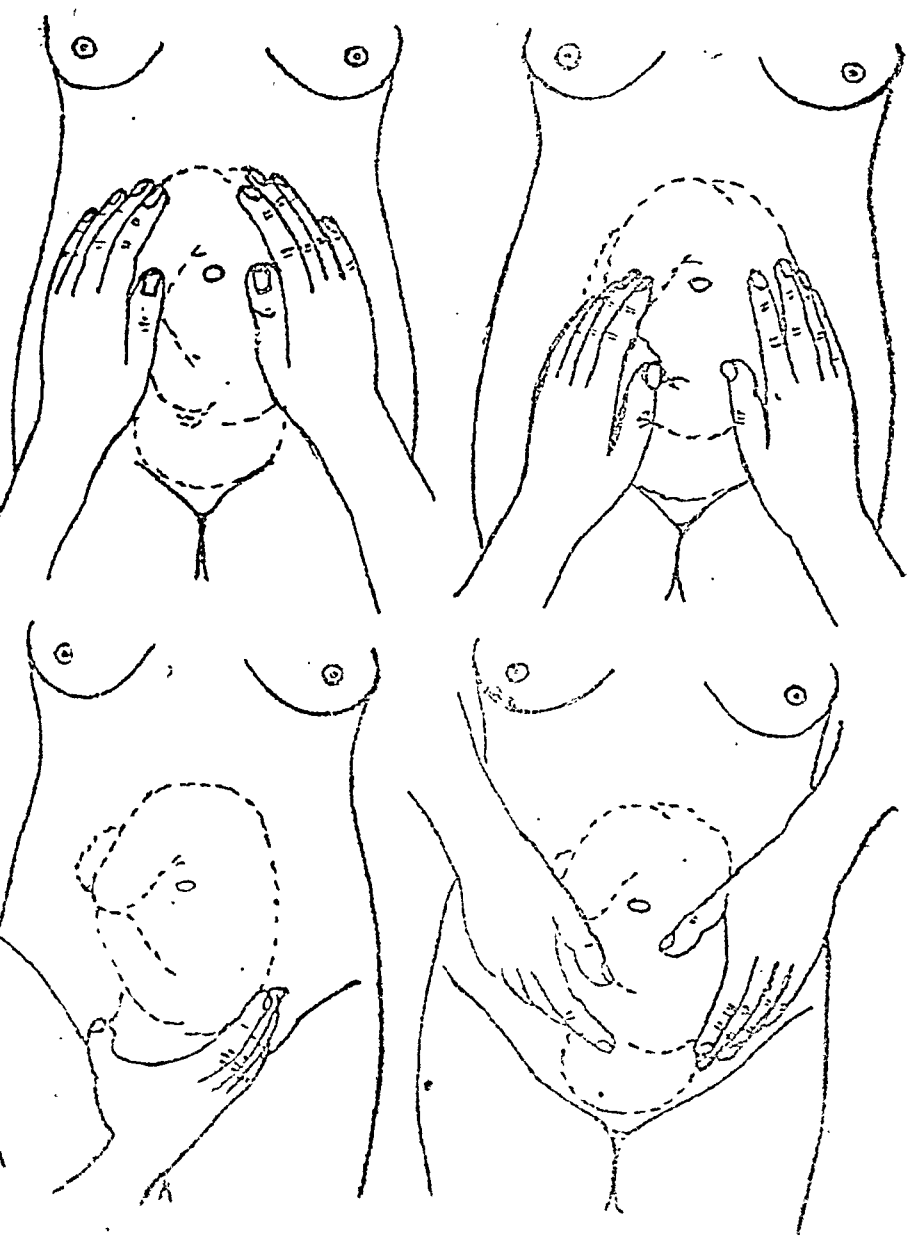
सबसे प्रथम (गर्भ-स्थिति के ऊर्ध्व काल में) माता को होता है। उस समय से आगे उदर पर स्पर्शन या श्रवण द्वारा बच्चे के पैर फेकने का परिज्ञान हो सकता है। पिछले महीनों में स्त्री के उदर को छूने से बच्चे की गति उत्तेजित हो जाती है । पतली उदरवाली स्त्रियों में यह गति देखी भी जा सकती है। ये गतियाँ गर्भ-स्थिति की पूर्ण निश्चायिका हैं।

गर्भ-स्थिति के चिह्नों का आपेक्षिक महत्त्व—अवश्यंभावी चिह्नों में से एक का भी पूर्ण अनुसंधान गर्भ-स्थिति में किसी प्रकार भ्रम नहीं रहने देता। कई संभाविक चिह्नों के आधार से भी गर्भ-स्थिति का पूर्ण ज्ञान हो सकता है। परंतु जब स्त्री को आचार-विषयक सम्मति देनी हो, तो इन पर निश्चय नहीं करना चाहिए *। ऐसी अवस्था में निश्चय को किसी अवश्यंभावी चिह्न के व्यक्त होने तक शिथिल कर देना चाहिए। सामान्य चिकित्साभ्यास में काल्पनिक चिह्न ही पर्याप्त आधार होते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ किसी भी अवश्यंभावी चिह्न के व्यक्त होने से पूर्व ही काल्पनिक चिह्नों के आधार पर ही गर्भ-स्थिति का निश्चय कर लेती हैं।

विभेदक पहचान—पहले महीने में गर्भ-स्थिति की पहचान 'पुरातन गर्भाशय-शोथ', 'अंतःकला' के नीचे 'अर्बुदोपस्थिति' और 'रक्तसर' (हैमेटोमेटा) से करनी पड़ती है। सगर्भ गर्भाशय की अपेक्षा रक्तसर में गर्भाशय बहुत अधिक खिंचा हुआ और पुरातन गर्भाशय-शोथ तथा अर्बुद-उपस्थिति में बहुत अधिक कठिन होता है। इन सबका इतिहास भी भिन्न-भिन्न होता है। सावधानी से परीक्षा करने पर 'स्मॉल ओवेरीयन सिस्ट' या 'फिब्राईड स्वैलिंग' भी पाए जा सकते हैं। जिन रोगियों में गर्भ-स्थिति और

* देखिए, लेखक की न्याय-वैद्यक और विष-तंत्र पुस्तक। लेखक से प्राप्य।

द्विबार्बुद दोनों एक साथ होते हैं, उनमें पहचान बहुत कठिन होती है। ऐसी अवस्था में दो नियम याद रखने चाहिए—

१. संज्ञापहारक औषध के प्रयोग में सावधानी से परीक्षा करें।

२. यदि फिर भी संदेह रहे, तो अंतिम निर्णय, कुछ सप्ताहों के लिये, स्थगित कर दें। जब तक कोई अवश्यंभावी चिह्न स्पष्ट न हो।

गर्भ-स्थिति-भ्रम—यह विशेष अवस्था कभी-कभी उन स्त्रियों में, जो बच्चों के लिये बहुत उत्सुक रहती हैं, पाई जाती है। वे गर्भ-स्थिति के स्वयं परिज्ञात सब चिह्नों का अपने में अनुभव करने लगती हैं। उन्हें प्रतीत होता है कि उनके स्तन तथा उदर में विस्तार हो रहा है, और स्रावावरोध भी बहुत कुछ पूर्ण-सा होने लगता है। विशेषतः यदि स्त्री का रजोनिवृत्ति-काल समीप हो। इस समय प्रायः सब अवस्थाएँ वास्तविक गर्भ-स्थिति के समान पाई जायँगी। ऐसे समय संज्ञापहारक औषध से ही शुद्ध पहचान हो सकती है *। तब उदर का विस्तार, जो आँतों में वायु भरने से पैदा हुआ था, औषध-प्रभाव से लुप्त हो जाता एवं योनि द्वारा परीक्षण करने पर पता लग जाता है कि गर्भाशय अपने वास्तविक रूप में है। ऐसी स्त्रियों को निश्चय कराने के लिये उनके पति या मित्र को परीक्षा के समय उपस्थित रखना चाहिए।

---

* भूत्वाऽथवा नश्यति केन गर्भः ?

असृङ् निरुद्धं पवनेन नार्याः गर्भं व्यवस्यन्त्यबुधाः कदाचित।
गर्भस्य रूपं हि करोति तस्यास्तदस्त्रमस्राविविवर्द्धमानम् ॥ १ ॥
मदाग्निसूर्यश्रमशोकरोगैः उष्णान्नपानैरथवाऽप्रवृत्तम्।
दृष्ट्वा द्रवं न च गर्भसंज्ञं केचिन्नरा भूतहृतं वदन्ति ॥ २ ॥

गर्भ के जीवन तथा मरण की पहचान—

गर्भ जीवित है, इसकी पूर्ण साक्षी गर्भ का हृदय-शब्द और उसकी चपल गतियाँ हैं। उसके जीवन की कल्पना तब तक बनाए रखनी चाहिए, जब तक उसकी मृत्यु का पूर्ण निश्चय न हो जाय।

प्रारंभिक मासों में निश्चय—यदि बहुबार परीक्षा करने पर भी गर्भाशय का विस्तार होता प्रतीत न हो, या स्तन-वृद्धि बंद हो जाय अथवा होकर घट जाय, तो मृत्यु का संदेह हो सकता है। पिछले मासों में हृच्छब्द के एक बार सुनाई देने पर फिर शब्द का सुनाई न देना एवं चपल गतियों के परिज्ञान होने पर फिर बंद हो जाना, मृत्यु का बहुत कुछ संशय करा देता है।

कुछ बच्चों के मरने पर माता को भारीपन, सुस्ती, सर्दी तथा अन्य इसी प्रकार के चिह्नों का अनुभव होने लगता है *। यदि इन चिह्नों के साथ स्तन का संकोच आरंभ हो जाय, तो मृत्यु की पहचान बहुत कुछ निश्चित हो जाती है। दुर्गंधि-युक्त भूरा स्राव, गर्भाशय-ग्रीवा में पिचके हुए भ्रूण का स्पर्श मृत्यु की पहचान को संशय-रहित कर देते हैं।

ओजोऽशनानां रजनीचराणां आहारहेतोर्न शरीरमिष्टम्।
गर्भं हरेयुर्यदि ते न मातुः लब्धावकाशा न हरेयुरोजः ॥ २ ॥ (चरक)

* मृतगर्भ के लक्षण—तस्याः स्तिमितं स्तब्धमुदरं आहतं शीतमश्मान्तर्गतमिव भवति अस्पन्दनो गर्भः शूलमधिकमुपजायते। नचान्यः प्रादुर्भवन्ति। योनिर्न प्रस्रवति। अक्षिणी चास्याः स्रस्ते। ताम्यति, व्यथते, भ्रमते। श्वसित्यरतिबहुला च भवति। न चास्या वेगप्रादुर्भावो यथावदुपलभ्यते। इत्येवं लक्षणां स्त्रियं मृतगर्भेयमिति विद्यात्।

(चरक शारीर ८वाँ)

गर्भ-स्थिति के मुख्य चिह्नों का पट तथा उनके व्यक्त होने का समय

लक्षण	मास १	२	३	४	५	६	७	८	९
१. स्रावावरोध	×	×	×	×	×	×	×	×	×
२. गर्भाशयोत्तेजना	×	×	?	०	०	०	०	०	×
३. प्रातःकालीन वमन	?	×	×	×	?	?	?	?	?
४. स्तन-विस्तार	०	×	×	×	×	×	×	×	×
५. गर्भाशय के परिमाण में परिवर्तन (घनता + आकृति)	?	×	×	×	×	×	×	×	×
६. योनि-स्फुरण	०	०	×	×	×	×	×	×	×
७. स्तन-मंडल	०	०	×	×	×	×	×	×	×
८. गर्भाशय-ग्रीवा का मृदुत्व	०	०	×	×	×	×	×	×	×
९. सांतर आकुंचन	०	०	×	×	×	×	×	×	०
१०. ग्रीवा का दृश्यमान लघुत्व } ११. योनि का रंग-परिवर्तन }	०	०	?	×	×	×	×	×	×
१२. उदर का शनैः-शनैः विस्तार	०	०	०	×	×	×	×	×	×
१३. गर्भाशय-स्वन	०	०	०	×	×	×	×	×	×
१४. कंदुकोत्क्षेपण	०	०	०	×	×	×	×	०	०
१५. बाल-चपल गति-ज्ञान	०	०	०	?	×	×	×	×	×
१६. भ्रूण के हृदय का शब्द सुनाई देना	०	०	०	?	×	×	×	×	×

चिह्नों के अर्थ—

× = उपस्थित लक्षण अभिप्रेत हैं।

० = अनुपस्थित ,, ,, ,,

? = संदिग्ध ,, ,, ,,

प्रथम तथा पश्चात् भावी गर्भ-स्थितियों की पहचान

लक्षण	प्रथम उपस्थिति	पश्चात् उपस्थिति
१. उदर-त्वक्	दृढ़, खींची हुई तथा रक्त रेखांकित	मृदु, झुर्री पड़ी तथा श्वेत रेखांकित,
२. उदर-भित्ति	खिंची हुई, गर्भाशय तथा भ्रूण सुगमता से स्पर्श नहीं किए जा सकते।	ढीली, गर्भाशय-भ्रूण सुगमता से छुए जा सकते हैं।
३. स्तन		
४. भग	कठोर, वर्तुल, रक्त रेखांकित।	कम कठोर, लंबायमान, श्वेत रेखांकित।
५. लेबिया माईनर का पिछली ओर मिलनेवाला स्तर	बीच में बहुत कम गर्त, लाल रंग	बीच में गर्त, नीला-सा रंग।
६. योनि-पटल	संलग्न रहता है। परिक्षेप विदीर्ण तथा इतस्ततः गर्तित।	अनुपस्थित, पूर्व भंग के कारण साई कैट्रे साइज्ड वार्ड के समान वर्त्तियाँ, 'कैरंक्युली मीरई फोर नहीं मिलती
७. योनि	संकुचित झुर्रीदार।	फैली हुई और मृदु

८. गर्भाशय-ग्रीवा का योनि-मार्ग के अंदर का भाग	मृदु तथा लंबायमान।	मृदु परंतु नोकीला नहीं होता।
९. गर्भाशय-ग्रीवा का बहिर्मुख	वर्तुल तथा बंद।	सम्मुख तथा पृष्ठ-ओष्ठ पृथक्-पृथक् प्रतीत होते हैं। बीच में गर्त रहता है। सिर ग्रीवा के बहिर्मुख में आया प्रतीत होता है। सच्चे वस्ति-गह्वर में कभी उतरता है। परंतु सच्ची वस्ति के किनारों पर हिलता प्रतीत होगा।
१०. पिछले मास या पिछले सप्ताहों में	भ्रूण का सिर वस्ति-गह्वर में।	ग्रीवा का अंतर्मुख खुला हुआ, ग्रीवा 'पीक' की आकृति की हो जाती है।
११. जब सिर उतरता है।	ग्रीवा का सम्मुख ओष्ठ फैला हुआ।	इसका संकुचित सिरा उदर की ओर रहता है।

सातवाँ प्रकरण

गर्भ-स्थिति-काल में स्वास्थ्य-संबंधी नियम

"तदा प्रभृति एव व्यायामं व्यवायमपतर्पणमातिकर्षणं दिवा स्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानाधिरोहणं भयमुत्कुटकासनञ्चैकांततः स्नेहादि-क्रियां शोणितमोक्षणञ्चाकाले वेगविधारणञ्च न सेवेत् ।"

"न मदकराणि चाद्यानि अश्नीयात् । न यानमधिरोहेत् । न मांस-मश्नीयात् । सर्वेन्द्रियप्रतिकूलाञ्च भावान् दूरतः परिवर्जयेत् । यच्चान्यदपि किञ्चित् स्त्रियो विदुः ।"

गर्भोपघातकरास्त्विमे भावाः—उत्कटकविषमकठिनासनसेविन्या, वात-मूत्रपुरीषवेगानुपरुन्धत्या दारुणानुचितव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णातिमात्र-सेविन्याः प्रमितासनसेविन्या गर्भो म्रियतेऽन्तःकुक्षेर्वा अकाले स्रंसते शोषी भवति वा ।

"गर्भिणी प्रथमदिवसात् प्रभृति नित्यं प्रहृष्टा शुच्यलंकृता शुक्ल-वसना शांतिमङ्गलदेवताब्राह्मणगुरु परा च भवेत् ॥ मलिनविकृत-हीनगात्राणि न स्पृशेत् ।" (सुश्रुत)

हमको 'ओवेल्युशन' या 'फर्टलाईजेशन' होने का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ । अन्य समयों की अपेक्षा ऋतु-काल से ठीक पहले या पश्चात् किया गया मैथुन प्रायः फलोत्पादक होता है । इस सिद्धांत के आधार पर तथा यह मानकर कि ज्ञात तिथि पर किए गए मैथुन से ही गर्भ-स्थिति हो गई है *, यह परिणाम निकाला

* "निष्ठीविका गौरवमंगसादस्तन्द्रा प्रहर्षो हृदयव्यथा च ;
तृप्तिश्च बीजग्रहणञ्च योन्यां गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य लिंगम् ।"

गया है कि गर्भ-स्थिति २७३ दिन रहती है। विशेष अवस्थाओं में इस काल में बहुत परिवर्तन पाया जा सकता है। पूर्ण विकसित बच्चे २४० दिन में भी होते देखे गए हैं। एवं ३०० तथा ३१३ दिन भी बच्चों को लग चुके हैं। ३२० दिन की भी गर्भ-स्थिति पाई जा चुकी है *। अभी तक इन परिवर्तनों का कारण पूर्ण रूप से समझ में नहीं आया। परंतु कहा जाता है कि ये ऋतु-काल-चक्र के परिवर्तन के प्रभाव से होते हैं। जिनमें यह चक्कर २२ से २४ दिन में पूर्ण हो जाता है, उनका गर्भ-स्थिति-काल, उन स्त्रियों की अपेक्षा जिनमें २८ दिनों में पूरा होता है, कम होता है। आधुनिक गवेषणाओं से पता लगा है कि गर्भ-स्थिति के काल की दीर्घता गर्भाशय की भित्तियों के वसाक्रांत तथा निर्बल होने के कारण होती है।

कन्फाईनमेंट (प्रसूति-बंधन)—की संभावित तिथियों का परिगणन—

साधारण काल में ऋतुमती स्त्रियों में यह मानकर कि अंतिम ऋतु-काल के बाद ही मैथुन सफल हो गया है, प्रसूति-बंधन की संभावित तिथि का बहुत कुछ शुद्ध परिज्ञान अंतिम ऋतु-काल से गणना करके कर सकते हैं। इसलिये अंतिम ऋतु-काल के प्रथम दिन से गणना करते हुए (जिसकी तिथि स्त्री को याद हो सकती है) चार दिन का अंतर ऋतु-स्राव के लिये और तीन दिन 'फर्टलाईजेशन' के होने के पहले मिलाकर सात दिन होते हैं। अब इन

* श्रमोग्लानिः पिपासा सक्थिसदनं शुक्रशोणितयोरवबन्धः स्फुरणं च योनेः। यस्याः पुनरुष्णतीक्ष्णोपयोगाद् गर्भिण्या महति गर्भे जातसारे पुष्पदर्शनं स्याद् नागोदरन्यो वा योनि स्रावः तस्या गर्भो वृद्धिं न प्राप्नोति। निःस्रुतत्वात्। स कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रम्। तमुपविष्टक इत्युच्यते। (चरक)

सात दिनों को गर्भ-स्थिति-काल (२७३ दिन) में जोड़कर बता सकते हैं कि अंतिम ऋतु-काल के प्रारंभ से २८० दिन बाद प्रसूति-बंध होने की संभावना है। अथवा अंतिम ऋतु-काल की प्रारंभिक तिथि में ७ दिन जोड़कर जो तिथि आवे, वही अगले ९वें मास में या पिछले तीसरे महीने में प्रसूति-बंधन की तिथि होगी। यदि किसी स्त्री को अंतिम स्राव ३ सितंबर को होता है, तो उसमें ७ दिन जोड़कर (१० सितंबर) उससे ९ मास आगे या ३ मास पीछे गिनना चाहिए। संभावित प्रसूति-बंधन की तिथि १० जून आएगी। यह तिथि संभावित होती है। कइयों में कुछ दिन पूर्व और कइयों में तीन सप्ताह पीछे तक समाप्त हो सकती है।

परिगणन की अन्य तिथियाँ—

दस मासिक स्राव चक्रों के बाद प्रसूति की तिथि निकालने का यत्न किया गया है। परंतु इस प्रकार प्राप्त परिणाम शुद्ध नहीं आते। यदि मासिक स्रावावरोध के समय (यथा दुग्ध-काल में) गर्भ-स्थिति हो जाय, तो उपर्युक्त रीतियाँ नहीं घटतीं।

गति-ज्ञान की तिथि से परिज्ञान किया जा सकता है, परंतु यह चिह्न अति परिवर्तनशील है। उदर-भित्ति में गर्भाशय के सतत चढ़ाव को मापकर भी प्रसूति-बंधन की तिथि निकाल सकते हैं।

प्रसूति प्रारंभ होने के कारण

गर्भ-स्थिति के ४० सप्ताह बाद प्रसूति क्यों प्रारंभ होती है, इस प्रश्न का उत्तर अभी तक नहीं दिया जा सका है। परंतु निम्न-लिखित कल्पनाएँ इसके उत्तर में की जाती हैं—

१. यह बताया जा चुका है कि गर्भ-स्थिति में गर्भाशय की प्रत्यावर्तन उत्तेजना-शक्ति बहुत बढ़ जाती है। ज्यों-ज्यों गर्भ-स्थिति-काल बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों यह भी बढ़ती जाती है। अंत में यही उत्तेजना, जो बल और पौनःपुन्य में क्रमशः बढ़ती हुई सांतर

आकुंचनों के रूप में प्रकटित होती एवं प्रसूति-काल में उद्दाम आकुंचनों को उत्पन्न करती है।

२. जिन स्त्रियों में गर्भाशय बहुत अधिक विस्तृत हो जाता है (जैसा द्विगर्भा में या जरायु-जल की अधिकता में), उनमें प्रसूति-काल शीघ्र आ जाता है। यह देखकर कल्पना की जा सकती है कि गर्भाशय का विस्तार ही प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा प्रसूति-वेदना को उत्पन्न करता है।

३. अवरुद्ध मासिक स्राव के दिनों में गर्भाशय में सबसे अधिक उत्तेजना होती है। कारण यह बताया जाता है कि गर्भाशय उस समय अपनी अविस्तृत श्लैष्मिक कला के पृष्ठवर्ती भागों को बाहर फैलाना चाहता है। गर्भ-स्थिति में यह अवस्था गर्भ-कला के बहिः-परिक्षेपण के रूप में होती है।

४. यह चिरकाल से माना जा चुका है कि संभवतः भ्रूण का बढ़ता हुआ दबाव ग्रीवा के फैलाव में भाग लेता है। अपिच कभी-कभी प्रसूति प्रारंभ होने से पूर्व ग्रीवा का कुछ भाग खुला भी देखा गया है।

५. इसी से संबद्ध यह विचार है कि 'सरवाइ कल गैंगिलाई' पर गर्भाशय के निचले भाग के दबाव पड़ने से प्रत्यावर्तन-क्रिया द्वारा प्रसूति प्रारंभ होती है।

६. परीक्षण द्वारा रक्त में 'कार्बन डायॉक्साइड' की मात्रा बढ़ाने से प्रसूति प्रारंभ की जा सकती है। परंतु यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि स्वभावतः माता के रक्त में 'कार्बन डायॉक्साइड' की मात्रा इतनी अधिक बढ़ जाती है।

७. कमल के जराजन्य परिवर्तनों का प्रभाव भ्रूण के पोषण तथा 'मैटा बोलिज़म' पर भी अवश्य पड़ता है। यह विचारा गया है कि इस प्रकार नए बने 'मेटाबोलिक प्रॉडेक्ट' में से कुछ गर्भाशय को उत्तेजित कर देते हैं। कमल के परिवर्तनों के अतिरिक्त संभवतः भ्रूण

की वृद्धि के कारण उत्पन्न हुए कुछ 'मेटाबोलिक प्रोडैक्ट' भी गर्भाशय को उत्तेजित कर सकते हैं।

८. चूँकि उचित समय में उत्पन्न होनेवाले बच्चों के जीने की बहुत अधिक संभावना रहती है, अतः यह भी कल्पना की जा सकती है कि ४० सप्ताह के बाद प्रसूति स्वभावतः ही प्रारंभ हो जाती है।

परंतु आधुनिक विचार यह है कि भ्रूण और कमल में कुछ ऐसे पदार्थ पाए गए हैं, जो गर्भाशय में उद्दाम आकुंचन उत्पन्न कर देते हैं। संभव है, ऐसे पदार्थ माता के अंगों में ही उत्पन्न हो जाते हों। गर्भावस्था में माता की प्रणाली-रहित ग्रंथियों में जो परिवर्तन होते हैं, उनका हमको बहुत कम ज्ञान है। हमको ज्ञान है कि 'सुपरारीनल' और 'पिच्युट्री' ग्रंथि में ऐसे घटक विद्यमान हैं, जो गर्भाशय के प्रबल उत्तेजक हैं। कई हालतों में यह भी देखा गया है कि यदि इनको 'इंजैक्ट' कर दिया जाय, तो प्रसूति शीघ्र प्रारंभ हो जाती है।

अतः यही कहना पड़ता है कि प्रसूति का कारण बड़ा संश्लिष्ट है, और कई बातों पर आश्रित है।

गर्भ-स्थिति में स्वास्थ्य-रक्षा—गर्भ-स्थिति एक स्वाभाविक और 'फिजीओलोजिकल' अवस्था है*, परंतु आजकल के जीवन द्वारा 'पैथोलोजीकल' अवस्था के किनारे की ओर खिंची जा रही है। जीवन जितना अस्वाभाविक होगा, गर्भ-स्थिति उतनी ही 'पैथोलोजीकल' अवस्था की ओर झुकी दिखाई देगी। इसलिये चिकित्सक को आवश्यक है कि गर्भ-स्थिति-काल में वह स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पूर्णतया पालन करावे।

व्यायाम—प्रसूति का काम मांस-पेशियों द्वारा होता है। अतः नियमित व्यायाम द्वारा पेशियों को सन्नद्ध करना चाहिए। यही कारण

* प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थश्च मानवाः। (मनुः)

है कि शारीरिक श्रम करनेवाली स्त्रियाँ प्रसूति में सफ़ाई से गुज़र जाती हैं*, और आराम-पसंद स्त्रियाँ दुःख उठाती हैं। उद्दाम व्यायाम कभी नहीं करना चाहिए। मानसिक तथा शारीरिक आघात तथा परिश्रांति कभी न होने देनी चाहिए। गर्भ-स्थिति के उत्तर काल में रेल की लंबी यात्रा तथा पथरीली सड़कों पर गाड़ी से यात्रा नहीं करनी चाहिए। ऋतु-काल में, जब स्राव बंद हो जाता है, स्त्री की स्वास्थ्य-रक्षा का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

भोजन—सदा सुपच, बलवर्धक भोजन यथेच्छ देना चाहिए। अति भोजन, मांस, नत्रजन-बहुल पदार्थ हानिकारक हैं। मलावरोध से बचाने के लिये शाक तथा फल लाभदायक हैं†। मलावरोध से सदा बचाना चाहिए। यदि हो जाय, तो मृदु रेचक ओषधियाँ देनी चाहिए। दिन में एक बार मल-त्याग अवश्य होना चाहिए।

स्नान—स्नान के सामान्य स्वभाव में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, परंतु अति उष्ण या अति शीत जल में स्नान करने से सावधान कर देना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो योनि में वस्ति-कर्म अति सावधानी से करें।

संभोग—ऋतु-काल के संभावित दिनों में या गर्भ-स्थिति के उत्तरार्द्ध मासों में बिलकुल बंद रखना चाहिए। अन्य समयों में भी नहीं

---

* अपनी 'Art of life' पुस्तक में डॉ० जोगेंद्रलाल चंद्र ने एक नैपाली स्त्री का वर्णन किया है, जिसको उन्होंने स्वयं देखा है। वह भार लेकर आ रही थी। प्रसव-वेदना प्रतीत होने पर वह भार उतारकर एक झाड़ के पीछे चली गई, और एक घंटे बाद जब आई, तब उसकी गोद में एक सुंदर बच्चा था।

† देखिए, चरक शारीर अध्याय ८वाँ।

होना उत्तम है। कारण, यह अस्वाभाविक अवस्था है। चूँकि गर्भाशय-ग्रीवा का मुख बंद होता है, इसलिये संभोग से योनि-मार्ग की ओर रक्त-संचार की वृद्धि होकर मुख को शनैः-शनैः खोल सकता है, जिससे गर्भपात हो सकता है।

वस्त्र-परिधान—सरदी में नीचे के वस्त्र गरम होने चाहिए। उदर पर कोई तंग वस्त्र या आभूषण नहीं पहनना चाहिए।

स्तन—पिछले मासों में चूचुक उँगली से बाहर की ओर खींचते रहना चाहिए, जिससे उनकी आकृति दूध पिलाने के लिये समुचित हो जाय। यूडिक्लोन और पानी मिलाकर मलने से शिथिल स्तन कुछ कठोर हो सकते हैं। लंबमान स्तनों के लिये आँगी पहनें *।

मूत्र—समय-समय पर मूत्र-परीक्षा करते रहना चाहिए। 'एल्ब्युमिन' की परीक्षा शीघ्र करनी चाहिए। शर्करा और 'यूरिया' आदि की भी असाधारण राशि उपेक्ष्य नहीं। प्रथम छ मासों में प्रतिमास, अगले तीन मासों में दो बार और अंतिम मासों में प्रति सप्ताह परीक्षा करनी चाहिए।

श्रोणी-परीक्षा—प्रसूति के कुछ काल पूर्व उदय तथा श्रोणी-परीक्षा तथा बच्चों के लेटाव, स्थिति आदि की परीक्षा करनी चाहिए। प्रथम २ बहिर्माप अवश्य लेना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो श्रोणी की परीक्षा कर लेनी चाहिए। जिन स्त्रियों में प्रथम प्रसूति में कठिनता हुई हो, उनकी श्रोणी की द्वितीय प्रसूति के पूर्व (सातवें मास में) अवश्य परीक्षा करनी चाहिए।

गर्भिणी का आहार-विहार

माता का शिशु से विशेष संबंध गर्भावस्था में रहता है। अतः इस समय आहार-विहार का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। इसके लिये—

---

* स्तन-वृद्धि के योगों के लिये काम-सूत्र, अनंगरंग या पंचशर देखिए।

१. तंग कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। कारण, अधोभाग में रक्त-संचार अवरुद्ध हो जाता है, रक्त-संचार में बाधा आ जाती है, जिससे गर्भ-स्राव या गर्भपात की अभिरुचि बढ़ जाती है।

२. ऊँची एड़ीवाला जूता नहीं पहनना। कारण, इससे कोष्ठ की मांस-पेशियों पर चलते समय विशेष तनाव होता है। इसके अतिरिक्त पाँव के स्खलन से गिरकर स्राव या पात होने का भय है।

३. बहुत देर तक उत्कट आसन न बैठे। कारण, देर तक कुर्सी या नितंब अथवा पाँव के बल बैठने से अधोभाग में विशेषतः उत्पादक अंगों में रक्त-वृद्धि हो जाती है; जिससे गर्भपात, गर्भस्राव, अर्श होने की संभावना विशेष हो जाती है *।

४. झाड़ा, मूत्र, वायु आदि के वेग को न रोके। कारण, इनको रोकने से उदावर्त, अलसक, मूत्ररोध हो जाता है, जिससे गर्भाशय पर अनुचित भार पड़ता है।

५. बहुत मेहनत न करना चाहिए। कारण, इसके द्वारा गर्भाशय की ओर रक्त-वृद्धि हो सकती है, जिससे गर्भपात अवश्यंभावी हो जाता है। अथवा अन्य अंगों में रक्त-संचार होने से गर्भाशय को रक्त की न्यूनता हो जाती है। दोनो अवस्थाएँ अनभिप्रेत हैं।

६. बहुत उपवास या भूखा न रहना चाहिए। कारण, इससे गर्भ को पूरा पोषण न मिलने से वह सूख जाता या मर जाता है †।

७. बहुत भीड़ में न जाय। कारण, बहुत भीड़ में जाने से जहाँ गर्भपात का भय रहता है, वहाँ खुली शुद्ध वायु भी नहीं मिलती।

---

* नोर्ध्वजानु चिरं तिष्ठेत्। न जानुसमं कठिनमासनमध्यासीत्।

† उपवासव्रतकर्मपरायाः पुनः कदाहारायाः गर्भो न वृद्धिमाप्नोति। परिशोषात् स चापि कालान्तरमवतिष्ठते। अनिमान्नं स्पन्दनञ्च भवति। [illegible]मित्याचक्षते। (आत्रेयः)

होना उत्तम है। कारण, यह अस्वाभाविक अवस्था है। चूँकि गर्भाशय-ग्रीवा का मुख बंद होता है, इसलिये संभोग से योनि-मार्ग की ओर रक्त-संचार की वृद्धि होकर मुख को शनैः-शनैः खोल सकता है, जिससे गर्भपात हो सकता है।

वस्त्र-परिधान—सरदी में नीचे के वस्त्र गरम होने चाहिए। उदर पर कोई तंग वस्त्र या आभूषण नहीं पहनना चाहिए।

स्तन—पिछले मासों में चूचुक उँगली से बाहर की ओर खींचते रहना चाहिए, जिससे उनकी आकृति दूध पिलाने के लिये समुचित हो जाय। यूडिक्लोन और पानी मिलाकर मलने से शिथिल स्तन कुछ कठोर हो सकते हैं। लंबमान स्तनों के लिये आँगी पहनें *।

मूत्र—समय-समय पर मूत्र-परीक्षा करते रहना चाहिए। 'एल्ब्युमिन' की परीक्षा शीघ्र करनी चाहिए। शर्करा और 'यूरिया' आदि की भी असाधारण राशि उपेक्ष्य नहीं। प्रथम छ मासों में प्रतिमास, अगले तीन मासों में दो बार और अंतिम मासों में प्रति सप्ताह परीक्षा करनी चाहिए।

श्रोणी-परीक्षा—प्रसूति के कुछ काल पूर्व उदय तथा श्रोणी-परीक्षा तथा बच्चों के लेटाव, स्थिति आदि की परीक्षा करनी चाहिए। प्रथम २ बहिर्माप अवश्य लेना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो श्रोणी की परीक्षा कर लेनी चाहिए। जिन स्त्रियों में प्रथम प्रसूति में कठिनता हुई हो, उनकी श्रोणी की द्वितीय प्रसूति के पूर्व (सातवें मास में) अवश्य परीक्षा करनी चाहिए।

गर्भिणी का आहार-विहार

माता का शिशु से विशेष संबंध गर्भावस्था में रहता है। अतः इस समय आहार-विहार का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। इसके लिये—

---

* स्तन-वृद्धि के योगों के लिये काम-सूत्र, अनंगरंग या पंचशर देखिए।

१. तंग कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। कारण, अधोभाग में रक्त-संचार अवरुद्ध हो जाता है, रक्त-संचार में बाधा आ जाती है, जिससे गर्भ-स्राव या गर्भपात की अभिरुचि बढ़ जाती है।

२. ऊँची एड़ीवाला जूता नहीं पहनना। कारण, इससे कोष्ठ की मांस-पेशियों पर चलते समय विशेष तनाव होता है। इसके अतिरिक्त पाँव के स्खलन से गिरकर स्राव या पात होने का भय है।

३. बहुत देर तक उत्कट आसन न बैठे। कारण, देर तक कुर्सी या नितंब अथवा पाँव के बल बैठने से अधोभाग में विशेषतः उत्पादक अंगों में रक्त-वृद्धि हो जाती है; जिससे गर्भपात, गर्भस्राव, अर्श होने की संभावना विशेष हो जाती है *।

४. झाड़ा, मूत्र, वायु आदि के वेग को न रोके। कारण, इनको रोकने से उदावर्त, अलसक, मूत्ररोध हो जाता है, जिससे गर्भाशय पर अनुचित भार पड़ता है।

५. बहुत मेहनत न करना चाहिए। कारण, इसके द्वारा गर्भाशय की ओर रक्त-वृद्धि हो सकती है, जिससे गर्भपात अवश्यंभावी हो जाता है। अथवा अन्य अंगों में रक्त-संचार होने से गर्भाशय को रक्त की न्यूनता हो जाती है। दोनो अवस्थाएँ अनभिप्रेत हैं।

६. बहुत उपवास या भूखा न रहना चाहिए। कारण, इससे गर्भ को पूरा पोषण न मिलने से वह सूख जाता या मर जाता है †।

७. बहुत भीड़ में न जाय। कारण, बहुत भीड़ में जाने से जहाँ गर्भपात का भय रहता है, वहाँ खुली शुद्ध वायु भी नहीं मिलती।

---

* नोर्ध्वजानु चिरं तिष्ठेत्। न जानुसमं कठिनमासनमध्यासीत्।

† उपवासव्रतकर्मपरायाः पुनः कदाहारायाः गर्भो न वृद्धिमाप्नोति। परिशुष्कत्वात् स चापि कालान्तरमवतिष्ठते। अतिमात्रं स्पन्दनञ्च भवति। तन्तुनागोदरमित्याचक्षते। (आत्रेयः)

होना उत्तम है। कारण, यह अस्वाभाविक अवस्था है। चूँकि गर्भाशय-ग्रीवा का मुख बंद होता है, इसलिये संभोग से योनि-मार्ग की ओर रक्त-संचार की वृद्धि होकर मुख को शनैः-शनैः खोल सकता है, जिससे गर्भपात हो सकता है।

वस्त्र-परिधान—सरदी में नीचे के वस्त्र गरम होने चाहिए। उदर पर कोई तंग वस्त्र या आभूषण नहीं पहनना चाहिए।

स्तन—पिछले मासों में चूचुक उँगली से बाहर की ओर खींचते रहना चाहिए, जिससे उनकी आकृति दूध पिलाने के लिये समुचित हो जाय। यूडिक्लोन और पानी मिलाकर मलने से शिथिल स्तन कुछ कठोर हो सकते हैं। लंबमान स्तनों के लिये आँगी पहनें *।

मूत्र—समय-समय पर मूत्र-परीक्षा करते रहना चाहिए। 'एल्ब्युमिन' की परीक्षा शीघ्र करनी चाहिए। शर्करा और 'यूरिया' आदि की भी असाधारण राशि उपेक्ष्य नहीं। प्रथम छ मासों में प्रतिमास, अगले तीन मासों में दो बार और अंतिम मासों में प्रति सप्ताह परीक्षा करनी चाहिए।

श्रोणी-परीक्षा—प्रसूति के कुछ काल पूर्व उदय तथा श्रोणी-परीक्षा तथा बच्चों के लेटाव, स्थिति आदि की परीक्षा करनी चाहिए। प्रथम २ बहिर्माप अवश्य लेना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो श्रोणी की परीक्षा कर लेनी चाहिए। जिन स्त्रियों में प्रथम प्रसूति में कठिनता हुई हो, उनकी श्रोणी की द्वितीय प्रसूति के पूर्व (सातवें मास में) अवश्य परीक्षा करनी चाहिए।

गर्भिणी का आहार-विहार

माता का शिशु से विशेष संबंध गर्भावस्था में रहता है। अतः इस समय आहार-विहार का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। इसके लिये—

---

* स्तन-वृद्धि के योगों के लिये काम-सूत्र, अनंगरंग या पंचशर देखिए।

१. तंग कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। कारण, अधोभाग में रक्त-संचार अवरुद्ध हो जाता है, रक्त-संचार में बाधा आ जाती है, जिससे गर्भ-स्राव या गर्भपात की अभिरुचि बढ़ जाती है।

२. ऊँची एड़ीवाला जूता नहीं पहनना। कारण, इससे कोष्ठ की मांस-पेशियों पर चलते समय विशेष तनाव होता है। इसके अतिरिक्त पाँव के स्खलन से गिरकर स्राव या पात होने का भय है।

३. बहुत देर तक उत्कट आसन न बैठे। कारण, देर तक कुर्सी या नितंब अथवा पाँव के बल बैठने से अधोभाग में विशेषतः उत्पादक अंगों में रक्त-वृद्धि हो जाती है; जिससे गर्भपात, गर्भस्राव, अर्श होने की संभावना विशेष हो जाती है *।

४. झाड़ा, मूत्र, वायु आदि के वेग को न रोके। कारण, इनको रोकने से उदावर्त, अलसक, मूत्ररोध हो जाता है, जिससे गर्भाशय पर अनुचित भार पड़ता है।

५. बहुत मेहनत न करना चाहिए। कारण, इसके द्वारा गर्भाशय की ओर रक्त-वृद्धि हो सकती है, जिससे गर्भपात अवश्यंभावी हो जाता है। अथवा अन्य अंगों में रक्त-संचार होने से गर्भाशय को रक्त की न्यूनता हो जाती है। दोनो अवस्थाएँ अनभिप्रेत हैं।

६. बहुत उपवास या भूखा न रहना चाहिए। कारण, इससे गर्भ को पूरा पोषण न मिलने से वह सूख जाता या मर जाता है †।

७. बहुत भीड़ में न जाय। कारण, बहुत भीड़ में जाने से जहाँ गर्भपात का भय रहता है, वहाँ खुली शुद्ध वायु भी नहीं मिलती।

---

* नोर्ध्वजानु चिरं तिष्ठेत्। न जानुसमं कठिनमासनमध्यासीत्।

† उपवासव्रतकर्मपरायाः पुनः कदाहारायाः गर्भो न वृद्धिमाप्नोति। परिशुष्कत्वात् स चापि कालान्तरमवतिष्ठते। अतिमात्रं स्पन्दनञ्च भवति। तन्तुनागोदरमित्याचक्षते। (आत्रेयः)

८. भयानक दृश्य न देखे। कारण, इससे संतान या तो डरपोक उत्पन्न होती है या मर जाती है, अथवा गर्भपात हो जाता है *।

९. अति संक्षोभी वाहन में सवारी न करे, विशेषतः पाँचवें मास के बाद। कारण, इससे गर्भपात का अत्यंत भय है।

१०. अप्रिय वार्ता न सुनें। कारण, इससे प्रजा विमनस्क एवं शोकातुर उत्पन्न होती है।

११. बहुत देर तक चित न लेटे। कारण, इसके द्वारा गर्भ चिर-काल में पुष्ट होता अथवा निर्बल रह जाता है। इसके अतिरिक्त अजीर्ण, खट्टी डकारें, जी मिचलाना, मलबंध आदि रोग भी हो जाते हैं, जो अवांछनीय हैं।

१२. शोक, कलह, चिंता आदि न करना चाहिए। कारण, इससे संतान झगड़ालू, क्रोधी, शोकातुर तथा चिंतातुर उत्पन्न होती है।

१३. खूब आनंद में रहना चाहिए। कारण, इससे बच्चा प्रसन्न-मुख, हँसनेवाला और साहसी उत्पन्न होता है †।

१४. विचार उत्तम रखना चाहिए। कारण, जैसा विचार माता करेगी, प्रजा भी उन्हीं विचारोंवाली उत्पन्न होगी ‡।

१५. दिन में बहुत न सोवे। कारण, इससे रात्रि को पूर्ण निद्रा नहीं आती। नींद उचट जाती है, या भयानक स्वप्न दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त दिन में सोने से कफ बढ़ता है।

१६. शुद्ध वायु में सदा भ्रमण करना चाहिए। कारण, गर्भावस्था

---

* कठिन प्रसव के समय बंदूक आदि का शब्द करने से प्रसव सुगमता से हो जाता है। इससे गर्भाशय विशेष रूप से संकुचित हो जाता है।

† सौमनस्यं गर्भकराणाम्। (चरक सू० स्था० अ० २५)

‡ गर्भोपपत्तौ तु मनः स्त्रियाः यं जन्तुं व्रजेत्तत्सदृशं प्रसूते।

(आत्रेय शा० अ० २-२३)

में माता को शुद्ध वायु की आवश्यकता विशेष रूप से होती है। इस समय माता को जहाँ अपना अशुद्ध रक्त शुद्ध करना होता है, वहाँ एक अन्य व्यक्ति (गर्भ) का भी अशुद्ध रक्त शुद्ध करना होता है। अतः कार्य-भार बढ़ जाता है।

१७. रात्रि में ख़ूब अच्छी तरह सोना चाहिए। कारण, इससे शरीर का पोषण होता और माता तथा गर्भ को बल मिलता है *।

१८. अनन्नास या कच्चा पपीता कभी न खाय। कारण, इससे गर्भपात या गर्भ-स्राव होना अवश्यंभावी है। और गर्भाशय विशेष रूप से संकुचित होता है †।

१९. तेल न लगावे। कारण, इससे त्वचा की रक्तवाहिनियों में रक्त-वृद्धि होने से गर्भाशय की ओर रक्त की मात्रा घट जाती है, जो अवांछनीय है।

२०. स्तनों को धोकर साफ़ रखना, विशेषतः सातवें मास के बाद। कारण, इसके द्वारा स्तन की ग्रंथियाँ उत्तेजित होकर अपना कार्य भले प्रकार करने लगती हैं, जिससे गर्भ का जीवन दूध विशेष रूप से बन जाता है।

---

* निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम् ;
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च।
अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रानिषेविता ;
सुखायुषी परा कुर्यात् कालरात्रिरिवापरा।
सैव युक्ता पुनर्युंक्ते निद्रा देहं सुखायुषा ;
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता। (आत्रेय)

†...१० से १२ तासांत गर्भाशयांत न रक्त वाढू लागलें नंतर वेणा येणास लागून सुमारें बारा तासानंतर गर्भपात होतो...।
(औषधि-संग्रह, पृष्ठ ७२३)

२१. मैथुन का त्याग करे, विशेषतः पंचम मास के पीछे। बाल-मरण का मुख्य कारण यही है * ।

---

* जर्नल ऑफ् अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन (भाग ७७, नं २१) १६ नवंबर, १६२१ के अंक में, १६६२ पृष्ठ पर, लिखे हुए लेख का यह सार है—

वार्लिन की 'युनिवर्सिटी आर्ट्स फ़ौन क्लिनीक'-नामक एक प्रसूतिशाला में ४१० गर्भवती स्त्रियों की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि इन स्त्रियों ने गर्भ-काल के समय ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया। जिनमें से ३२२ स्त्रियों ने (७८.५ प्रतिशत) गर्भावस्था के केवल पिछले दो मासों में; ५२.६ प्रतिशत स्त्रियों ने केवल पिछले चार सप्ताहों में; ३१ प्रतिशत स्त्रियों ने केवल अंतिम सप्ताह में; २० प्रतिशत स्त्रियों ने केवल अंतिम तीन दिन में संभोग नहीं किया। ६.५ प्रतिशत अर्थात् ३६ स्त्रियों ने प्रसव के दिन भी रति-सुख प्राप्त किया था।

इनमें से कइयों ने दिन में कई बार संभोग किया था। उनका वर्णन सुनकर दिल काँपने लगता है। ६० प्रतिशत स्त्रियाँ सप्ताह में दो बार या इससे भी अधिक संभोग करती थीं। २४.६ प्रतिशत स्त्रियाँ सप्ताह में कम-से-कम तीन बार संभोग करती थीं। २४ स्त्रियों ने बड़े दुःख से बताया कि उनको विना संभोग के एक दिन भी काटना कठिन हो जाता है। ६ स्त्रियों ने सब प्रकार की लज्जा को तिलांजलि देकर कहा कि यदि उनको दिन में कई बार रति-सुख का आनंद न मिले, तो उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

परिणाम में बहुत-सी औरतों के कमल को हानि पहुँची। कइयों को तीव्र रक्त-स्राव हुआ। कइयों को गर्भपात हुआ। अन्यों को प्रसव से पूर्व और पश्चात् तीव्र ज्वर हुआ। एकाध का पेट चीरकर बच्चा निकालना पड़ा।

इस सब परीक्षा के बाद डॉक्टर इस निर्णय पर आए कि गर्भावस्था में संभोग कम किया जाना चाहिए।

(गुजराती केसरी से उद्धृत)

गर्भ रहने के पीछे चौथे या पाँचवें मास में स्त्री को माता-पिता के घर

गर्भिणी और गर्भ का संबंध

१. खुले मैदान में सोने और रात्रि में घूमनेवाली स्त्री सनकी (पागल) संतान उत्पन्न करती है।

२. झगड़ालू या लड़ाकू स्त्री अपस्मार-रोग-ग्रस्त प्रजा उत्पन्न करती है।

३. सदा संभोग में तत्पर रहनेवाली स्त्री स्त्री-स्वभाववाली और लज्जा-रहित प्रजा उत्पन्न करती है।

४. सदा शोक-ग्रस्त रहनेवाली स्त्री की संतान अल्पायु, डरपोक, सूखी और छोटी उत्पन्न होती है।

५. ईर्षालु माता की संतान दूसरों को डरानेवाली, ईर्षालु और वेश्या-पुत्र के समान होती है।

६. क्रोधी स्त्रियों की संतान चंट, क्रोधी और निंदनीय होती है।

७. रात-दिन सोती रहनेवाली माता की संतान अल्पायु, आलसी, जड़ एवं मंदाग्निवाली होती है।

८. सदा मद्य पीनेवाली की संतान मद्यपी एवं अनवस्थित-चित्त-वाली होती है *।

भेजने का जो नियम पूज्य गुरुजनों ने बनाया है, वह उनकी दूरदर्शिता का पूर्ण सूचक है। कारण, स्त्री को पास रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन है—

घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्;
तस्माद् घृतञ्च वह्निञ्च नैकत्र स्थापयेत् सुधीः। (पंचतंत्र)

* एक प्रजात शिशु उत्पन्न होते ही रोने लगा। उसे चुप कराने का विशेष प्रयत्न किया गया। अंत में यह समझकर कि शायद भूख के कारण रोता है, उसे दूध दिया गया, परंतु उसका रोना बंद न हुआ। फिर प्यास की आशंका से पानी दिया गया, फिर भी वह शांत न हुआ। अंत में सर्दी, गरमी

९. सदा मिष्टान्न खानेवाली गर्भिणी की संतान प्रमेही, गूँगी और स्थूल होती है।

१०. खट्टा खानेवाली गर्भिणी की संतान रक्तपित्ती, त्वक् रोगवाली और शीघ्र बली पलित, खालित्य (इंद्रलुप्त) रोगवाली होती है।

११. बड़ा तीखा खानेवाली की संतान दुर्बल, अल्प शुक्रवाली अथवा शैतान उत्पन्न होती है।

१२. बहुत बुरी वस्तुएँ खानेवाली की संतान उदर-वृद्धिवाली, मलबंधवाली और सूखी उत्पन्न होती है।

१३. बहुत मांस-प्रिय स्त्रियों की संतान क्रूर, बहुत बालोंवाली, लाल आँखोंवाली और मूत्र-रोगवाली होती है *।

आदि की कल्पना करके उसके प्रतिकार किए, परंतु सब निष्फल। अंत में मद्य दिया गया, देते ही वह चुप हो गया। कारण ढूँढ़ने पर ज्ञात हुआ कि उसकी माता मद्यपी थी। प्रसव से पूर्व भी उसने मद्य पिया था। फिर जब-जब शिशु रोता था, और किसी प्रकार शांत नहीं होता था, तो मद्य से ही शांत किया जाता था।

* बापालाल गड़बड़ शाह के कौमारभृत्य के आधार पर (चरकसंहिता शा० अ० ८-४१)

आठवाँ प्रकरण

गर्भवती की परीक्षा

गर्भावस्था के समय तथा प्रसूति के मध्य में स्त्री की परीक्षा की जाती है। यह परीक्षा प्रायः दो प्रकार से होती है— १. उदर-परीक्षा, जो निरीक्षण, स्पर्शन तथा श्रवण के द्वारा की जाती है। २. योनि-मार्ग से परीक्षा।

उदर-परीक्षा—गर्भवती स्त्री की परीक्षा करने के लिये यह सबसे उत्तम और सरल उपाय है। इस रीति का अभ्यास सावधानी से कुशलता-पूर्वक करना चाहिए, क्योंकि अनुभव के पश्चात् प्रायः साधारण अवस्था में इसी परीक्षा द्वारा पूर्ण अनुभव हो सकता है। इसका मुख्य लाभ यह है कि साधारण अवस्थाओं में योनि-परीक्षा की आवश्यकता नहीं होती। योनि-परीक्षा पूर्ण सावधानी करने पर भी सब अवस्थाओं में पूति भवन के उत्पन्न हो जाने से जननी के लिये बहुत ही भयावह है।

इस परीक्षा के लिये जननी को पीठ के बल लेटाकर तकिए के द्वारा उसके कंधे कुछ ऊँचे कर दो, एवं उदर की मांस-पेशियों को ढीला करने के लिये टाँगें सिकोड़ दो। शरीर पर केवल चादर ओढ़ी रहने दो। अपनी पीठ को उसके मुख की ओर करके श्रोणी के पास बैठ जाओ।

(१) निरीक्षण—भ्रूण के गुरुतोन्मुख लेटाव में गर्भाशय उरोऽस्थि के निचले भाग तक पहुँच जाता है। तथा दिर्गतसम लेटाव में गर्भाशय की चौड़ाई लंबाई से अधिक, एवं गर्भाशय उतना ऊँचा नहीं चढ़ता।

(२) स्पर्शन—यह यथापद्धति करना चाहिए। स्पर्श करने से पूर्व हाथों को गरम पानी में धो लेना चाहिए। इससे स्पर्श-ज्ञान की शक्ति बढ़ जायगी। हाथों को गर्भाशय के आकुंचनों के समय सर्वथा हटा लेना चाहिए।

(क) ऊर्ध्वांश को स्पर्श करो—साधारणतः गर्भाशय का यह भाग नितंब से अधिष्ठित होता है। नितंब गोल, चिकने तथा कठिन (परंतु सिर से कम) होने से सुगमता से पहचाने जा सकते हैं। पीठ के साथ मिले होते हैं (सिर की भाँति ग्रीवा का अंतर नहीं आता)।

(ख) हाथों को नीचे की ओर खींचकर गर्भाशय के पार्श्वों की परीक्षा करो। इसमें प्रायः साधारण अवस्था में भ्रूण की पीठ स्निग्ध, कठिन, वृत्त-खंड के रूप में लक्षित होगी। नितंब पर दबाव डालने से पृष्ठ का मुड़ाव बढ़ जाता है, जिससे वह विशद रूप में लक्षित हो सकती है। पार्श्वों के दूसरी ओर शाखाएँ गाँठों के रूप में होंगी, जो हाथों से फिसल जाती हैं।

(ग) पौलिक ग्रिप—गर्भाशय को निचले सिरे के अँगूठे और उँगली के बीच पकड़कर यह जानने का यत्न करो कि इसमें भ्रूण का कौन-सा भाग अधिष्ठित है। इसमें प्रायः सिर होता है, जो नितंब की अपेक्षा छोटा और गोल प्रतीत होता है। वेदना के समय सिर को एक सिरे से दूसरे सिरे तक हिलाने का यत्न करो। यदि सिर स्थिर हो, तो इसका अर्थ यह है कि प्रतैकगर्भा में प्रसूति होने को है। और प्रतानेकगर्भा में प्रसूति वास्तव में प्रारंभ हो चुकी है। यदि सिर चल हो, तो यह जानने का यत्न करो कि किस ओर सबसे अधिक उभरा हुआ है। यह उभरा हुआ हिस्सा 'ललाट' होता है। साधारणावस्था में यह पृष्ठ से दूसरी ओर होता है। इससे यह भी पता लग जायगा कि सिर झुका हुआ है।
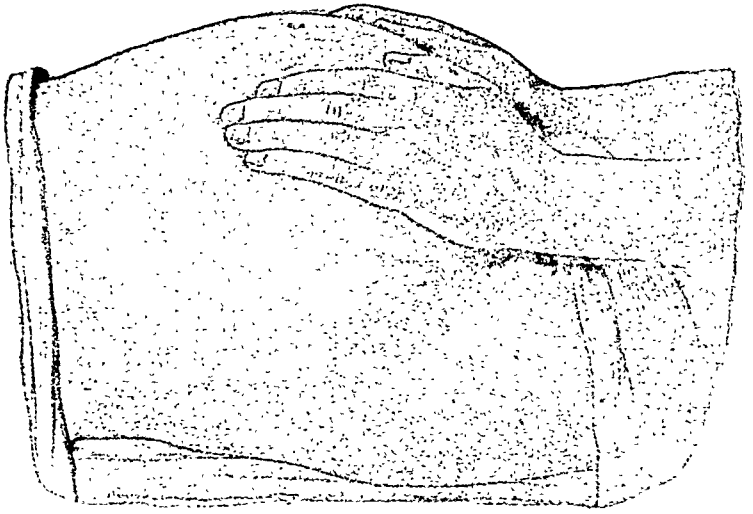
चित्र ७—उदर-परीक्षा (पृष्ठ ६२)

(घ) वस्ति-गह्वर का स्पर्श—गर्भाशय के निचले सिरे की ओर दोनो हाथों को ख़ूब वस्ति-गह्वर के अंदर गड़ाओ । जिस ओर ललाट होगा, उस ओर के हाथ को अधिक बाधा पड़ेगी। इससे सिर की गति का परिज्ञान हो सकता और यह भी बताया जा सकता है कि प्रसूति कितनी दूर तक पहुँच चुकी है । इस प्रकार उदर-परीक्षा से स्पर्श द्वारा हम निम्न-लिखित पाँच बातें जान सकते हैं—

(१) भ्रूण का लेटाव, (२) उदयन, (३) स्थिति, (४) प्रसूति प्रारंभ हो गई है या नहीं और (५) यदि हो गई है, तो कहाँ तक पहुँच चुकी है ।

केवल गर्भाशय-ग्रीवा का परिज्ञान शेष रहता है, जिसकी साधारण अवस्था में आवश्यकता भी नहीं ।

(३) श्रवण—स्पर्शन द्वारा प्राप्त ज्ञान की श्रवण-ज्ञान द्वारा पुष्टि होती है। जब भ्रूण-हृच्छब्द पृष्ठ पर स्पष्टतम सुनाई देता है, तो गर्भ वाम शिरो पृष्ठ सम्मुख स्थिति में होता है । यह शब्द नाभि तथा जघनास्थि के पूरोर्ध्व कूठ में वाम ओर; तथा दक्षिण शिरो पृष्ठ स्थिति में दाईं ओर उदर-भित्ति पर स्पष्ट सुनाई देगा। शिरः-पृष्ठ पश्चाद् स्थिति में यह पार्श्वों की ओर सुनाई देगा। निर्तबोदय में हृच्छब्द नाभि के ऊपर उस ओर सुनाई देगा, जिस ओर पीठ स्थित है ।

योनि-परीक्षा—यह परीक्षा विशेष अवस्था पड़ने पर ही करनी चाहिए। प्रसूति तथा गर्भ-स्थिति के अंतिम दिनों में योनि-परीक्षा करते हुए सब पूति-नाशक साधनों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।

विधि—हाथों को कुछ मिनट तक गरम पानी में मलो। फिर साबुन लगाकर हाथों और नखों को नख-ब्रश से साफ़ करके 'बीनी आयो डाईड ऑफ़् मर्करी' (पारद द्विनैलिद) के $\frac{1}{1000}$ घोल में

तीन मिनट तक हाथों को भिगो रक्खो। यदि संभव हो, तो रबर के दस्ताने (स्टरलाइज्ड) पहन लो। धात्री को चाहिए कि स्त्री की बाह्य जननेंद्रिय धोकर साफ़ रक्खे। तब एक हाथ से भगोष्ठों को पृथक् करके परीक्षण उँगलियों को (बिना छुए) योनि में डालो, और निम्न-लिखित परीक्षा करो।

(क) योनि-बहिर्मुख का परिमाण—उँगली को चारो ओर घुमाकर पता लगाओ। कई बार यह उदित भाग से ऊपर, पीछे की ओर मिलेगा। प्रायः इसकी तुलना पैसा, रुपया, अधन्नी आदि से की जाती है। (ख) उदित भाग को पहचानो—सिर विवरों तथा स्यूतियों से पहचाना जा सकता है। फिर वस्ति-गह्वर के कौन-से व्यास में सहायक स्यूति उपस्थित है, इसका परिज्ञान करो। (ग)—'सहायक स्यूति' के एक सिरे से दूसरे सिरे तक उँगली फेरकर दोनो विवरों का स्थान निश्चित करो। साधारण अवस्था में यदि शिरःपृष्ठ सम्मुख होगा, तो पश्चाद् विवर का परिज्ञान सुगमता से हो जायगा। प्रसव-वेदना के समय इन चिह्नों का ज्ञान बाह्यावरण कला को फटने से बचाते हुए ही कर लेना चाहिए। कला के फटने पर योनि-परीक्षा द्वारा बहुत कुछ परिज्ञान हो सकता है। प्रसूति के पिछले दिनों में 'शिरोरक्तार्बुद (कैपिटल हैमेटोमेटा) के कारण उदित भाग के ऊपर के चिह्न बहुत अस्पष्ट हो जाते हैं। अतः योनि-परीक्षा के लिये कला के ठीक फटने के बाद का समय सबसे अच्छा है।

नवाँ प्रकरण

प्रसूति

"क्लमो गात्राणां ग्लानिराननस्याक्ष्णोर्विमुक्तबंधनत्वमिव कुक्षेरव-स्रसनमधोगुरुत्वं वक्षणावस्तिकटीकुक्षिपार्श्वपृष्ठनिस्तोदो योनेः प्रस्रवणमनन्नाभिलाषश्चेति। ततोऽनन्तरम् आवीनां प्रादुर्भावः प्रसेकश्च गर्भोदकस्य।"

साधारण प्रसूति-क्रम—प्रसूति वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा गर्भाधान-जन्य भ्रूण, जरायु-जल, कमल तथा आवरण-कलाएँ गर्भाशय से पृथक् होकर बाहर फेंक दी जाती हैं। सब प्रकार की प्रसूतियाँ दो भागों में विभक्त की जा सकतीं हैं—(१) स्वस्थ प्रसूति और (२) व्यधित प्रसूति।

स्वस्थ प्रसूति क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर सुगम नहीं, तथापि इसका लक्षण इस प्रकार से कर सकते हैं—

"जिस प्रसूति में उदयन शीर्ष का हो, और कोई उपद्रव भी न हो, एवं जननी के किसी विशेष प्रयत्न के बिना ही २४ घंटे में समाप्त हो जाय, वह 'स्वस्थ प्रसूति' कही जा सकती है।"

पूर्ववर्ती चिह्न तथा लक्षण—प्रसूति प्रारंभ होने से दो या तीन सप्ताह पूर्व स्त्री को लाघव का अनुभव होने लगता है। उदर में गर्भाशय के नीचे की ओर उतरने के कारण वक्षःस्थल नीचे की ओर खिसक आता है, जिससे वक्षोदर मध्यस्थ पेशी पर दबाव कम होने से श्वास में सुगमता हो जाती है, अतएव लाघव-ज्ञान होता है। इसके साथ-साथ चलने में कठिनता अधिक प्रतीत होने लगती है,

तथा गर्भ-स्थिति के प्रारंभिक सप्ताहों के समान मूत्र बार-बार आने लगता है।

सावधानी से परीक्षा करने पर पता लगेगा कि धृतैकगर्भा जननी में भ्रूण का सिर वस्ति-गह्वर-तीर में स्थित हो गया है। परंतु धृतानेकगर्भा स्त्री में प्रसूति प्रारंभ होने से पूर्व ऐसा नहीं होता। यह भेद इसलिये होता है कि धृतैकगर्भा की उदर-पेशियाँ अधिक तनी होती हैं, जिससे भ्रूण शीघ्र ही वस्ति-गह्वर-तीर में ढकेल दिया जाता है।

अंतिम एक-दो सप्ताहों में उत्पादक अंगों का स्राव बढ़ जाता है। भग गीली तथा पिलपिली हो जाती है। उसकी बीच की दरार का अंतर बढ़ जाता है *।

प्रसूति की अवस्थाएँ—प्रसूति तीन अवस्थाओं में विभक्त की गई है। प्रथमावस्था को 'प्रसरणावस्था' कहते हैं। यह प्रसूति-वेदना के प्रारंभ से ग्रीवा के फैलने तक होती है। द्वितीयावस्था को 'निःसारणावस्था' कहते हैं। यह ग्रीवा के फैलाव से भ्रूण के निकलने तक होती है, और तृतीयावस्था 'मोचनावस्था' है। यह भ्रूण-जन्म से कमल के मोचन तक होती है।

प्रथमावस्था—प्रसूति का प्रारंभ गर्भाशयाकुंचन-जनित सामयिक वेदनाओं से लक्षित होता है। ये वेदनाएँ प्रथम स्वल्प होती हैं, जिनसे आंत्र-वेदना का भी धोका हो सकता है। पश्चात् काल की गति के अनुसार ये वेदनाएँ तीव्र तथा बार-बार होने लगती हैं।

---

* जाते हि शिथिले कुक्षौ युक्ते हृदयबन्धने ;
सशूले जघने नारी सा तु ज्ञेया प्रजायिनी।
तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समन्ताद्वेदना भवति।
अभीक्ष्णं पुरसि प्रवृत्तिः मूत्रं प्रसिध्यते योनिमुखात् श्लेष्मा च। (चरक शा० अ० ८)

जो पीठ से प्रारंभ होकर उदर के सामने तथा जंघा तक पहुँच जाती हैं। गर्भाशय के इन आकुंचनों के कारण गर्भाशय का मुख फैलने लगता है। गर्भाशय-ग्रीवा के अंतिम मुख पर से भ्रूण की आवरण-कलाओं तथा श्लेष्म-कलाओं के टुकड़ों के पृथक् होने से श्लेष्म-मिश्रित रक्त आने लगता है। इस स्राव को 'प्रदर्शक' (शो) कहते हैं। वेदना के लगातार बढ़ने से जननी व्यथा के कारण चिल्लाने तक लग जाती है, एवं व्यथा को कम करने के लिये वह कुर्सी आदि के सहारे झुक जाती है। त्रिकास्थि पर दबाव डालने से स्त्री की व्यथा कुछ कम हो जाती है। प्रथमावस्था के अंत में जननी लेटना ही पसंद करती है। यह अवस्था १२ से १८ घंटे तक रह सकती है। इस अवस्था के अंत में अचानक द्रव-सा बहता है, जिससे पता लगता है कि भ्रूण-आवरण-कला फट गई है, तथा जरायु-जल का वह भाग जो सिर के सामने रहता है, निकल गया है। प्रायः आवरण-कला के फटने के समकाल में ही गर्भाशय-ग्रीवा का मुख पूरा फैल जाया करता है, अतः आवरण-कला का फटना प्रथमावस्था की समाप्ति और द्वितीयावस्था के प्रारंभ का सूचक है। कभी-कभी इससे पूर्व भी हो जाता है। विशेषतः व्याकृत भ्रूण की उपस्थिति में, कभी-कभी द्वितीयावस्था के प्रारंभ होने के बाद तक भी नहीं होता। बहुत कम अवस्थाओं में भ्रूण के निःसारण के बाद तक भी आवरण-कला नहीं फटती। ऐसी अवस्था में धात्री को चाहिए कि वह कलाओं को सावधानी से फाड़ दे।

द्वितीयावस्था—आवरण-कला के फटने पर वेदना कुछ कम हो जाती है, परंतु फिर तीव्रता तथा पौनःपुन्य में बहुत बढ़कर निःसारण-गुण-विशिष्ट हो जाती हैं। इस निःसारण कर्म में उदर-मांस-पेशियाँ भी सहायक होती हैं। प्रथम उदर-पेशियाँ जननी के वश में रहती हैं, परंतु पीछे से इनके भी आकुंचन गर्भाशय-आकुंचनों की भाँति स्वयं

होने लगते हैं। ज्यों-ज्यों वेदना बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों जननी किसी पदार्थ को जकड़कर पकड़ने का प्रयत्न करती जाती है। पाँव को पाँयत तक दबाती है। एक गहरी साँस भरकर उसको अंदर रोकती है, जिससे वक्षोदर-मध्यस्थ पेशी स्थिर हो जाती है, और उदर-मांस-पेशियाँ निःसारण के कार्य में लग जाती हैं। वेदना के समय जननी का मुख लाल पड़ जाता है। सारे शरीर पर पसीना ख़ूब आता है। कुछ काल के लिये वेदना बंद हो जाती है। जननी कई दीर्घ श्वासें भरती है। इन वेदनाओं के कारण भ्रूण का सिर वस्ति-गह्वर गुदा में प्रविष्ट हो जाता है। ज्यों-ज्यों यह नीचे उतरता जाता है, त्यों-त्यों यह गुदा पर अधिक दबाव डालता जाता है। और यदि गुदा पहले से पूर्णतया साफ़ न हो, तो जननी को मल-त्याग की इच्छा बार-बार होती है, तथा प्रत्येक आकुंचन के साथ मल पिचक-पिचककर बाहर आता है। सिर के और अधिक नीचे उतर जाने पर भग-गुदांतर स्थान पर दबाव पड़ता है, जिससे वह बाहर की ओर निकल आता है। भग की दरार का अंतर भी बढ़ जाता है। वेदनांतरों में (जो वेदनाओं की वृद्धि के कारण क्रमशः घटते जाते हैं) सिर कुछ ऊपर आ जाता है। परंतु फिर प्रत्येक वेदना के बाद नीचे चला जाता है। इस प्रकार भग-गुदांतर स्थान अधिक फैलता जाता है, तथा भगद्वारांतर भी बढ़ता जाता है, जिसमें से कुछ काल बाद वेदनाओं से नीचे ढकेले जाने पर सिर दिखाई देने लगता है। ज्यों-ज्यों सिर का अधिक-अधिक भाग भग में आता जाता है, त्यों-त्यों भग-दरार बढ़ती जाती है। अंत में इसकी अंडाकृति भी बढ़ती-बढ़ती पूरी गोल हो जाती है। भग-गुदांतर स्थान विशेषतः सम्मुख किनारे पर दबाव के कारण बहुत अधिक खिंच जाता तथा पतला हो जाता है। यहाँ तक कि जन्म के समय एक काग़ज़ की मोटाई के समान रह जाता है। इसके पीछे मल-द्वार भी फैलकर बड़ी ही (D)

की आकृति का हो जाता है। इसमें गुदा के सम्मुख की भित्ति भी दिखाई दे सकती है। ज्यों-ज्यों सिर नीचे खिसकता जाता है, शिरः-पृष्ठ विटप-संधि के अधःस्तर से दबता जाता है। वेदना-काल में सिर का वैकल्पिक उतार-चढ़ाव तब तक जारी रहता है, जब तक सिर का सबसे बड़ा व्यास एक तीव्र वेदना द्वारा भग में नहीं ढकेल दिया जाता। इसके पीछे चढ़ाव नहीं होता। सिर का पूर्व विवर, भ्रू, मुख क्रमशः भग-गुदांतर स्थान में खिसक आते हैं। इस समय जननी को घोर वेदना होती है। सिर निकलने पर प्रसव कुछ काल के लिये बंद हो जाता है, जिससे बच्चे का मुख लाल हो जाता है। और फिर शीघ्र ही वेदनाएँ आरंभ हो जाती हैं। शिशु का मुख इस प्रकार घूम जाता है, जिससे वह जननी के दक्षिण ओर आ जाता है। अर्थात् जननी बाईं ओर पड़ी हो, तो मुख ऊपर की ओर दिखाई देगा।

इससे पता लगता है कि बहिर्द्वार के लंबे पुरःपश्चात् व्यास में स्कंध आ रहे हैं। सम्मुख स्कंध विटप-संधि से दब जाता है, जिससे पश्चात् स्कंध भग-गुदांतर स्थान पर खिसकता हुआ बाहर आ जाता है। उसके पश्चात् शरीर का शेष भाग भी शीघ्रता से निकल आता है। अंत में शेष गर्भ-जल (जो आवरण-कला के फटने पर रह गया था) ज़ोर से बह जाता है। धृतैकगर्भा स्त्रियों में यह अवस्था दो या तीन घंटे लेती है, एवं धृतानेकगर्भा में यह समय बहुत थोड़ा हो सकता है।

द्वितीयावस्था के अंत में गर्भाशय (संकुचित) कठोर अर्बुद के रूप में नाभि से नीचे तक पहुँचा प्रतीत होगा।

तृतीयावस्था—अब कुछ समय के लिये वेदना बंद हो जाती है। अंत में गर्भाशय फिर आकुंचित और छूने पर अधिक कठिन तथा ठोस होता प्रतीत होने लगता है। बीच-बीच में गर्भा-

शय मृदु भी हो जाता है। परंतु लचलचा कभी नहीं होता। इसके पश्चात् वेदनांतरों में रक्त का बार-बार थोड़ा स्राव होने लगता है, जिससे पता लगता है कि कमल गर्भाशय से पृथक् हो रहा है। अंत में एक तीव्र वेदना के साथ कमल योनि से बाहर आ जाता है। परंतु कभी-कभी यह योनि में भी अटक जाता है। प्रायः गर्भाशय-आकुंचनों के द्वारा बाहर ही निकल जाता है। तृतीयावस्था कुछ क्षण से लेकर १ घंटे तक रह सकती है। कभी-कभी इससे भी अधिक समय लग जाता है। औसतन् यह समय २० मिनट है। इस अवस्था में जननी को कँपकँपी भी चढ़ जाती है, जिसे प्रसूति की स्वस्थ कँपकँपी कहते हैं। यह निम्न-लिखित कारणों से होती है—

(१) पसीने के कारण शरीर के पृष्ठ के ठंडे पड़ने से, (२) मांस-पेशियों के प्रबल आकुंचनों के कारण, (३) कमल में रक्त-संचार बंद होने से, (४) उदर के रक्त-संचार में परिवर्तन आने के कारण।

प्रसूति का अंतर—धृतानेकगर्भा में यह अंतर १२ घंटे होता है। प्रथमावस्था १०½ घंटे, १½ घंटा द्वितीयावस्था और ½ घंटा तृतीयावस्था होती है। धृतैकगर्भा स्त्री में १८ घंटे लगते हैं। प्रथमावस्था १५ से १६ घंटे, द्वितीयावस्था २ घंटे और तृतीयावस्था ½ घंटे होती है।

प्रायः यह देखा गया है कि प्रसूति का अंतर १२ बजे रात के (P. M) से प्रातः ६ बजे (A. M) तक के समय में होता है। इसका कारण ज्ञात नहीं। परंतु यह समय बहुत ही असुविधा का होता है।

दसवाँ प्रकरण

प्रसूति के घटक

प्रसूति की प्रत्येक अवस्था में होनेवाली अनेक घटनाओं को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१ शक्तियाँ, २ पथ और ३ पांथ।

प्रथमावस्था—प्रथमावस्था की वर्णनीय घटनाएँ ये हैं—

१—गर्भाशय का आकुंचन, २—गर्भाशय-ग्रीवा का खुलना तथा प्रणाली का बनना, ३—गर्भाशय की अधःशकल का निर्माण, ४—जल-कोषों का बनना तथा उनका प्रारंभिक उतार।

इन सबका वर्णन उपर्युक्त तीन शीर्षकों के नीचे ही किया जायगा।

शक्तियाँ—प्रसूति में दो शक्तियाँ कार्य करती हैं। गर्भाशय को मांस-पेशियों की कार्य-शक्ति को पूर्ववर्ति शक्ति कहते हैं। तथा उदर-मांस-पेशियों के कार्य की शक्ति को उत्तरवर्ति शक्ति कहते हैं। प्रथमावस्था में केवल पूर्ववर्ति शक्तियाँ ही काम आती हैं।

इसका पहले भी निर्देश किया जा चुका है कि गर्भ-स्थिति के अधिक भाग में गर्भाशय सांतर आकुंचनों की तरंगें समय-समय पर चलती रहती हैं। इन्हीं तरंगों की अतिशय वृद्धि प्रसूति के आकुंचनों के रूप में बदल जाती है, और इतनी बढ़ती है कि वेदना प्रतीत होने लगती है। इनमें अब इतना और परिवर्तन हो जाता है कि गर्भाशय अब आकुंचित होने के साथ संकुचित भी होता है। संकोचन गर्भाशय तथा मूत्राशय का विशेष गुण है। इसका अर्थ यह है कि आकुंचन-जनित

स्वल्पता चिरस्थायी हो जाती है। अर्थात् प्रत्येक आकुंचन के साथ मांस-तंतु छोटे होते जाते हैं, और फिर ढीले होकर कभी अपनी वास्तविकता को नहीं पहुँचते। प्रसूति में इस प्रकार गर्भाशय के आयतन की घटती लगातार बढ़ती जाती है, जो भ्रूण के निःसारण में होनेवाली मुख्य घटनाओं में एक है। वेदनाओं की संज्ञा प्रायः गर्भाशयाकुंचनों की पर्याय-वाचक बन गई है। चूँकि गर्भाशयाकुंचनों के समय वेदना ही प्रत्यक्षतम चिह्न होता है। यह वेदना आकुंच्यमान मांस-तंतुओं के वात-तंतुओं पर दबाव पड़ने से होती है।

द्वितीयावस्था—द्वितीयावस्था में विशेषतः जब सिर निकलने लगता है, उत्पादक प्रणाली के अत्यंत खिंचाव के कारण वेदना बहुत बढ़ जाती है। तथा जब सिर भग-गुदांतर स्थान पर खिसक आता है, तो मर्मांतक वेदना होती है। वेदना की अधिकता तथा स्वल्पता प्रति व्यक्ति बद-लती रहती है। कभी-कभी जननी को वेदना बिल्कुल ही प्रतीत नहीं होती। गर्भाशय के आकुंचन संभवतः सारंगिक होते हैं, जो ऊर्ध्वांश से ग्रीवा की ओर चलते हैं। परंतु यह बात मानव-जाति में होती पता नहीं चली। एक आदर्श आकुंचन बहुत ही निश्चित प्रकार का होता है। यह शनैः-शनैः प्रारंभ होता है, तथा धीरे-धीरे बढ़-कर परा काष्ठा को, जो एक या दो क्षण रहती है, पहुँच जाता है। फिर इसका ह्रास आरंभ होता है, और क्रमशः शेष हो जाता है। उसके पश्चात् दूसरे आकुंचन होने से पूर्व विश्राम का अंतर आता है। इस प्रकार एक चक्कर बन जाता है।

इस अंतर आकुंचन की उपयोगिता बहुत अधिक है, क्योंकि १—यह जननी को विश्राम देता है। २—भ्रूण पर तथा उदर के दबाव को दूर करता है। ३—वेदना-कोटि पर बंद हो जानेवाले रक्त-प्रवाह को पुनः प्रवाहित कर देता है। ऐसा देखा गया है कि 'अरगट' आदि औषधियों के दुरुपयोग से जब गर्भाशय में धनुस्तंभ (टैटिनस) के

समान निरंतर आकुंचन होने लगते हैं, तो कमल-रक्त-परिवाह बंद हो जाता है, जिससे बच्चा मर जाता है।

दूसरा नियम, जो आकुंचनों पर लागू होता है, यह है कि ज्यों-ज्यों प्रसूति का अग्रसरण होता जाता है, त्यों-त्यों वेदनाएँ भी अधिक देर तक अधिक प्रबलता से तथा अत्यंत शीघ्र होने लगती हैं। प्रसूति के प्रारंभ में आकुंचन ३० सेकंड तक रह सकते हैं। तथा १० या २० मिनट के अंतर से होते हैं। परंतु प्रसूति के अंतिम समय में यह ६० से ९० सेकंड तक रहते हैं, तथा प्रत्येक दूसरे या तीसरे मिनट पर होने लगते हैं।

शक्ति का संचरण-प्रकार—प्रथमावस्था में भ्रूण आवरण-कलाओं से पूरी तरह आवृत होता है। और जब तक ग्रीवा प्रसरित नहीं होती, गर्भाशयाकुंचन की शक्ति द्रवों के साधारण दबाव के अनुसार सब दिशाओं में समान लगती है। यदि यही क्रम जारी रहे, तो भ्रूण आगे नहीं सरक सकता। परंतु यह अवस्था ग्रीवा के कम रोध के प्रदेश होने से रुक जाती है, जिससे द्रव का दबाव नीचे की ओर सीधा ग्रीवा पर पड़ता है। आवरण-कला के विदीर्ण होने पर भ्रूण-सिर के गर्भाशयाधःशकल में पूरी तरह फँस जाने के कारण बहुत-सा द्रव शिष्ट रह जाता है। अतः गर्भाशयाधःशकल के तल से ऊपर गर्भाशयाकुंचन-शक्ति द्रवों के साधारण दबाव के अनुसार ही संचरित होती है। परंतु यदि द्रव अधिक राशि में निकल जाय, तो गर्भाशय का ऊर्ध्वांश भ्रूण के नितंब पर आ लगता है। तब कुछ शक्ति सीधी भ्रूण के अत्त पर पड़कर नीचे की ओर संचरित हो जाती है।

गर्भाशयाकुंचन-शक्ति—इसके विषय में बहुत-सा मतभेद है। परंतु परीक्षणों से पता लगा है कि भ्रूण-सिर के प्रत्येक वर्ग इंच पर १५ सेर का भार पड़ता है। तीव्र वेदना-कोटि पर संभवतः २५ सेर तक भी हो सकता है।

आकुंचन के समय निम्न-लिखित बातें दिखाई देती हैं—

१—जननी के रक्त का दबाव बढ़ जाता है। २—नाड़ी द्रुत हो जाती है, तथा वेदनांतरों पर विलंबित हो जाती है। ३—वेदना-कोटि पर प्रश्वास कम या बंद हो जाता है, जो बाद को द्रुत हो जाता है। ४—गर्भाशयांतर दबाव बढ़ जाता है। ५—भ्रूण-हृदय-गति मंद हो जाती है। ६—प्रारंभ में गर्भस्वन ऊँचा तथा तीखा होता है, परंतु कोटि पर श्रवण-गोचर हो जाता है, क्योंकि उस समय रक्त-प्रवाह कुछ क्षणों के लिये बंद हो जाता है। ७—गर्भाशय तंग, लंबायमान तथा सामने की ओर झुक जाता है, जिससे उसका प्रलंब अक्ष वस्ति-गह्वर-तीर में पड़ जाता है।

पथ—बहुत-सी जननियों में गर्भाशय-गात्र का निचला भाग विशेषतः पुरःभित्ति गर्भ-स्थिति के अंतिम दो या तीन मासों में पतली पड़ जाती है। पतले तथा मोटे भाग के बीच कोई सीमा लक्षित नहीं होती। परंतु पतलापन क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता जाता है, जो गर्भाशय-ग्रीवांतर दीवार से २" ऊपर के भाग में अधिक लक्षित होता है। इस पतले हुए भाग को 'गर्भाशयाधःशकल' कहते हैं। कई जननियों में यह अधःशकल प्रसूति के प्रारंभ से पूर्व तक लक्षित नहीं होती, परंतु सभी जननियों में प्रसूति प्रारंभ होने पर पूर्णतः तथा स्पष्ट रूप से लक्षित हो जाती है। कुछ जननियों को छोड़कर, जिनमें गर्भ-स्थिति के अंतिम कुछ दिनों या सप्ताहों में वेदना-रहित आकुंचनों द्वारा ग्रीवा-प्रणाली फैल जाती है, प्रायः सब जननियों में गर्भाशय-ग्रीवांतर्मुख प्रसूति प्रारंभ होने तक बंद रहता है। अतः साधारणतया प्रसूति के प्रारंभ में ग्रीवा-प्रणाली तंग होती है, तथा अंतर्मुख पर जो गर्भाशय गुहा के प्याले की आकृति के समान निचले भाग में खुलता है, बंद होती है। प्रसूति की प्रथमावस्था में ये दोनो भाग खुल जाते हैं, जिससे गर्भाशय से मिली हुई एक

प्रणाली बन जाती है। गर्भाशय के समान एक खोखले अंग को अपने अंदर की वस्तु बाहर फेंकने के लिये आवश्यक है कि उसका एक भाग शेष भाग से निर्बल हो, अन्यथा आकुंचनों द्वारा गर्भाशयांतः दबाव ही बढ़ सकेगा, और उसके अंदर की वस्तु नहीं निकलेगी। प्रकृति ने इसलिये बाहर निकालने के प्रदेश को दो साधनों द्वारा निर्बल बनाया है—

१. गर्भाशय की प्रदेश-शक्ति-भिन्नता और २. गर्भाशयाधःशकल का निर्माण।

प्रदेश-शक्ति की भिन्नता का यह अर्थ है कि जब गर्भाशय-गात्र आकुंचनावस्था में होता है, तो ग्रीवा शिथिलावस्था में होती है, और जब ग्रीवा आकुंचनावस्था में होती है, तो गर्भाशय-गात्र शिथिलावस्था में होता है। यही नियम अन्य खोखले अंगों में—यथा गुदा और मूत्राशय में भी घटता है।

गर्भ-स्थिति की अवस्था में स्वल्प सांतर आकुंचनों को छोड़कर गर्भाशय-गात्र शिथिलावस्था में एवं गात्र-आकुंचनावस्था में होता है। परंतु प्रसूति में इसका व्यत्यय हो जाता है, अर्थात् गात्र आकुंचित और ग्रीवा शिथिल हो जाती है। इसी नियम से हम ग्रीवा का प्रबल फैलाव करके गात्र में आकुंचन पैदा कर सकते हैं।

२. गर्भाशयाधःशकल कम अवरोध का प्रदेश है। जैसा पहले बताया जा चुका है कि यह भाग शेष भाग से प्रसूति प्रारंभ होने से पूर्व ही पतला हो सकता है। परंतु प्रसूति प्रारंभ होने पर सर्वदा ही यह क्रमशः पतला पड़ता जाता है (जो बहुत कुछ इसकी रचना की निर्बलता के कारण होता है), जिससे प्रसूति के समय यह सर्वथा निष्क्रिय हो जाता है। इस भाग में प्रायः समानांतर पटलों में विन्यस्त तिर्यक् मांस-तंतु ही होते हैं, तथा दिगंतसम मांस-तंतु, जिनसे बल और संसक्ति मिलती है, बहुत ही कम होते हैं

परिणाम यह होता है कि जब ऊपर शकल आकुंचित तथा संकुचित होती है, तब निर्बल अधःशकल ऊपर को खिंच-तन तथा फैल जाती है। इन दो घटनाओं (अर्थात् अधःशकल का फैलाव तथा ग्रीवा की शिथिलता) के कारण ही जल-कोषों का निर्माण और उसका प्रारंभिक उतार होता है, तथा इन्हीं के कारण यथावसर ग्रीवा का पूर्ण फैलाव और अधःशकल का प्रणाली-रूप में परिवर्तन होता है।

जल-कोष का निर्माण—गर्भाशय-गुहा का अंतःपृष्ठ गर्भ-कला-संयुक्त भ्रूणावरण कलाओं से आस्तृत होता है। जब गर्भाशयाधःशकल के खिंच जाने से इसका पृष्ठ विस्तृत हो जाता है, तो गर्भ-कला और आवरण-कलाओं के बीच के बंधन टूट जाते हैं, क्योंकि जो आकुंचन गर्भाशयाधःशकल को तना देते हैं, वे ही द्रव-पूरित आवरण-कलाओं को भी नीचे की ओर ढकेल देते हैं। इस गर्भाशयाधःशकल से आवरण-कलाओं के विपुल होने के कारण ही प्रसूति के प्रारंभ में स्वल्प रक्त-स्राव (जिसे प्रदर्शक कहते हैं) होता है। ज्यों ही अंतर्मुख खुलने लगता है, त्यों ही उसमें द्रव-पूर्ण आवरण-कलाओं का वह वियुक्त भाग लटकने लगता एवं प्रत्येक आकुंचन के साथ-साथ ग्रीवा-प्रणाली में अधिक-अधिक आता-जाता है। इस प्रकार यह एक द्रव-निर्मित शंकु का कार्य करता है, जिससे ग्रीवा-प्रणाली वेग से खुलती चली जाती है। धृतैकगर्भा जननियों में बहिर्मुख खुलने के पूर्व सारी ग्रीवा-प्रणाली एक पीक का रूप धारण कर लेती है। कभी-कभी ग्रीवा इतनी पतली पड़ जाती है कि उसके बहिर्मुख का सिरा पत्ते के समान पतला हो जाता है। अंततः शेष प्रणाली के समान बहिर्मुख भी जल-कोष द्वारा फैल जाता है। धृतानेकगर्भा जननियों में बहिर्मुख प्रसूति के प्रारंभ से ही थोड़ा-बहुत खुला रहता है, तथा ग्रीवा-प्रणाली के फैलते-फैलते यह पूरा खुल जाता है।

प्रथमावस्था में जब बहिर्मुख खुलने लगता है, तभी परीक्षक

की उँगली को जल-कोष प्रतीत होने लगते हैं। वेदना के समय जब यह घड़ी के शीशे के समान कठोर हो जाता है, इसकी प्रतीति बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। व्याकृतियों तथा वस्ति-गह्वर और मृदु पर्थों को असाधारणावस्था में आवरण-कलाएँ दस्ताने की उँगली के समान बाहर को निकल आती हैं। इसके निम्न-लिखित कारण हैं—

१—शीर्षोदयन में सिर गर्भाशयाधः शकल में पूरा ठीक बैठ जाता है, जिससे गर्भ-जल बहुत ही कम राशि में इससे नीचे जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक आकुंचन जो जरायु-जल को पिचकाकर नीचे निकालना चाहता है, वह सिर को ही अधःशकल में इतना पूरा ढकेलता है, जिससे जरायु-जल की एक या दो बूँदें ही नीचे उतरती हैं। इस प्रकार पूर्ववर्ती जल की राशि क्रमशः बढ़ती है, तथा जब तक ग्रीवा पूर्ण नहीं खुल जाती, आवरण-कला की स्थिति-स्थापकता के कारण यह उससे चिपटी रहती है। वस्ति-गह्वर की व्याकृति एवं व्याकृतोदयन की अवस्था में उदित भाग अधःशकल में ठीक-ठीक नहीं बैठता, अतः प्रत्येक आकुंचन द्वारा जरायु-जल की बहुत-सी राशि उदित भाग के नीचे चली आती है। परिणाम यह होता है कि आवरण-कलाएँ अपूर्णतया प्रसरित बहिर्मुख में उँगली की आकृति में निकल आती हैं। ऐसी कलाएँ प्रथमावस्था की समाप्ति से पूर्व ही विदीर्ण हो जाती हैं। प्रत्येक अवस्था में विशेषतः आवरण-कलाओं के अपरिपक्व अवस्थाओं में विदीर्ण होने पर उदित भाग स्वयं ग्रीवा के फैलाव में भाग लेता है। परंतु पूर्ववर्ती जलशंकु इस कार्य करने में सबसे अधिक समर्थ है। शुष्क प्रसूतियाँ बहुत ही दुष्कर होती हैं।

२—संकुचन-चक्र—यह पहले बताया जा चुका है कि गर्भाशय-गात्र की मांस-पेशियों की संकुचन-शक्ति द्वारा गर्भाशय-गुहा के आयतन

में कमी आ जाती है, जिससे भ्रूण दबकर निर्बल अधःशकल में पिचक जाता है। इसके साथ-ही-साथ गर्भाशय-भित्ति का पृष्ठ-क्षेत्र-फल क्रमशः घटता जाता है, जिसके कारण अंततः कमल वियुक्त हो जाता है। गर्भाशय के ऊपर की शकल की उन्नतिशील लंबाई में कमी और मोटाई में बढ़ती साथ-साथ होते हुए अधःशकल के फैलाव तथा पतलेपन पर बहुत कुछ निर्भर है। ज्यों-ज्यों प्रसूति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों पतले पड़े हुए अधःशकल से ऊपर की शकल का मोटा हुआ निचला किनारा गर्भाशय के चारो ओर एक वर्तुल-चक्र के रूप में विशद रूप से लक्षित होने लगता है, जिसका परिज्ञान बाहर तथा अंदर से छूकर किया जा सकता है। इस संकुचन चक्र को 'बैंडल्स रिंग' कहते हैं। अब यह सुगमता से समझा जा सकता है कि अधः-शकल जितना फैलता तथा पतला होता जाता है, संकुचन चक्र उतना-ही-उतना उन्नत तथा गर्भाशय में ऊँचा चढ़ता जाता है।

बहुत-सी बाधा-युक्त प्रसूतियों में, जिनमें अधःशकल बहुत अधिक फैल जाता है, संकुचन-चक्र उदर पर दिगंतसम रेखा के रूप में दिख-लाई पड़ता है, जो प्रसूति के बढ़ाव के साथ-साथ और ऊँचा चढ़ता जाता है। ऐसी अवस्थाएँ भयावह होती हैं, क्योंकि ये अवस्थाएँ अधःशकल के अत्यंत फैलाव की सूचक हैं, जिससे यदि प्रसूति शीघ्र न करा दी जाय, तो अधःशकल के फटने की संभावना रहती है।

उपरि तथा अधःशकल की रचना तथा कार्यों में मनोरंजक अंतर होता है।

उपरिशकल

१. परिविस्तृत कला दृढ़ता से चारो ओर चढ़ी होती है।

२. मांस-पेशियाँ कई दिशाओं में जानेवाले कई पटलों में विस्तृत होती हैं।

३. आवरण-कलाएँ दृढ़ता से संबद्ध होती हैं, जो प्रसूति के अंत समयों में ही पृथक् होती हैं।

४. प्रसूति-काल में क्रियाशील होता है।

५. संकुचन द्वारा क्रमशः छोटा तथा मोटा हो जाता है।

६. दोनो के बीच की सीमा संकुचन-चक्र से तथा बहुधा गर्भाशय के चारो ओर चक्कर खाती एक शिरा से रक्षित होती है।

अधःशकल

१. परिविस्तृत कला शिथिलता से चढ़ी होती है, तथा पार्श्वों पर नहीं होती।

२. पेशियाँ मुख्यतः अंतर्याम पटलों में विस्तृत होती हैं, जो सुगमता से अलग हो सकती हैं।

३. आवरण-कलाएँ शिथिलता से संबद्ध होतीं और प्रसूति के प्रारंभ में ही पृथक् हो जाती हैं।

४. प्रसूति-काल में अपेक्षया निष्क्रिय होता है।

५. खिंचकर पतला एवं क्रमशः लंबा तथा पतला भी हो जाता है।

अधःशकल का उत्पत्ति-स्थान—इसके लिये तीन कल्पनाएँ हैं, जिनमें से तीसरी सत्य प्रतीत होती है—

१. अधःशकल वास्तव में कोई वस्तु नहीं। जिसको यह नाम दिया गया है, वह अत्यंत फैली, पतली हुई ग्रीवा ही है।

२. गर्भ-स्थिति के अंतिम एक या दो मासों में ग्रीवा के ऊपर का भाग बहुत फैल जाता है, जो गर्भाशय-गात्र के निचले भाग से मिलकर अधःशकल बनाता है।

३. यह देखा गया है कि बहुत-सी अवस्थाओं में प्रसूति के प्रारंभ होने तक ग्रीवा नहीं फैलती, तथा अधःशकल केवल गर्भाशय के निचले भाग से ही बनता है।

प्रसूति के समय मूत्राशय की स्थिति—प्रथमावस्था में चढ़ती

हुई ग्रीवा तथा अधःशकल के साथ-साथ मूत्राशय भी शनैः-शनैः ऊपर खिंच आता है। द्वितीयावस्था में इसके ऊपर का सिरा उदर में तथा निचला विटप-संधि के पीछे होता है। यह बात दो तत्त्वों पर प्रकाश डालती है—

१—भरा हुआ मूत्राशय प्रसूति में बाधा तथा विलंब पैदा करता है। २—इसके भ्रूण के सिर तथा विटपदेश के बीच चिरकाल तक भींचे रहने से तंतुनाश (निक्रोसिस) तथा भगंदर होने का भय रहता है।

पांथ—इस अवस्था में जल-कोष ही पथिक होता है, जिसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

द्वितीयावस्था

१. शक्तियाँ—इसमें गर्भाशय को उत्तरवर्ती शक्तियों से भी सहायता मिलती है। प्रथम ये इच्छा-पूर्वक कार्य में लाई जाती हैं, परंतु इस अवस्था के अंत में इसका कार्य जननी के वश से बाहर हो जाता है, तब ये गर्भाशय के साथ ही प्रत्यावर्तित रूप से कार्य करती हैं।

२. पथ—आवरण-कला-विदीर्ण—ग्रीवा के पूर्ण फैलाव होने के साथ ही आवरण-कला फट जाती है। इस प्रकार पूर्ववर्ती जल-स्राव द्वितीयावस्था के प्रारंभ का सूचक होता है। आवरण-कला-विदारण एक ओर गर्भाशयाकुंचनों के वर्धमान बल तथा जल-कोष के अंदर क्रमशः बढ़ते हुए द्रव के दबाव तथा दूसरी ओर प्रसृत ग्रीवा द्वारा प्रदत्त आश्रय की घटती के कारण होता है।

योनि का नाली-रूप में परिवर्तन—यह उदयमान भाग द्वारा यदि अभी तक विदीर्ण न हुआ हो, तो जल-कोष द्वारा विदीर्ण होता है। शीर्षोदय शंकु के समान होने से अन्य उदयनों की अपेक्षा योनि को अधिक उत्तमता से फैलाता है।

वस्ति-गह्वर के अधःस्थल का स्थान-भ्रंश—यह स्मरण कर

लेना चाहिए कि वस्ति-गह्वर अधःस्तर एक विटप प्रादेशिक सम्मुख तथा दूसरे त्रिक प्रादेशिक पश्चात् शकल से बना होता है। गर्भ-स्थिति के अंतिम दिनों में दोनो शकल अपने तंतुओं की सरसता के कारण थैली की आकृति में नीचे की ओर निकल आते हैं। प्रसूति-काल में ग्रीवा के चढ़ाव के साथ-साथ विटप प्रादेशिक शकल मूत्राशय के समान (जो वास्तव में इस शकल का ही घटक होता है) ऊपर चढ़ जाता है। पश्चात् शकल भ्रूण-सिर के अग्रेसरण ठीक दिशा में होता है। अतः इस पर गर्भाशयाकुंचनों की पूरी शक्ति पड़ती है, जिससे यह ऊपर त्रिकास्थि पर दृढ़ता से स्थिर होने पर पीछे तथा नीचे की ओर धकेल दिया जाता है, जो शरीर-पृष्ठ पर भग-गुदांतर स्थान के फुलाव से लक्षित होता है।

सिर के जन्म से ठीक पहले भग की पश्चात् दरार तथा मल-द्वार के बीच का 1½ इंच का अंतर 3 या 4 इंच हो जाता है। वस्ति-गह्वर के इन दो शकलों के स्थान-अंश की उपमा हम दुहरे बंद होने-वाले किवाड़ों से दे सकते हैं, जिनमें से निकलनेवाला एक किवाड़ को बाहर की ओर धकेलकर और दूसरे को अंदर की ओर खींचकर अपने जाने की जगह बना लेता है।

पांथ—द्वितीयावस्था का पांथ भ्रूण है। प्रसूति के समय भ्रूण की वस्ति-गह्वर से संबद्ध गतियों का वर्णन, जो बहुत आवश्यक है, आगे किया जायगा।

तृतीयावस्था

शक्तियाँ—ये मुख्यतः गर्भाशयाकुंचन-जनित ही होती हैं। जननी के इच्छानुसार उदर-मांस-पेशियाँ भी कार्य कर सकती हैं, पर आवश्यक नहीं कि वे गर्भाशय के साथ-साथ कार्य करें। ऊर्ध्वांश पर धात्री के हाथ का दबाव भी सहायक शक्ति का कार्य कर सकता है, परंतु वस्तुतः यह स्वाभाविक शक्ति नहीं है।

पथ—विस्तीर्ण मृदुपथी इसी अवस्था में पथ होते हैं। भ्रूण के निःसारण के पश्चात् कृशीभूत गर्भाशयाधःशकल संगृहीत हो जाता तथा गात्र के नीचे की ओर ग्रीवा पर आश्रित हो जाने से यह कुछ-कुछ अपने ऊपर ही पलटा खा जाता है।

पांथ—कमल तथा आवरण-कलाएँ होती हैं।

कमल-विमोचन—शिशु-जन्म के पश्चात् वेदनाओं का पुनः आरंभ होना गर्भाशय-उपरिशकल के आकुंचन तथा सकुंचनों का सूचक होता है, जिनके कारण कमल-स्थल (प्लैसेंटल साइड) तथा कमल का अनुपात इतना अधिक बिगड़ जाता है कि उनके बीच के बंधन टूट जाते हैं। कमल-विमोचन से पूर्व ही कमल-स्थल का क्षेत्र-फल ४ $\frac{1}{2}$ × ४ इंच रह जाता है। परंतु कमल-स्थल के क्षेत्रफल को इतना घटाने के लिये आवश्यक संकुचन गर्भाशय-गुदा की परिधि को भी इतना घटा देते हैं कि यह कमल को चारों ओर से घेर लेती है। परिणाम यह होता है कि कमल-विमोचन के साथ-साथ गर्भाशय कमल के ऊपर निःसारण तथा अधःक्षेपण का बल डालता है। इस प्रकार विमोचन को अधःक्षेपण से काफ़ी सहायता मिलती है।

कमल-विमोचन का तीसरा घटक—वह रक्त-स्राव होता है, जो कमल के थोड़े-से भाग के विमोचन होने पर कमल के पीछे इकट्ठा हो जाता है। कई अवस्थाओं में जब कमल के पीछे एक वृहत् रक्त-चक्का बन जाता है (जिसे कमल-पृष्ठवर्ती चक्का कहते हैं), यह चक्का गर्भ-विमोचन के घटकों में विशेष महत्त्व रखता है।

कमल का निःसारण—कमल का निःसारण प्रायः विमोचन के बाद ही हो जाता है। निःसारण की दो विधियाँ ज्ञात हैं। परंतु अभी तक यह ज्ञात नहीं हुआ कि उनमें से कौन-सी बहुतायत से होती है।

प्रथम को 'स्कृडजी मैथेड' कहते हैं। इसमें कमल एक उलटे हुए छाते के रूप में बाहर आता है। अर्थात् भ्रूण-पृष्ठ प्रथम तथा आवरण-कला-पृष्ठ बाद को आता है। जब एक बृहत्कमल-पृष्ठवर्ती चक्का बन जाता है, तो प्रायः निःसारण इसी रीति से होता है। दूसरी रीति को 'मैथ्युजमैथेड' कहते हैं। इसमें प्रथम कमल का निचला सिरा बाहर आता है, फिर अन्वायाम-रूप में अपने ऊपर पलटा खाया हुआ सारा कमल नीचे की ओर खिसक आता है।

रक्तातिस्राव का अवरोध—जब कमल गर्भाशय-भित्ति से पृथक् हो जाता है, तब एक से दूसरे अंग पर जानेवाली रक्तवाहिनियाँ टूट जाती और गर्भाशय-भित्ति में स्थित कई बड़ी-बड़ी रक्त-सरसियाँ खुली रह जाती हैं। इस स्राव का अवरोध भी विमोचनकारी गर्भाशय-संकुचनों द्वारा ही होता है। संकुच्यमान मांस-तंतु टेढ़ी-मेढ़ी रक्त-वाहिनियों के चारो ओर जाल-सा बना देते हैं, और जब ये तंतु संकुचित होते हैं, तब जीवित ग्रंथियों के रूप में वाहिनियों के मुँह को बाँध देते हैं, जिससे यदि स्राव हो, तो थोड़ा ही हो। यदि गर्भा-शय के परिश्रांत होने के कारण गर्भाशय का सर्वथा संकुचन न हो सके, तो स्वच्छंद तथा भयावह रक्त-स्राव होता है, जिसे 'प्रसूति-पश्चात् वर्त्ती अति रक्त-स्राव' (पोस्ट पार्टम हैम्रिज) कहते हैं।

ग्यारहवाँ प्रकरण

साधारण प्रसूति-प्रबंध

प्राक् चैवास्या नवमासात् सूतिकागारं कारयेद् अपहृत्यास्थिशर्करा-कपाले देशे प्रशस्तरूपरसगन्धायां भूमौ प्राग्द्वारमुदक्द्वारं वा वैल्वानां काष्ठानां वारणानां वा । यानि चान्यान्यपि ब्राह्मणाः अथर्ववेदविदः—उदूखलवर्चस्थानस्नानभूमिमहान् समृतुसुजस्वञ्च सेवयेत् ।

तत्र सर्पिस्तैलमधुसैन्धवसौवर्चल...सुरासवाः सन्निहिताःस्युः ।

तत्राश्मनौ द्वौ द्वे च कुण्डमूसले, द्वौ च तीक्ष्णौ सूची पिप्पलकौ सौवर्णराजतशस्त्राणि च तीक्ष्णायसानि द्वौ च विल्वमयौ पर्यंकौ । स्त्रियश्च बहुशो प्रजाताः हार्दयुक्ताः सततमनुरक्ताः प्रदक्षिणानुचाराः प्रतिपत्तिकुशलाः प्रकृतिवत्सलास्त्यक्तविशादाः क्लेशसहिन्योऽभिमताः ब्राह्मणाश्चाथर्वविदो यच्चान्यदपि तत्र समर्थं मन्येत । (चरक)

स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः वर्त्तितनखाः परिचरेयुरिति ।

(सुश्रुत)

गर्भ-स्थिति के अंतिम दिनों में जननी के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए, एवं प्रसूति से पूर्व निम्न-लिखित वस्तुएँ तैयार रखनी चाहिए—

१. दो मोमजामा या बरसाती २ × ४½ फ़ीट ।

२. बुरादा-भरी दो तुलाई ।

३. दो शोषक कार्पास के पोटले ।

४. लाईजोल चार औंस ।

५. शुद्ध एरंड-तेल की एक शीशी (मॉर्टन की) ।

६. शुद्ध ज़ैतून के तेल की शीशी।
७. क्लोरोफ़ार्म चार औंस।
८. पाँच श्वेत चिलमचियाँ चीनी की।
९. मल-भाजन।
१०. गरम पानी की शीशियाँ।
११. टूँटीदार प्याला।
१२. पट्टियाँ ३-४ फ़ीट लंबी, २ फ़ीट चौड़ी।
१३. नाल-परिष्कार के लिये विशुद्ध मलमल।
१४. डस्टिंग पाउडर।
१५. शिशु का मुख साफ़ करने के लिये ग्लैसरीन और सुहागा।
१६. शिशु को लपेटने के लिये १० गज़ फ़लालैन।
१७. उलंसमेजर और मिनीमेजर।
१८. वस्ति।
१९. कैथेटर (शलाका)।
२०. क़ैंची।
२१. पारद द्विनैलिद की टिकड़ियों की शीशी।
२२. नाल-बंधन के लिये सूत का डोरा।
२३. ताप-मापक तथा जल-ताप-मापक।
२४. रोगपट्टिका।

प्रसूति के लिये आवश्यक उपकरण—

१. द्विनाली-यंत्र (स्टैथस्कोप)।
२. साबुन।
३. नख-शोधक कूर्चा।
४. पूति-नाशक घोल।
५. क्लोरोफ़ार्म।
६. ईथर।

७ हाइपोडरयिक सिरंग (त्वगन्तः पिचकारी) ।

८. मॉर्फिया, स्ट्रिकनीन, अरगोरीन, पिट्युट्रीन, एडरनैलिन की टिकड़ी या घोल (कैपसुल) ।

९. गम एलास्टिक मेलकैथेटर ।

१०. आयडोफ़ार्म और बिस्म्युथ गॉज़ ।

११. विशुद्ध परिच्छद ।

१२. काच-निर्मित योनि के लिये नौज़ल ।

१३. इंट्रा यूट्राईन कैथेटर ।

१४. नाल बाँधने के लिये तीन बराबर डोरे ।

१५. क्लैंची ।

१६. वक्षःस्थल में इंजैक्शन (सैलाइन) देने की सुइयाँ ।

१७. वस्ति-यंत्र ।

१८. पूति-नाशक शोषक कपास ।

१९. एनीमा सिरंज ।

२०. संदंश (फ़ॉरसिपस) ।

२१. वस्ति-गह्वर-मापक यंत्र (पैलिविल मीटर) ।

२२. रबर के दस्ताने ।

२३. भग-गुदांतर के सीने के लिये उपर्युक्त सुइयाँ ।

२४. स्यूति के लिये अन्य वस्तुएँ—रेशम आदि ।

सूतिका-गृह—स्वच्छ, हवादार, जिसमें सूर्य की किरणें आ सकें । शय्या का आश्रय प्रायः रात को लिया जाता है ।

शल्य-कर्म-संबंधी स्वच्छता—शल्य-यंत्रों को पूर्ण स्वच्छ रखना चाहिए । जननी के उत्पादक अंगों को पूति-नाशक द्रवों से धोकर शुद्ध रखना चाहिए । इस समय की प्रसूति-पूति (परपूरलसैप्सिस) के कारण अनेक मृत्यु हो जाती हैं । इसका कारण प्रायः धात्री के हाथों तथा यंत्रों की अस्वच्छता होती है ।

अधृतगर्भा स्त्रियों की अपेक्षा धृतगर्भा स्त्रियों में केवल योनि का स्राव ही बढ़ता है। उसमें और कोई परिवर्तन नहीं होता। यह रंग में श्वेत-सा तथा एपिथिलीयल सैल, श्वेताणु और म्युकस-युक्त होता है। यह योनि की एपिथिलीयल से निःसारित रस से नीला रहता है। यह बताया जा चुका है कि योनि-स्राव की अम्लता जीवाणुओं के लिये घातक है। अतः योनि-स्राव में अम्लता घटानेवाली क्रिया जीवाणुओं को योनि में बढ़ा देती है।

प्रसूति-पश्चात् समय में गर्भाशय से होनेवाला स्राव क्षारीय होता है। इसको 'लोशिया' कहते हैं। इसमें बहुत-से जीवाणु मिलते हैं। परंतु जब लोशिया बंद हो जाता है, तो योनि के कीटाणुओं के पुनः अपना अधिकार जमा लेने पर स्राव फिर अम्लीय हो जाता है, तथा अन्य जीवाणु लुप्त हो जाते हैं।

प्रकृति के पूति-निवारण की विधियाँ—उत्पादक प्रणाली को तीन भागों में बाँटकर भले प्रकार दिखा सकते हैं—

१. भग (योनि-द्वार-सहित)—इस प्रदेश में बहुत-से जीवाणु रह सकते हैं।

२. योनि—यह पूति-निवारक भाग होता है। इसमें अम्लीय स्राव होता है, जिसमें कुछ योनि-कीटाणु तथा कुछ श्वेताणु भी होते हैं।

३. गर्भाशय-गुहा—यह श्लेष्म के रोधक द्वारा योनि से पृथक् होती है। तथा सर्वथा जीवाणु-रहित होती है। अतः यह भाग पूति-रहित होता है।

प्रकृति केवल इतनी रचना से संतुष्ट न होकर कृमि-नाश के लिये निम्न-लिखित रचनाएँ और बनाती है—

१—प्रसूति की प्रथम और द्वितीय अवस्था में योनि-स्राव की वृद्धि।

२—आवरण-कलाओं के फटने पर विशुद्ध जरायु-जल द्वारा योनि का प्रक्षालन।

३—शिशु-जन्म के पश्चात् फैली हुई योनि-दीवारों का पुनः जरायु-जल से प्रक्षालन।

४—गुज़रते हुए कमल तथा आवरण-कलाओं द्वारा योनि का भौतिक परिशोधन।

हमारी पूति-निरोधक रीतियाँ—हम तीन प्रकार से पूति का निरोध कर सकते हैं—

१. धात्री का वैयक्तिक-पूर्ण पूति-राहित्य।

२. जननी के वाह्योत्पादक अंगों का पूर्ण परिशोधन।

३. योनि की यथाशक्य क्रम वार परीक्षा।

(१) हाथों के परिशोधन के विषय में प्रथम लिखा जा चुका है।

(२) भग का परिशोधन—प्रसूति के प्रारंभ में यदि संभव हो, तो जननी को पूर्ण स्नान करा लेना चाहिए। यदि वाल बहुत लंबे हों, तो काट या मूँड़ देना चाहिए। योनि की परीक्षा करने से पूर्व उसे गरम पानी, साबुन तथा लाईजोल के घोल से अवश्य धो देना चाहिए। क्षुद्र भगोष्ठों को जुदा करके १०००० पारद नैलिद या १०० लाईजोल के घोल में भीगे फाए से पोंछ देना चाहिए। पिचू ऊपर से नीचे की ओर फेरना चाहिए। अन्यथा मल-द्वार से पूय-युक्त पदार्थ लग सकता है। पिचू एक ही वार प्रयोग करना चाहिए। इससे पूर्व धात्री को देख लेना चाहिए कि जननी की गुदा और मूत्राशय खाली हैं। प्रायः प्रत्येक अवस्था में वस्ति दे देनी चाहिए।

(३) योनि की क्रम परी[illegible]—साधारणत: उदर-[illegible]
है। यदि आवश्यक हो, [illegible] ए। बड़ी साव[illegible]
चाहिए। जननी को पी[illegible] देना उत्तम है[illegible]

मल-द्वार में न लग सकें। हाथों और भग के परिशोधन के बाद परिशुद्ध क्षुद्र भगोष्ठ को वाम हाथ की उँगलियों से जुदा करके दाएँ हाथ की परीक्षक उँगली भग को बिना छुए योनि में डालनी चाहिए। परीक्षा से पूर्व जननी को प्रसन्न तथा विश्वास में आना चाहिए। नाड़ी-परीक्षा करके उससे वेदना प्रारंभ होने का प्रश्न पूछो। उसको लेटाकर फिर सावधानी से परीक्षा करो। इस परीक्षा से निम्न-लिखित बातें निश्चय करनी चाहिए—

१. शिशु का उदयन तथा स्थिति।

२. वेदनांतरों में सिर स्थिर रहता है या नहीं।

३. सिर झुका है या नहीं। वस्ति-गह्वर में कितना उतर आया है।

४. भ्रूण-हृच्छब्द की गति तथा गुण।

५. मूत्राशय भरा हुआ है या नहीं।

६. वेदना का काल तथा पौनःपुन्य। वह कृत्रिम है या सत्य।

प्रायः इसी परीक्षा से सब पता लग जाता है। यदि आवश्यक हो, तो योनि-परीक्षा करें।

वेदना होते हुए उँगली डालनी चाहिए, और वेदना की समाप्ति तक परीक्षा करनी चाहिए, जिससे वेदना-काल तथा वेदनांतरों में होती हुई अवस्थाओं का पूरा ज्ञान हो जायगा।

इस परीक्षा से निम्न-लिखित बातों का निश्चय करना चाहिए—

१. क्या जननी प्रसूति-अवस्था में है?

२. गर्भाशय-ग्रीवा तथा द्वारों की दशा—प्रसूति कहाँ तक बढ़ गई है।

३. उदयन तथा स्थिति।

४. आवरण-कलाएँ फट गईं या नहीं। यदि न फटी हों, तो मत फाड़ो।

५. ग्रीवा-द्वार, योनि और भग-गुदांतर स्थान की अवस्थाओं का परिज्ञान करो। देखो, वे कहाँ तक फैले, खिचे, आर्द्र या सूखे हैं।

६. क्या वस्ति-गह्वर साधारण है? यदि पहले निश्चय न किया हो।

७. क्या कमल पलटा खाए हुए हैं?

प्रसूति का प्रारंभ जानने के लिये दो निशानियाँ मुख्य हैं। यथा—

१. शो (प्रदर्शक)—यह रक्त-मिश्रित एक चिक्कण पदार्थ है, जो प्रसव के आरंभ होने से एक या दो दिन पूर्व ग्रीवा और अन्य छिपे भागों से बाहर आता है। इसमें जो रक्त आता है, वह गर्भाशय में बने गर्भ-पटल और गर्भाशय के निचले भाग के विस्तृत होने से होता है।

२. झूठी दर्दें—सच्ची दर्दें शुरू हों, इससे पूर्व (एक या दो दिन) ये दर्दें आरंभ हो जाती हैं। ये दर्दें संपूर्ण ... पर मिलती हैं, एवं अनियमित होती हैं।

जननी प्रसव की प्रथमावस्था में है या दूसरी में, यह ... से ज्ञात हो सकता है। प्रथमावस्था में दर्दें केवल गर्भाशय ... ही सीमित रहती हैं, और द्वितीयावस्था में नीचे की ओर ... करती प्रतीत होती हैं। इसके पीछे यह भी पता लग सकता ... कि आवरण-कलाएँ फट गई हैं या नहीं, और योनि-मार्ग से परीक्षा करने पर ग्रीवा और आवरण-कलाओं की अवस्था का ज्ञान हो सकता है ॐ।

ल...

पूर्व ...

खाली है

(३) ...

है। यदि आ...

चाहिए। जननी

... तु ... प्रजायनी। (सुश्रुत

बारहवाँ प्रकरण

शिरोदय तथा प्रसूति की प्रक्रिया

सद्योपस्थितकाले जन्मनि प्रसूते मारुतयोगात् परिवृत्य वाक्शिरा- निष्क्रामयत्यपत्यपथेन । एषा प्रकृतिः । विकृतिपुनरतोऽन्यथा । परं ततः स्वतन्त्रवृत्तिर्भवति । (चरक)

शिरोदय में सिर के भिन्न-भिन्न भाग गर्भाशय के निचले भाग में रहते हैं। इसके मुख्यतः तीन भाग हैं—

१. शीर्षोदय—वर्टेक्स प्रेजनटेशन ३५·५ प्रतिशत

२. मुखोदय—फ़ेस ,, ०·४ ,,

३. भ्रूदय—ब्रो ,, ०·१ ,,

शीर्षोदय—शीर्षोदय में जब अग्रिम और पश्चिम विवर के मध्यवर्ती भाग सबसे नीचे हों, तो शीर्षोदय कहते हैं।

स्थिति—इसकी चार स्थितियाँ हैं। गर्भ की पीठ माता की मध्य रेखा के दक्षिण या वाम-पार्श्व में हो, और अग्रिम या पीछे हो, तो ये चार स्थितियाँ होती हैं—

प्रथम स्थिति—पीठ वाम-पार्श्व में और सामने हो।

द्वितीय स्थिति—पीठ दक्षिण-पार्श्व में और सामने हो।

तृतीय स्थिति—पीठ दक्षिण-पार्श्व में और पीछे।

चतुर्थ स्थिति—पीठ वाम-पार्श्व में और पीछे।

इनमें प्रायः प्रथम स्थिति ही अधिक होती है।

कई बार शिरःपश्चादस्थि माता की वस्ति में जिस प्रकार आई होती है, उसी के अनुसार विभाग किया जाता है।

६. क्या वस्ति-गह्वर साधारण है? यदि पहले निश्चय न किया हो।

७. क्या कमल पलटा खाए हुए है?

प्रसूति का प्रारंभ जानने के लिये दो निशानियाँ मुख्य हैं। यथा—

१. शो (प्रदर्शक)—यह रक्त-मिश्रित एक चिक्कण पदार्थ है, जो प्रसव के आरंभ होने से एक या दो दिन पूर्व ग्रीवा और अन्य छिपे भागों से बाहर आता है। इसमें जो रक्त आता है, वह गर्भाशय में बने गर्भ-पटल और गर्भाशय के निचले भाग के विस्तृत होने से होता है।

२. झूठी दर्दें—सच्ची दर्दें शुरू हों, इससे पूर्व (एक या दो दिन) ये दर्दें आरंभ हो जाती हैं। ये दर्दें संपूर्ण पेट पर मिलती हैं, एवं अनियमित होती हैं।

जननी प्रसव की प्रथमावस्था में है या दूसरी में, यह प्रसव की पीड़ा से ज्ञात हो सकता है। प्रथमावस्था में दर्दें केवल गर्भाशय तक ही सीमित रहती हैं, और द्वितीयावस्था में नीचे की ओर ज़ोर करती प्रतीत होती हैं। इसके पीछे यह भी पता लग सकता है कि आवरण-कलाएँ फट गई हैं या नहीं, और योनि-मार्ग से परीक्षा करने पर ग्रीवा और आवरण-कलाओं की अवस्था का ज्ञान हो सकता है *।

---

* सशूले जघने नारी सा तु ज्ञेया प्रजायनी। (सुश्रुत)

बारहवाँ प्रकरण

शिरोदय तथा प्रसूति की प्रक्रिया

सद्योपस्थितकाले जन्मनि प्रसूते मारुतयोगात् परिवृत्य वाक्शिरा-निष्क्रामयत्यपत्यपथेन। एषा प्रकृतिः। विकृतिपुनरतोऽन्यथा। परं ततः स्वतन्त्रवृत्तिर्भवति। (चरक)

शिरोदय में सिर के भिन्न-भिन्न भाग गर्भाशय के निचले भाग में रहते हैं। इसके मुख्यतः तीन भाग हैं—

१. शीर्षोदय—वर्टेक्स प्रेजनटेशन ३५·५ प्रतिशत

२. मुखोदय—फ़ेस ,, ०·४ ,,

३. भ्रूदय—ब्रो ,, ०·१ ,,

शीर्षोदय—शीर्षोदय में जब अग्रिम और पश्चिम विवर के मध्यवर्ती भाग सबसे नीचे हों, तो शीर्षोदय कहते हैं।

स्थिति—इसकी चार स्थितियाँ हैं। गर्भ की पीठ माता की मध्य रेखा के दक्षिण या वाम-पार्श्व में हो, और अग्रिम या पीछे हो, तो ये चार स्थितियाँ होती हैं—

प्रथम स्थिति—पीठ वाम-पार्श्व में और सामने हो।

द्वितीय स्थिति—पीठ दक्षिण-पार्श्व में और सामने हो।

तृतीय स्थिति—पीठ दक्षिण-पार्श्व में और पीछे।

चतुर्थ स्थिति—पीठ वाम-पार्श्व में और पीछे।

इनमें प्रायः प्रथम स्थिति ही अधिक होती है।

कई बार शिरःपश्चादस्थि माता की वस्ति में जिस प्रकार आई होती है, उसी के अनुसार विभाग किया जाता है।

प्रथम स्थिति—पश्चादस्थि वाम-पार्श्व में और आगे—इसे वाम-शिरोपृष्ठ-सम्मुख स्थिति कहते हैं। इसमें भ्रूण के सिर की सहायक स्यूति लगभग वस्ति-गह्वर-तीर के दक्ष-तिर्यक् व्यास पर होती है।

द्वितीय स्थिति—पश्चादस्थि दक्षिण-पार्श्व में और आगे—इसे दक्ष-शिरो-पृष्ठ-सम्मुख स्थिति कहते हैं।

तृतीय स्थिति—पश्चादस्थि दक्षिण-पार्श्व में और पीछे—इसे दक्ष-शिरोपृष्ठ-पश्चाद् स्थिति कहते हैं।

चतुर्थ स्थिति—पश्चादस्थि वाम-पार्श्व में और पीछे—इसे वाम-शिरोपृष्ठ-पश्चाद् स्थिति कहते हैं।

इनके होने का क्रम—

वाम-शिरोपृष्ठ-सम्मुख		स्थिति	(वा० शि० स०)	७०%	प्रतिशत
दक्ष	,, ,,	,,	(द० शि० स०)	२०%	,,
वाम	,, पश्चाद्	,,	(वा० शि० प०)	८%	,,
दक्ष	,, ,,	,,	(द० शि० प०)	२%	,,

सिर पृष्ठ के सम्मुख स्थिति के बाहुल्य से होने के कारण—

१—गर्भाशय-गुहा जननी के उदर की आकृति के अनुसार अपने को ढाल लेती है। अतएव सामने से नतोदर तथा पृष्ठ-वंश के सामने की ओर झुकाव तथा त्रिकास्थिकूट-जनित कोण के कारण पीछे से उन्नतोदर बन जाती है। भ्रूण सामने से नतोदर और पीछे से उन्नतोदर होता है। अतः भ्रूण की पीठ जब गर्भाशय के नतोदर-सम्मुख भाग में तथा इसका सम्मुख भाग गर्भाशय के उन्नतोदर भाग में आता है, तो यह गर्भाशय में बिलकुल बैठ जाता है।

२—जीवितावस्था में दक्ष-तिर्यक् व्यास इसके सब व्यासों से लंबा होता है। वाम-तिर्यक् व्यास गुदा की उपस्थिति तथा दिगंतसम मांस-पेशियों की उपस्थिति के कारण दक्षिण-तिर्यक् व्यास से छोटे पड़

जाते हैं। यही कारण है कि सब उदयनों में उदित होते हुए लंबे भाग का व्यास दक्षिण-तिर्यंक् व्यास पर पड़ता है। शिरोदय में देखा गया है कि ६०% इसी व्यास में पड़ते हैं। तथा ७०% (वा० शि० स०) तथा २०% (द० शि० स०) में पड़ते हैं।

परीक्षा की विधि—उदर-परीक्षा से शीर्षोदय की परीक्षा उत्तम रूप से हो सकती है। प्रसूति के आरंभ में सिर गर्भाशय के निचले भाग में होता है। वह वस्ति में भी प्रविष्ट हो सकता है। चिबुक गर्भाशय में वर्टैक्स (कपाल) से अधिक ऊँची होती है। यदि यह हो, तो शीर्षोदय है। नितंब गर्भाशय के ऊर्ध्वांश में है, एवं पीठ नीचे की ओर ढकेलती होती है।

मैकेनिज्म ऑफ़् लेबर (प्रसव-प्रक्रिया)—वस्ति में शिशु के घूमने से शिशु का सबसे बड़ा व्यास वस्ति के सबसे बड़े व्यास में प्रविष्ट होता है। यह घुमाव किस प्रकार होता है, यह समझना कठिन है। परंतु यथाशक्ति समझाने का यत्न करता हूँ।

यदि बच्चे के सिर को वस्ति में प्रविष्ट होना हो, तो यह चाहिए कि वस्ति के सबसे बड़े व्यास में शिशु का छोटा व्यास आ जाय। जब सिर वस्ति की ब्रीम से और कपाल नीचे होता है, तो सिर के सबसे बड़े व्यास को, जिसे वस्ति के व्यास में प्रविष्ट होना है, 'ऑक्सीपिटो फ्रंटल' (शिरोपृष्ठ ललाट) कहते हैं, जिसकी लंबाई ४½ इंच होती है। परंतु जब सिर छाती पर झुका हो, तो 'सब ऑक्सीपिटो ब्रेग मेटिक व्यास' (उपशिरोपृष्ठ पूर्व विवरिक), जो ३¾ इंच है, वस्ति की किनारी (ब्रीम) में आ जाता है। सिर जब छाती पर झुका होता है, उसे 'फ्लैक्शन' कहते हैं। यह प्रसव-प्रक्रिया का एक भाग है।

वस्ति का व्यास भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर भिन्न-भिन्न होता है। अतः आवश्यक है कि जब सिर नीचे उतरे, तब सिर का सबसे

शीर्षोदय में प्रथम मुख छाती पर झुका होता है, उसे 'फलैक्शन' कहते हैं, जिससे वस्ति के तीर में सिर का सबसे छोटा व्यास प्रविष्ट हो जाता है। इसके पीछे शिशु का सिर वस्ति में घूमता है, जिसे 'इंटर्नल रोटेंशन' कहते हैं। इससे सिर का सबसे लंबा व्यास गर्भाशय-गुहा के सबसे लंबे व्यास में प्रविष्ट हो जाता है। और चिवुक छाती से पृथक् हो जाती है, जिससे अब सिर का सबसे लंबा व्यास वस्ति-बहिर्द्वार के सबसे लंबे व्यास में आ जाता है। और जब 'बीसएक्रोमीयल' व्यास आता है, तब उसे वस्ति के सबसे बड़े व्यास में प्रविष्ट करने के लिये सिर वस्ति के बाहर फिरता है। उसे 'एक्सटर्नल रोटेंशन' कहते हैं। प्रसव-प्रक्रिया के निम्न-लिखित पाँच भाग हैं—

१. डीसेंट— शिशु के सिर का नीचे आना।
२. फलैक्शन— ,, ,, का छाती पर झुकना।
३. इंटर्नल रोटेंशन— ,, ,, को वस्ति के अंदर फेरना।
४. एक्सटर्नल रोटेंशन—,, ,, ,, बाहर ,, ।
५. एक्सटेंशन— ,, ,, का तनाव।

डीसेंट (सिर का नीचे उतराव)—जब सिर वस्ति के निचले भाग में होता है, तब गर्भाशय के संकुचित होने से 'बाई पैरापटल व्यास' (द्विपार्श्विक) एक अथवा दूसरे तिरछे व्यास में रहता है। इस समय यह समझ रखना चाहिए कि शिशु पहली स्थिति (वाम-शिरोपृष्ठ-सम्मुख स्थिति) में है। इस स्थिति में अपना सिर 'बाई पैरापटल' व्यास वाम-तिर्यक् व्यास में रखता है, और पश्चादस्थि वाम 'पेकटीनीयल' टेकड़ी की ओर होती है।

फलैक्शन—इसके द्वारा शिशु की चिवुक छाती पर झुकी रहती है। इसके निम्न-लिखित कारण हैं—

१. सिर को नीचे की ओर आते हुए बाधा मिलना।

बड़ा व्यास वस्ति के सबसे बड़े व्यास में प्रविष्ट हो जाय। यह हमको ज्ञात ही है कि वस्ति की ग्रीम में सबसे बड़े व्यास दिगंत-सम और तिर्यक् व्यास (५ और ४½ इंच क्रम से) हैं, जो अग्रिम-पश्चिम व्यास से (४") लंबे हैं। एवं वस्ति के वहिर्द्वार में अग्रिम-पश्चिम व्यास (५") ही सबसे लंबा है। अतः जब शिशु का सिर वस्ति की ग्रीम (तीर) में प्रविष्ट हुआ हो, तब उसका सबसे लंबा व्यास (सब ओक्सी पिटो ब्रेग मेटिक ३⅞") वस्ति के दिगंतसम या तिर्यक् व्यास में प्रविष्ट होना चाहिए। परंतु जब वस्ति में बाहर निकलता हो, तो सबसे लंबा व्यास वस्ति के अग्रिम-पश्चिम व्यास में आना चाहिए। इसी प्रकार जब शिशु निकलता हो, तो उसके स्कंधों की चौड़ाई के सबसे बड़े व्यास (वीसएक्रोमीयल) को वस्ति के दिगंत या तिर्यक् व्यास में आना चाहिए, और वस्ति से बाहर आते हुए अग्रिम-पश्चिम व्यास में आना चाहिए। जिस क्रिया के द्वारा शिशु वस्ति में एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व में जाता है, उसको 'रोटेशन' अर्थात् फिरना कहते हैं। आगे चलकर ज्ञात होगा कि यह फिरना अंतः और बाह्य भेद से दो प्रकार का है।

इसके उपरांत जिस गुहा से शिशु को बाहर जाना है, उसकी गोलाई सामने की ओर है। और इस गोलाई में से फिरकर बाहर आने के लिये सिर को अपनी मध्य रेखा (जो शीर्षोदय में 'ओक्सी-पिटो सैंटल' व्यास है) गोलाई के मध्य भाग में रखना चाहिए। इस प्रकार वस्ति की किनारी में से निकलनेवाले बच्चे के सिर का भाग पुच्छास्थि की ओर झुकता जाता है। एवं सिर के स्थान में परिवर्तन होने से छाती के ऊपर झुकी हुई चिबुक अब पीछे की ओर खिंच जाती है। सिर की इस स्थिति को 'एक्सटेनशन' कहते हैं।

जिस क्रिया के द्वारा सिर वस्ति में उतरता है, उसे 'डिसेंट' कहते हैं।

शीर्षोदय में प्रथम मुख छाती पर झुका होता है, उसे 'फलैक्शन' कहते हैं, जिससे वस्ति के तीर में सिर का सबसे छोटा व्यास प्रविष्ट हो जाता है। इसके पीछे शिशु का सिर वस्ति में घूमता है, जिसे 'इंटर्नल रोटेशन' कहते हैं। इससे सिर का सबसे लंबा व्यास गर्भाशय-गुहा के सबसे लंबे व्यास में प्रविष्ट हो जाता है। और चिवुक छाती से पृथक् हो जाती है, जिससे अब सिर का सबसे लंबा व्यास वस्ति-बहिर्द्वार के सबसे लंबे व्यास में आ जाता है। और जब 'बीसएक्रोमीयल' व्यास आता है, तब उसे वस्ति के सबसे बड़े व्यास में प्रविष्ट करने के लिये सिर वस्ति के बाहर फिरता है। उसे 'एक्सटर्नल रोटेशन' कहते हैं। प्रसव-प्रक्रिया के निम्न-लिखित पाँच भाग हैं—

१. डीसेंट— शिशु के सिर का नीचे आना।
२. फलैक्शन— ,, ,, का छाती पर झुकना।
३. इंटर्नल रोटेशन— ,, ,, को वस्ति के अंदर फेरना।
४. एक्सटर्नल रोटेशन—,, ,, ,, बाहर ,, ।
५. एक्सटेंशन— ,, ,, का तनाव।

डीसेंट (सिर का नीचे उतराव)—जब सिर वस्ति के निचले भाग में होता है, तब गर्भाशय के संकुचित होने से 'बाई पैरापटल व्यास' (द्विपार्श्विक) एक अथवा दूसरे तिरछे व्यास में रहता है। इस समय यह समझ रखना चाहिए कि शिशु पहली स्थिति (वाम-शिरोपृष्ठ-सम्मुख स्थिति) में है। इस स्थिति में अपना सिर 'बाई पैरापटल' व्यास वाम-तिर्यक् व्यास में रखता है, और पश्चादस्थि वाम 'पेकटीनीयल' टेकड़ी की ओर होती है।

फलैक्शन—इसके द्वारा शिशु की चिवुक छाती पर झुकी रहती है। इसके निम्न-लिखित कारण हैं—

१. सिर को नीचे की ओर आते हुए बाधा मिलना।

२. सिर का आकार—जिससे पश्चादस्थि की अपेक्षा ललाट पर पड़ता है। जिससे एक लंबे व्यास के बदले एक छोटा व्यास वस्ति में प्रविष्ट होता है।

इंटर्नल रोटेशन—जब चिबुक छाती पर लगी होती है, तब पश्चिम-विवर सबसे नीचे रहता है। और 'सब ऑक्सीपिटो ब्रेग-मेटिक व्यास' वस्ति तीर के दक्षिण-तिर्यक् व्यास में रहकर नीचे आता है। और अंत में वस्ति की भूमि पर आ जाता है, जहाँ से अंदर की ओर फिरता है। सिर ग्रीवा पर घूमता है, और पश्चादस्थि जो वाम-पार्श्व में थी, अब विटप-संधि के पीछे आ जाती है, जिससे 'सब ऑक्सीपिटो ब्रेगमेटिक' व्यास वस्ति के अग्रिम-पश्चिम व्यास में आ जाता है। इसके फिरने के दो कारण हैं—

१. वस्ति की दीवार का आकार—हमको ज्ञात है कि 'ईस्कीयम' की दो सपाटी हैं। एक का आगे को ढलाव है और दूसरी का पीछे को। अगले ढलाव पर आई चीज़ आगे ढलती और पिछली पर आई चीज़ पीछे ढल जाती है। जब 'ऑक्सीपिट' आगे और वाम-पार्श्व में होता है, तब वह आगे सरक जाता है, और शिशु का कपाल दक्षिण-पार्श्व में पीछे की ओर होने से पीछे फिर जाता है।

२. विटप-संधि की महराब के नीचे खुली जगह है, और उसके आस-पास संकुचित स्थान है। इसलिये 'ऑक्सीपिट' सबसे अधिक खुली जगह में घूम जाता है।

एक्सटेंशन—छाती पर से चिबुक छुटने पर जब अंदर का घुमाव पूर्ण हो जाता है, तब सिर का 'सब ऑक्सीपिटो ब्रेगमेटिक' व्यास वस्ति के बहिर्द्वार के अग्रिम-पश्चिम व्यास में आ जाता है, और 'ऑक्सीपिट' विटप-संधि की महराब के नीचे आ जाती है। यहाँ पर शिशु के माथे को एक भिन्न प्रकार से फिरना पड़ता है, जिसे 'एक्सटेंशन' कहते हैं। शिशु की 'ऑक्सीपिट' विटप-संधि की

चित्र ६—अवतरण के भिन्न-भिन्न रूप (पृष्ठ १२६)
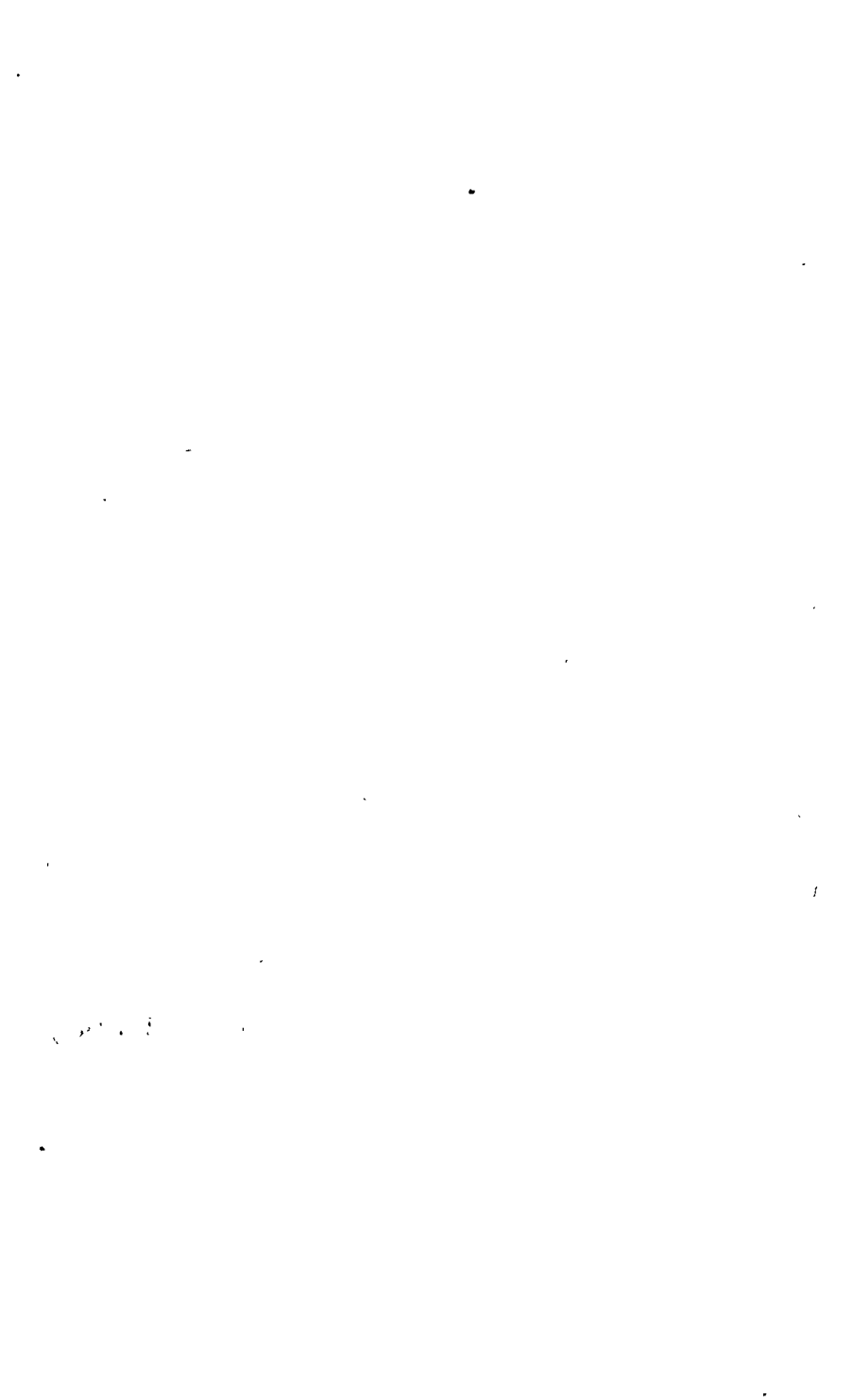
महराब के नीचे स्थिर हो जाती है। इसके पीछे सिर इस प्रकार फिरता है, जिससे चिबुक छाती से छुट जाती और शिशु का चेहरा भग-गुदांतर स्थान पर आ जाता है। छाती से शिशु की चिबुक के पृथक् होने का कारण यह है कि उसे आगे निकलने के लिये खुला स्थान मिल जाता है, एवं पार्श्वों में बाधा होने से वह पार्श्वों में फिर नहीं सकता। आगे निकलने के कारण छाती से छुटना स्वाभाविक है। और जब सीवन से चिबुक निकलती है, तब सिर का जन्म होता है।

एक्सटर्नल रोटेशन—यह सिर के घूमने की अंतिम अवस्था है। इसकी दो अवस्थाएँ हैं—प्रथम को 'रेस्टीट्युशन' कहते हैं, और दूसरी को 'प्रॉपर एक्सटर्नल रोटेशन' कहते हैं। 'इंटर्नल रोटेशन' द्वारा जब शिशु का सिर घूमता है, तब शिशु का स्कंध और छाती नहीं घूमती, केवल सिर ग्रीवा के ऊपर घूमता है। और जब सिर पर दबाव रुककर वह जन्मता है, तब ग्रीवा, जो सिर के साथ संयुक्त है, छुटती है। इसको 'रेस्टीट्युशन' कहते हैं। सिर का बाहर घूमना स्कंधों के घुमाने में कारण है। जब सिर वस्ति में घूमता है, तब स्कंध वस्ति की तीर में, जिस तिर्यक् व्यास में सिर प्रविष्ट हुआ होता है, उसी के समानांतर बाज़ू के तिर्यक् व्यास में प्रविष्ट हो जाता है। प्रथम जिस अवस्था में सिर होता है, उसी वाम-तिर्यक् व्यास में स्कंध आ जाते हैं। और जब स्कंध नीचे उतरते हैं, तब अग्रिम स्कंध पिछले कंधे से थोड़ा नीचे होने से अगली ओर फिरता है, जिससे स्कंध अग्रिम-पश्चिम व्यास में आ जाता है। जब ऐसा हो जाता है, तब सिर जो बाहर निकला होता है, वह वाम ओर घूम जाता है, जिससे शिशु का चेहरा दक्षिण ओर घूम जाता है। इस प्रकार सिर के घूमने को 'बाह्य घुमाव' कहते हैं। वास्तव में इस प्रकार फिरने से सिर जिस बाज़ू

में पहले होता है, उसी ओर अब फिर आ जाता है। प्रविष्ट होने की अवस्था में वह वाम-पार्श्व में होता है, उसी ओर अब भी आ जाता है। और दक्षिण-स्थिति (राइट ऑक्सीपिटोएंटीरियर) में प्रथम होने से अब भी दक्षिण-पार्श्व में ही दिखाई देगा।

जब अगला स्कंध घूमकर आगे आता है, तब विटप-संधि की महराव के नीचे स्थिर हो जाता है, और पीछे का स्कंध सीवन (भग-गुदांतर स्थान) के ऊपर से खिसक आता और बाहर हो जाता है। तब छाती के ऊपर पड़े हाथ बाहर आ जाते हैं, और शरीर का अन्य भाग जन्मे हुए भाग से छोटा होने के कारण विना किसी बाधा के बाहर आ जाता है।

द्वितीय स्थिति में अपना सिर 'सब ऑक्सीपिटो ब्रेगमेटिक' व्यास वाम-तिर्यक् व्यास में और 'बाई पैराइटल' व्यास दक्षिण-तिर्यक् व्यास में रखकर प्रविष्ट होता है। और 'ऑक्सीपिटल' दक्षिण 'पेकटेनीयल' टेकड़ी पर जाती है। प्रथम की भाँति प्रक्रिया होती है। स्कंध दक्षिण-तिर्यक् व्यास में प्रविष्ट होते हैं, और वाम स्कंध के आगे घूमने के कारण 'ऑक्सीपिट' बाह्य घुमाव के समय माता की दक्षिण जंघा की तरफ़ आती है।

तृतीय अवस्था में द्वितीयावस्था से केवल इतना ही भेद है कि जब सिर वस्ति में प्रविष्ट होता है, तो उसका 'बाई पैराइटल' व्यास वाम-तिर्यक् व्यास में और 'ऑक्सीपिट' दक्षिण 'सैक्रो इलीयक' संधि पर होती है। और जब अंतः घुमाव होता है, तो संपूर्ण सिर का $\frac{3}{8}$ भाग ही घूमता है (इसको लाँग इंटर्नल रोटेशन फ़ोरवर्ड कहते हैं), जिससे 'ऑक्सीपिट' जो दक्षिण 'सैक्रो इलीयक' संधि पर थी, अब विटप-संधि के नीचे आ जाती है। इस प्रकार 'ऑक्सीपिट' के दक्षिण-तिर्यक् व्यास का पिछला भाग आगे आ जाता है, और नहीं तो वाम-तिर्यक् व्यास के भाग का अगला भाग और आगे आ जाता है।

इस प्रकार 'औक्सीपिट' जो पीछे होता है, आगे होकर बाहर आ जाता है। इसको 'औक्सीपिटो एंटीरयर रीढ्युस्ट' कहते हैं।

चतुर्थ स्थिति में प्रथम स्थिति की भाँति शिशु वस्ति में घूमता है। परंतु अंतर इतना है कि सिर अपने 'बाई पैरांयटल' व्यास को वस्ति के दक्षिण-तिर्यक् व्यास में रखकर प्रविष्ट होता है। और 'औक्सी-पिटो' वाम 'सैक्रो इलीयक' संधि की ओर रहती है। जब अंतः घुमाव होता है, तो संपूर्ण सिर का $\frac{3}{8}$ भाग ही घूमता है, जिससे 'औक्सीपिट' विटप-संधि के नीचे आ जाता है। इसमें 'औक्सीपिट' वाम-तिर्यक् व्यास के पिछले भाग से आगे आ जाता है। इस प्रकार के बाहर आने को 'औक्सीपिटो पोस्टीरयर रीढ्युस्ट' कहते हैं।

असाधारण रीति से फिरना—कई बार शिशु का सिर वस्ति अथवा शिशु के शरीर की स्थिति असाधारण होने के कारण उपर्युक्त रीति के अनुसार फिरता नहीं है। इसकी अवस्थाएँ चार हैं, जिनमें से निम्न-लिखित अवस्था सबसे अधिक होती है—

'परसिस्टैंट औक्सीपिटो पोस्टीरयर' अथवा 'औक्सीपिटो पोस्टीरयर अनरीड्युस्ट'—इसमें पश्चादस्थि आगे रहकर बाहर आने के स्थान में पीछे (पोस्टीरयर) रहकर बाहर आती है। इसका कारण यह होता है कि शिशु का सिर छाती पर झुका नहीं होता, जिसके कारण वस्ति में नीचे औक्सीपिट आने के स्थान में 'कपाल' आ जाता है। और जो भाग वस्ति की भूमि को स्पर्श करता है, वही घूमकर शिशु को विटप-संधि के नीचे लाता है। इससे कपाल विटप-संधि के नीचे आ जाता है। और 'पश्चादस्थि' घूम-कर (पीछे की ओर) पीछे की अस्थियों के खड्डे में चली जाती है। इसको 'इंटर्नल रोटेशन बैकवर्ड्स' कहते हैं। कपाल विटप-संधि के नीचे रहने के कारण आगे की ओर घूमता नहीं है। परंतु कपाल

और 'पश्चादस्थि' भग-गुदांतर स्थान के दबाव के कारण बाहर आ
जाते हैं। इस अवस्था को फ्लैक्शन कहते हैं। फिर ललाट पृथक्
हो जाता और कपाल बाहर आ जाता है। इसको 'एक्सटैनशन' कहते
हैं। इसके पीछे 'रैस्टीट्युशन' और 'एक्सटर्नल रोटेंशन' होता है।
'औक्सीपिटो पोस्टीरयर अनरीड्युस्ट' में शिशु निम्न-लिखित
प्रकार से बाहर आता है—

(१) इनकंपलीट फ्लैक्शन—असंपूर्ण झुकाव—अपूर्ण झुका
हुआ सिर।

(२) इंटर्नल रोटेंशन बैकवर्ड्स—सिर का वस्ति में पीछे की
ओर घूमना।

(३) फ्लैक्शन—सिर का झुकना।

(४) एक्सटेंशन—सिर का छाती से अलग होना।

(५) रैस्टीट्युशन।

(६) एक्सटर्नल रोटेंशन—सिर का बाहर घूमना।

इस प्रकार शिशु के बाहर आने में प्रसूति लंबी हो जाती और
सीवन के ऊपर कई बार अधिक दबाव आने से वह खिंचकर फट
जाती है। हमने ऊपर लिखा है कि यदि सिर छाती पर पूरा न झुका
हो, तो यह अवस्था (औक्सीपिटो पोस्टीरयर अनरीड्युस्ट) होती
है। सिर के न झुकने के दो कारण हैं—

१—औक्सीपिटो एंटीरयर (शिरः पश्चाद् सम्मुख) स्थिति में
शिशु का पृष्ठ-वंश माता के पृष्ठ-वंश के सामने रहता है, जिससे
सिर वस्ति में उचित रूप से प्रविष्ट हो सकता और झुक सकता है।
परंतु शिरःपश्चाद् (औक्सीपिटो पोस्टीरयर) स्थिति में रहने से शिशु
का पृष्ठ-वंश माता के पृष्ठ-वंश के बराबर रहता है। अतः उचित
रूप से न तो नीचे उतर सकता और न झुक ही सकता है।

२—जब पश्चादस्थि आगे होती है, तब शिशु के सिर का लंबा

व्यास (सब ऑक्सीपिटो ब्रेगमेटिक) वस्ति के एकपार्श्वीय तिर्यक् व्यास में आता है, और सिर का तिर्यक् व्यास (बाई पैरायटल) सामने के तिर्यक् व्यास में प्रविष्ट होता है। परंतु जब 'पश्चादस्थि' पीछे रहती है, तब सामने के तिर्यक् व्यास से ज़रा पीछे रह जाता है, जहाँ उसके लिये पूर्ण स्थान नहीं है, और जब सिर नीचे उतरता है, तो उसका 'बाई पैरायटल' व्यास पकड़ा जाता है। इससे सिर बराबर नीचे न उतरने के कारण छाती पर झुकता भी नहीं है।

लैटरल ऑब्लीक्ट वीटी ऑफ़् दी हैड (सिर का एक पार्श्व में तिरछा रहना)—साधारणतः सिर की दोनो पार्श्वास्थियाँ एक ही समान, एक ही समय वस्ति में प्रविष्ट होती हैं। परंतु कई बार सिर के एक कंधे की ओर झुके होने के कारण एक पार्श्वास्थि दूसरी पार्श्वास्थि की अपेक्षा नीचे उतर आती है। यदि सिर पीछे के स्कंध की ओर झुका हो, तो 'सेजीटल' (सहायक) स्यूति साधारण अवस्था की अपेक्षा पीछे की अस्थियों की टेकड़ी की ओर अधिक होती और पार्श्वास्थि नीचे उतर आती है। यह अवस्था 'संकुचित वस्ति' में होती है। और इस स्थिति को 'एंटीरियर पैरापटल प्रेजन-टेशन' (अग्र पार्श्वास्थि उदयन) कहते हैं।

यदि सिर आगे के स्कंध की ओर झुका हो, तो सहायक स्यूति साधा-रण अवस्था की अपेक्षा विटप-संधि के अधिक समीप होता है। और पार्श्वास्थि, जो पीछे की अस्थि की ट्यु बरीसिटी के नीचे है, अधिक निचाई में रहता है। यह भी प्रायः संकुचित वस्ति में ही होता है। इसको 'पोस्टीरियर पैरायटल प्रेजनटेशन' (पश्चाद् पार्श्वास्थि-उदयन) कहते हैं। इसी को 'रिवर्स नीगलीस ऑब्लीक विटी' कहते हैं।

इनसफीशेंट फ्लैक्शन ऑफ़् दी हैड (सिर का अपूर्ण झुकाव)—सिर जब वस्ति तीर में होता है, तब यदि सिर न झुका हो, तो कपाल के स्थान में पूर्व विवर नीचे रहता है, अतः इसको

'एंटीरियर फ्रौंटेनेलिस प्रेजनटेशन' (सम्मुख पूर्व विवर-उदयन) कहते हैं। यह अवस्था संकुचित वस्ति में होती है, जिसमें अग्रिम-पश्चिम व्यास साधारण अवस्था से छोटा होता है। यदि सिर झुका हो, तो सुगमता से बाहर आ जाती है।

(५) एक्सेसिव फलैक्शन ऑफ़ दी हैड (सिर का अत्यंत झुकाव)— जब सिर बहुत अधिक झुका हो, तो कपाल के स्थान में पश्चाद् विवर नीचे होता है। अतः इसको 'पोस्टीरियर फ्रौंटेनेलिस प्रेजनटेशन' कहते हैं। यह अवस्था प्रायः संकुचित वस्ति में होती है, जिसमें वस्ति के तीर का व्यास साधारण की अपेक्षा छोटा होता है। अथवा जब शिशु का सिर असाधारण रूप से बड़ा हो, तब भी हो जाता है। जब प्रसव-वेदनाएँ तीव्र हों, और सिर आगे न आ सके, तब अधिक झुक जाता है, और पश्चादस्थि नीचे आ जाती है।

मोल्डिंग (सिर को घुमाना)—कपाल (शिरोदय) दर्शन में 'औक्सीपिटो फ्रंटल' 'सब औक्सीपिटो ब्रेगमेटिक' और 'वाई पैरायटल' व्यास छोटे होते हैं, और 'मैक्सीमम वर्टिक मेंटल' व्यास बड़ा होता है।

कैपिट सैसीडेनटम—प्रारंभ में यह 'कोरोनल' स्यूति के समीप होता है। यदि शिशु प्रथमावस्था में हो, तो दक्षिण, एवं द्वितीय स्थिति में हो, तो वाम-पार्श्वास्थि पर होता है। जब सिर नीचे उतरता है, तब 'कैपिट' सहायक स्यूति के ऊपर-पीछे उतर जाता और अंत में पश्चिम विवर के ऊपर या समीप पहुँच जाता है।

चिकित्सा—

(१) या तो यह अपने आप अच्छा हो जाता है।

(२) धीरे-धीरे हाथ से दबाव देना चाहिए।

(३) बहुत हल्का टिंचर आयोडीन लगावे।

तेरहवाँ प्रकरण

साधारण प्रसूति की व्यवस्था

ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबंधे सशूलेषु श्रोणीवंक्षणवस्तिशिरःसु च प्रवाहेथाः शनैः शनैः। ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढम्। ततो गर्भे योनिमुखे प्रपन्ने गाढतरमाविशल्या भावात्।

आवी प्रादुर्भावे भूमौ शयनं विदध्यात्। मृद्वास्तरणोपपन्नम्। तां ताः समन्ततः परिवार्य स्त्रियः पर्युपासीन्नाश्वासयन्त्यो वाग्भिः ग्राहिणीभिः सान्त्वनाभिः।

(चरक)

अकालप्रवाहणं बधिरं मूकं व्यस्तहनं मूर्द्धाभिघातिनं कुब्जं विकटं वा जनयति।

(सुश्रुत)

गर्भावस्था के अंतिम दिनों में जननी को सदा गरम पानी से स्नान करवाना चाहिए। मलबंध न हो, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। जब प्रसव के प्रारंभ होने की निशानियाँ दिखाई दें, तो एकाध विरेचन दे देना चाहिए। विरेचन के लिये एरंड-तैल एक से दो औंस (विलायती) या विलायती नमक (चार ड्राम) अथवा 'कासकरा सैगरेडा' का प्रवाही अर्क (दो ड्राम) देना चाहिए। और थोड़े समय पूर्व वस्ति देनी चाहिए, और प्रसव के आरंभ होने पर दूसरी पिचकारी दे देनी चाहिए।

धात्री को जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो, उनकी सूची बनाकर जननी को या उसके कुटुंबियों को दे देनी चाहिए। नीचे साधारण वस्तुओं का निर्देश किया जाता है।

माता के व्यवहार में आनेवाली वस्तुएँ—

१—दो 'लैदर क्लौथ' के टुकड़े।

२—चार पट्टियाँ—जिनकी लंबाई १$\frac{1}{4}$ गज़ और चौड़ाई १८ इंच हो।

३—छ सैनेटरी रावल्स—स्वच्छ विलायती रुई की गद्दियाँ, इनको 'स्टरलाइज़्ड' करना चाहिए।

४—$\frac{1}{2}$ दर्जन सैफ़्टीपिंस।

५—एक बटे हुए डोरे की आँटी।

६—विलायती रुई दो पौंड।

शिशु के व्यवहार में लाने योग्य वस्तुएँ—

१—एक सफ़ेद अथवा गरम चौरस कपड़ा, जिसमें जन्मते समय शिशु को ले सकें।

२—थोड़े कपड़े के टुकड़े—शिशु की आँख, मुँह साफ़ करने के लिये।

३—एंटी सैप्टिक रुई।

४—वैजलीन या लैनोलीन।

५—डस्टिंग पाउडर (प्रतिसारण चूर्ण), जिसमें बोरिक एसिड स्टार्च समान भाग मिला हो।

६—एक साबुन (पियर्स सोप)।

७—'वरनीक्स कैजी ओश्मा' को साफ़ करने के लिये वस्तु।

८—शिशु के शरीर के लिये आवश्यक वस्त्र (ऊन का वस्त्र उत्तम है)।

जननी का बिस्तर स्वच्छ और नरम होना चाहिए। बिस्तर ढीला और बहुत नरम उत्तम नहीं।

सूतिका-गृह में निम्न-लिखित वस्तुएँ रखनी चाहिए—

(१) एक अँगीठी—यदि ऋतु गरम हो, तो इसकी आवश्यकता नहीं है। शरद्-ऋतु में अवश्य रखनी चाहिए। अँगीठी ऐसी होनी चाहिए, जिस पर पानी गरम हो सके।

(२) एक बड़ा पात्र—जो अंदर-बाहर से ख़ूब साफ़ हो, जिसमें २० गैलन पानी आ सके।

(३) पानी का पात्र रखने के लिये एक स्टूल, जो जननी के पलंग से दो फ़ीट ऊँचा रह सके।

(४) अन्य दो पात्र—एक शीत पानी के लिये और दूसरा गरम पानी के लिये।

(५) तीन से चार चिलमची।

(६) उबलता और ठंडा पानी बड़ी मात्रा में रखना।

(७) 'फ़िडिंग कप'—जननी को दवा पिलाने के लिये।

(८) छोटे बच्चे को नहलाने के लिये छोटा टब या पात्र।

(९) भूमि पर रखने के लिये वस्तु।

(१०) यदि गुदवस्ति (साईफन डूश) न हो, तो शीशे का चार से छ पाइंट का डूश रुई के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर तैयार रखना चाहिए, और नाल बाँधने के डोरे को 'मर्करी लोशन' या 'लाईजोल लोशन' में भिगोकर रख देना चाहिए, जिससे व्यवहार में लाने योग्य स्वच्छ हो जाय।

प्रसव के पीछे एक स्वच्छ रुई की गद्दी (जो जंतु-नाशक दवा में रक्खी हो) निचोड़कर योनि-मार्ग के बहिर्मुख पर रख देनी चाहिए। उसके ऊपर प्रसूति के पीछे का स्राव एकत्रित हो जाता है।

धात्री के बॉक्स (थैले) में रहने योग्य सामान—

कौरोजिव सब्लीमेंट टैबलायरस—यह मर्करी लोशन के लिये उत्तम है।

लाईजोल, साईलीन या क्रीओलीन।

कार्बोलिक अथवा एंटीसैप्टिक साबुन।

नखकूर्चिका—नख साफ़ करने के लिये।

एक चाँदी का कैथेटर—पेशाब कराने के लिये और एक रबर का कैथेटर।

गुदा में वस्ति देने के लिये 'हीगीन संस सीरींज'।

अरगट का प्रवाही अर्क (लिक्वीट एक्सट्रेक्ट ऑफ़् अरगट)।

साईफन डूश—अथवा डूश और रबर की नली।

पुरुष के मूत्र निकालने की नं० ३ की नली कैथेटर—शिशु के गले में से श्लेष्मा चूसने के लिये।

एक छोटी शीशी में ब्रांडी, ह्विस्की या 'स्प्रिट एमोनिया एरोमेटीक'।

एक महीन वस्त्र—'एप्रेन'।

एक छोटा हथियार तथा डोरा आदि उबालने के लिये पात्र 'स्टरलाईजर'।

प्रसूति की अवस्थाएँ

प्रसूति की तीनो अवस्थाओं की भिन्न-भिन्न विधि हैं। यथा—

प्रथमावस्था—जब प्रथमावस्था आरंभ होती है, तो ग्रीवा का मुख खुल जाता है, और यह आवरण-कलाओं के फटने तक रहती है। इसके अंदर मुख्य बात यह है कि गर्भाशय संकुचित होता और गर्भ को ग्रीवा में ढकेलता है, जिससे वह खुलती है। इस समय निम्न-लिखित तीन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए—

१. जननी के ज़ोर को सहायता देते जाना चाहिए।

२. जननी के प्राकृतिक प्रयत्न को सहायता देना।

३. प्रकृति के चलते हुए काम में हस्तक्षेप न करना, और न उसे छेड़ना।

प्रथम के विषय में थोड़ा ही कहना है। जो भोजन सुगमता से पच जाय, वह देना चाहिए। भारी भोजन नहीं देना चाहिए।

प्रसूति के प्रारंभ में जौ दे दें। दर्द आरंभ हो, तो जननी को धैर्य से उसको सहना चाहिए।

द्वितीय के विषय में यही है कि प्रकृति के काम में सहायता करें, जिससे गर्भ गर्भाशय के मुख पर दबाव डाले, और नीचे उतरे, जिसके परिणाम में गर्भाशय संकुचित हो। इसके लिये ऐसा करना चाहिए, जिससे गर्भ का भार नीचे पड़े।

इसके लिये जननी को या तो चलना-फिरना चाहिए, अथवा कुर्सी पर बैठ जाना चाहिए *। उसको लेटने नहीं देना चाहिए। यदि पेट ढीला हो, तो इसका अर्थ यह है कि गर्भाशय पार्श्व में गिरा हुआ है, जिससे दबाव नीचे की ओर नहीं होता, अपितु किनारी की ओर होता है। ऐसी अवस्था में पेट पर पट्टी बाँधकर सुधार कर सकते हैं। इसके पश्चात् जिस ओर गर्भ का सिर हो, उस ओर सुला देना चाहिए, जिससे गर्भाशय ठीक स्थान पर आ जाता है। यदि पीठ ढीली हो, तो जननी को पीठ के बल लेटा देना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि यदि मार्ग में कहीं बाधा हो, तो उसे हटा दिया जाय। इसके लिये मूत्राशय और गुदा को खूब साफ़ रखना चाहिए। मूत्राशय को साफ़ करने के लिये प्रसूति से पूर्व थोड़े-थोड़े काल में जननी को प्रवाहण करने के लिये कहना चाहिए, और यदि मूत्र प्रवाहण न हो, तो कैथेटर द्वारा मूत्र निकाल देना चाहिए। यह कैथेटर 'गम एलास्टीक रबर' का होना चाहिए। धातु का कैथेटर (मूत्राशय की नली के ठंडा होने से) इसमें हानिकारक होता है, एवं गुदा को साफ़ करने के लिये प्रसूति की प्रथमावस्था में वस्ति देने से पूर्व मृदु विरेचन दे देना चाहिए, और प्रसूति की द्वितीयावस्था में द्वितीय बार वस्ति दे देनी चाहिए। अन्यथा दबाव से मल बाहर आता है।

---

* उत्तिष्ठ मूसलमन्यतरत गृह्णागेष्वऽनेन (चरक)

प्रसूति की प्रथमावस्था में विशेष बल-प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। जब गर्भाशय का मुख खुल जाता है, तो स्वयं बल-प्रयोग आरंभ हो जाता है। अकाल में बल-प्रयोग करने से गर्भ के अतिरिक्त संपूर्ण गर्भाशय नीचे उतरता है*। इससे ग्रीवा पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। दर्दों की सख्तता का पता लगाना आवश्यक है।

प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना—(१) बिना आवश्यकता के योनि-परीक्षा न करनी चाहिए। (२) ग्रीवा के खोलने का स्वयं प्रयत्न नहीं करना चाहिए। (३) बिना आवश्यकता के पिचकारी नहीं देनी चाहिए।

द्वितीयावस्था—यह अवस्था ग्रीवा के मुख खुलने से गर्भ के बाहर आने तक है। ग्रीवा के मुख के खुलने के कारण और गर्भाशय के निरंतर संकोच होने से आवरण-कलाएँ फट जाती हैं।

जब शिशु का सिर बाहर आ रहा हो, तो उसके निकलने में सहायता करनी चाहिए। जननी को वाम-पार्श्व पर लपेटकर उसके पाँव को पलंग के पायँते पर सहायता देने के लिये अँगौछा और सिर की ओर एक अन्य कपड़ा बाँध देना चाहिए, जिसको पकड़कर जननी बल-प्रयोग कर सके।

जिस समय शिशु का सिर बाहर आ रहा हो, उस समय सीवन को दबा रखना चाहिए, जिससे सीवन पर विशेष दबाव न आवे, और सिर इस प्रकार निकले, जिससे सबसे छोटा व्यास सीवन पर आवे।

---

* तन्नित्याह भगवानात्रेयः। दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्याः सततमुपदिश्यते। विशेषतश्च प्रजननकाले। प्रचलितसर्वधातुदोषायाः सुकुमार्या नार्या मूषलव्यायाम समीरितो वायुरन्तरं लब्ध्वा प्राणान् हिंस्याद् प्रस्यूतिकांर तमा च तस्मिन् काले विशेषेण भवति गर्भिणी। तस्मात् मूषलग्रहणं परिहार्य ऋषयो मन्यन्ते। (चरक)

जननी को वाम-पार्श्व या पीठ के बल लेटाना चाहिए। अपने देश तथा इँगलैंड में वाम-पार्श्व में लेटाते हैं। इस प्रकार लेटाने से सीवन पर विशेष दबाव नहीं आता। सिर जन्मते हुए दाहने हाथ से मल-द्वार और पुच्छास्थि के बीच में दवाव रखना चाहिए। इससे सिर बाहर आवेगा, और बाएँ हाथ की उँगलियाँ उसे बाहर खींचेंगी। इससे सीवन पर दबाव नहीं आवेगा।

सीवन की रक्षा के लिये दो बातें आवश्यक हैं—

(१) सिर को सहसा खींचना नहीं चाहिए। पश्चादस्थि का सबसे निचला भाग जब तक विटप-संधि के नीचे आवे, तब तक सिर का खिंचाव रोकना चाहिए। इसके लिये चेहरा और कपाल पर दबाव रखना चाहिए।

(२) जिस समय वेदना न हो, उस समय सिर को बाहर आने देना चाहिए। इसके लिये जब सिर बाहर आ रहा हो, तो जननी को बल-प्रयोग करने से रोकना चाहिए; परंतु रोना, चिल्लाना कर सकती है, और पायँत का अँगौछा, जिस पर पैर टिके हों, निकाल लेना चाहिए।

जब माथा या सिर बाहर आ जाय, तब यह देखना चाहिए कि ग्रीवा के चारो ओर नाल तो नहीं लिपटी हुई है। यदि लिपटी हो, तो उसे ऊपर की ओर निकाल देना आवश्यक है। यदि नाल कसी हो, और सिर के ऊपर से न निकल सकती हो, तो पहले खींचकर एक कंधे पर से, फिर दूसरे कंधे पर से निकाल देना चाहिए। यदि नाल बहुत तंग हो, और किसी प्रकार न उतर सकती हो, तो उसको काटकर दोनो छोरों को 'फौरसिप्स' से पकड़ लेना और शिशु को शीघ्र जन्म देने का प्रयत्न करना चाहिए।

जब धात्री इस प्रकार नाल से मुक्त कर चुके, तब आँख को परक्लोराईड लोशन $\frac{1}{5000}$ या बोरिकलोशन से धोकर कास्टिक

लोशन $\frac{1}{2}\%$ की एक-एक बूँद दोनो आँखों में डाल देनी चाहिए। यदि योनि-मार्ग में से आता हुआ कोई पदार्थ आँख में गया हो, तो वह आँख को हानि नहीं कर सकता।

जब तक नाल में स्पंदन हो, तब तक शेष भाग को प्रकृति पर ही छोड़ देना चाहिए। यदि बंद हो गया हो, तो शीघ्र प्रसव का यत्न करना चाहिए। इसके लिये सिर पर विशेष खिंचाव नहीं करना चाहिए। गर्भाशय के ऊपर दबाव देना चाहिए, और जब स्कंध बाहर आ जाय, तब शिशु को माता के पेट की ओर मोड़ना चाहिए, जिससे दूसरा कंधा सीवन पर आ जायगा। फिर शरीर को नीचे लाने से ऊपर का कंधा विटप-संधि से नीचे आ जायगा। एक-बार कंधा बाहर आने से शेष भाग भी छोटा होने से शीघ्र स्वयं बाहर आ जाता है।

'औक्सीपिटो पोस्टीरियर अनरीड्यूस्ट' में पश्चादस्थि जिस ओर हो, उसी ओर जननी को सुलाना चाहिए। इस स्थिति में प्रसव के समय बहुत देरी लगती है, अतः ऐसा यत्न करना चाहिए, जिससे कम समय लगे।

यदि सिर एक पार्श्व में ढलता हो, तो वस्ति संकुचित होती है। ऐसी अवस्था में प्रसूति के चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

साधारणतः जब शिशु उत्पन्न होता है, तो रोता है। यदि वह न रोवे, तो उसको हल्के-हल्के थप्पड़ लगाने चाहिए। उँगली पर नरम कोमल कपड़ा लपेटकर श्लेष्मा को साफ़ कर देना चाहिए। यदि श्वास-प्रणाली में श्लेष्मा रुकी हो, तो नं० २ के रबर-कैथेटर से चूस लेना चाहिए। और फिर ठंडे पानी के छींटे देने से शिशु रोने लगता है। अंत में नाल बाँधकर शिशु को पृथक् कर लेना चाहिए।

नाल में स्पंदन बंद होने पर उसे बाँधना चाहिए। कारण, प्रथम बाँधने से शिशु को पूर्ण रक्त नहीं मिलता, और वह निर्बल रह जाता

है। नाल में दो गाँठें देनी चाहिए। पहली गाँठ शिशु की नाभि से दो इंच की दूरी पर और दूसरी योनि-मार्ग के आगे बाँधनी चाहिए। ये गाँठें 'सरजिकल' मौढ होती हैं, जिससे सरक नहीं सकतीं। दूसरी गाँठ बाँधने से पूर्व नाल को थोड़ा खींच लेना चाहिए, जिससे यदि कोई बल हो, तो वह हट जायगा, तब प्रथम गाँठ से एक इंच की दूरी पर से काट देना चाहिए। काटते समय शिशु को आघात न हो जाय, अतः नाल को बाएँ हाथ पर उठाकर दाहने हाथ में क्रैंची पकड़कर काट देना चाहिए *।

तृतीयावस्था—इस अवस्था में कमल और रक्त का चक्का बाहर आ जाता है। जिस समय शिशु उत्पन्न हो जाय, उस समय जननी को पीठ के बल लेटाकर गर्भाशय को अपने संपूर्ण हाथ के नीचे करना चाहिए। इससे यह पता हो जाता है कि गर्भाशय संकुचित हो रहा है या नहीं? और यदि संकुचन बंद हो जाय, तो गर्भाशय के दबे रहने से रक्त-स्राव नहीं होता।

जब शिशु का जन्म हो जाता है, तब गर्भाशय संकुचित होता है। जिस जगह कमल लगा होता है, वह स्थान छोटा और पतला हो जाता है। कमल बहुत बड़ा होता है, और उस छोटी जगह पर लगा नहीं रह सकता, अतः छुटकर गिर पड़ता है, और गर्भाशय से अलग हो जाता है, और गर्भाशय के आकुंचनों के कारण योनि-मार्ग में आ जाता है। वहाँ थोड़ी देर रहकर फिर बाहर आ जाता है।

---

* नाभिबन्धनात् प्रभृति अष्टांगुलमभिज्ञानं कृत्वा छेदनावकाशस्य द्वयोरन्तरयोः शनैर्गृहीत्वा तीक्ष्णे राजतायसानां छेदनानामन्यतमेनार्धधारेण छेदयेत्ताम्। अग्रे सूत्रेणोपनिबध्य कण्ठेऽस्य शिथिलमवसृजयेत्।

असम्यक् कल्पने हि नाड्या आयामव्यायामोऽण्डिका पिण्डोलिका विनामिका विजृम्भिका बाधेभ्यो भयम्।

(चरक)

कमल छुटकर गर्भाशय से योनि-मार्ग में आता है, और वहाँ से बाहर होता है। कमल को पृथक् करने को कई विधियाँ हैं, परंतु उनमें निम्न-लिखित बातें मुख्य हैं—

(१) जननी का स्वयं प्रयत्न—इसमें पर्याप्त समय लगता है। इसको सरल करने के लिये द्वितीयावस्था में सहायता करनी चाहिए। प्रथमावस्था में कमल गर्भाशय से पृथक् नहीं होता।

(२) 'डबलीन' की विधि—इससे तृतीयावस्था बहुत छोटी हो जाती है। परंतु कई बार इसमें रक्त-स्राव हो जाता है, जिसका कारण मांस-तंतुओं का अपूर्ण संकोच है, एवं कई बार कमल का कुछ भाग अंदर रह भी सकता है। परंतु जब कमल योनि-मार्ग में आ गया हो, और द्वितीयावस्था हो, तो यह विधि सबसे उत्तम है।

(३) गर्भाशय में हाथ प्रवेश करके कमल का निकालना—इस विधि में संक्रमण का भय रहता है।

(४) नाल खींचकर बाहर निकालना—यह सबसे हानि-कारक रीति है। नाल कमल के बीच में लगी होती है, उसके खींचने से कमल बीच में से छुट जाता है। इसमें यदि गर्भाशय पूर्ण संकुचित न हो, तो कमल का पृष्ठवर्ति चक्का नहीं बनता और बहुत रक्त-स्राव होता है। यदि कमल दृढ़ता से गर्भाशय से संयुक्त हो, तो 'इनवर्सन ऑफ़् यूट्रस' हो जाता है।

कमल के पृथक् होने की निशानियाँ—

(१) नाल की लंबाई बढ़ जाती है। योनि-मार्ग के पास बँधी गाँठ से नाल में बढ़ती स्पष्ट हो जाती है।

(२) जब गर्भाशय संकुचित होता है, तो नाल में संकुचन या हिलाव नहीं होता।

(३) गर्भाशय का शिखर नाभि तक आ जाता है।

(४) गर्भाशय एक पार्श्व से दूसरी ओर हिलाया जा सकता है।

(५) पेट की दीवार विटप-संधि के आगे सरक आती है ।

गर्भाशय के शिखर को अपने एक या दोनो हाथों से पकड़कर नीचे और पीछे की ओर दबाना चाहिए। इस प्रकार गर्भाशय नीचे होकर योनि-मार्ग में आ जाता है और कमल बाहर। कारण, योनि-मार्ग में दबाव बढ़ जाता है। कमल जब आ रहा हो, तो धात्री को चाहिए कि वह उसे हाथ में सँभाले। कहीं भार के कारण शेष सिरा गर्भाशय से टूटकर गिर न जाय।

अथवा चक्का निकालने के लिये कमल को पकड़कर गोल चक्कर देने चाहिए, अथवा लटकते हुए पर्दों को क्रमशः हाथ की एक-एक उँगली पर सहारा देते जाना चाहिए।

तृतीयावस्था के प्रबंध का संक्षेप यह है—

(१) शिशु के जन्म के पीछे जननी को पीठ के बल लेटाकर गर्भाशय को अपने हाथों में क़ाबू रखना।

(२) जब तक रक्त-स्राव अधिक न जाय, तब तक गर्भाशय पर दबाव रखना।

(३) जब नाल में स्पंदन बंद हो जाय, तब नाल को बाँधकर शिशु को पृथक् करना।

(४) मूत्राशय भरा हो, तो उसे ख़ाली करना।

(५) जब तक कमल बाहर न आवे, तब तक ध्यान रखना। जिस प्रकार कमल बाहर निकले, उसी प्रकार निकालना।

(६) कमल संपूर्ण है या नहीं, इसकी परीक्षा करना।

(७) यदि अंदर कुछ भाग रह जाय, तब प्रसूति के चिकित्सक को बुलाना चाहिए, और यदि योनि-मार्ग में कमल हो, तो हाथ साफ़ करके बाहर कर देना चाहिए।

कमल के बाहर आने पर सब गुप्त अंगों को साफ़ कर देना चाहिए। बिगड़े वस्त्र बदल देने चाहिए। जननी को धोने के लिये हल्का लाई-

जोल का घोल बर्तना चाहिए । जननी को धोते समय धात्री को देखना चाहिए कि कहीं सीवन में कोई विकार तो नहीं हुआ है। बहुत-सा धात्रियाँ इसको जानकर छिपाती हैं, जो पीछे हानिकारक होता है । यदि कहीं सीवन में चीर आ गया हो, तो चिकित्सक को बुलाकर सिलवा देना चाहिए। धात्री को सच्ची धात्री का कर्तव्य पालन करना चाहिए । जब तक चिकित्सक आवे, जननी को शांत लेटाए रखकर सीवन को मल-मूत्र से साफ़ रखना चाहिए। जंघा मिला देने से सीवन की पीड़ा को आराम मिलता है ।

पश्चात् उदरावयवों को सहारा देने तथा गर्भाशय की रक्षा के लिये पेट पर छाती से लेकर नितंब तक पट्टी लपेट देना चाहिए, और उसको स्थिर करने के लिये ६-७ सैफ़्टीपिन लगा देने चाहिए ।

योनि-मार्ग पर 'मर्करी पर क्लोराईड' में भीगी गद्दी निचोड़कर रख देना चाहिए । अंत में एक घंटे पीछे फिर देखना चाहिए कि गर्भाशय संकुचित हो गया या नहीं।

'अरगट' का उपयोग—ठीक समय में यदि दी जाय, तो यह अत्यंत लाभकारक है, अन्यथा अत्यंत हानिकारक। इसके देने से गर्भाशय वेग से संकुचित होता है । जब गर्भाशय संकुचित हो रहा हो, ग्रीवा का मुख खुल गया हो, तथा आवरण-कला फट जायँ, तब से लेकर तृतीयावस्था तक नहीं देना चाहिए, परंतु यह देख लेना चाहिए कि द्वितीयावस्था में कहीं मार्ग में कोई बाधा न हो । उत्तम हो कि अरगट निम्न-लिखित अवस्थाओं में दिया जाय—

(१) जब गर्भाशय के शिखर में शिशु का सिर या नितंब हो।

(२) गर्भपात में अत्यंत रक्त जाता हो ।

(३) प्रथम प्रसव साधारणतया हुआ हो।

'अरगट' मुँह से देने पर १५ मिनट में गर्भाशय संकुचित होता

है। इंजेक्शन देने से तत्क्षण संकुचित होने लगता है। 'अरगट' के निम्न-लिखित प्रयोग बरते जाते हैं—

(१) अरगट का प्रवाही अर्क (लिक्विड एक्सट्रेक्ट ऑफ़् अरगट) ½ से १ ड्राम। (२) अरगट का चूर्ण १५ से २० ग्रेन। (३) एक्सट्रैक्ट अरगट-अरागोटीन २ से ५ ग्रेन। (४) इंजेक्शन ऑफ़् अरगट १० से १५ बूँद ❀।

❀ "गर्भसंगे तु योनिं धूपयेत कृष्णसर्पनिर्मोकेण पिण्डतीं कने वा बध्नीयाद् हिरण्यपुष्पी मूलं हस्तपादयोः धारयेत् सुवर्चलां विशल्या वा।"

"तत्र भूर्जपत्र शिशा धूपं वा, ततः विल्य चव्य चूर्णं उपघ्रातुम्।"

"मातुलुंग मधुकोत्थचूर्णं मधुघृतान्वितम्;
पीत्वा सूते सुखं नारी शीघ्रमेव न संशयः।"

"गृहधूमं समादाय पिबेत्पर्युसिताम्भसा।" (अनंगरंग)

चौदहवाँ प्रकरण

फ़ेस प्रेजनटेशन

"ततः स कीलः प्रतिखुरो बीजकः परिघ इति । तत्र ऊर्ध्व बाहू शिरः पादो यो योनिमुखं निरुणाद्धि कील इव स कीलः । निस्सृतहस्तपाद शिराः कायसंगी प्रतिखुरः । यो निर्गच्छत्येकः शिरो भुजः स बीजकः । यस्तु परिघ इव योनिमुखमावृत्य तिष्ठत् स परिघः ।" (सुश्रुत)

चेहरे का दर्शन—इसमें जन्म के समय चेहरा नीचे होता है। जब बच्चे का सिर पूर्ण रूप से पीछे की ओर खिंच जाता है, जिससे 'औक्सीपट' पृष्ठ-वंश के साथ लग जाती है, और चेहरा सबसे नीचे रह जाता है। १६६ केसों में यह एक बार होता है।

कारण—इसके लिये चेहरे के नीचे आने के निम्न-लिखित कारण हैं—

(१) जिस किसी कारण से सिर झुक नहीं सके—यथा शिशु की ग्रीवा पर 'निकंठकंठ-ग्रंथि' का दबाव और 'हाइड्रो थोरैक्स' शिशु की छाती में भरा पानी।

(२) 'औक्सीपट' को वस्ति में उतरने में कठिनता—यथा गर्भाशय का एक ओर को गिरा रहना।

(३) संकुचित वस्ति।

(४) वस्ति के तीर पर के रोग।

(५) 'डोलीको कैफेलिक हैड'—पीछे से बड़ा लंबा सिर।

(६) छोटी गर्भ-नाल।

स्थितियाँ चार हैं—
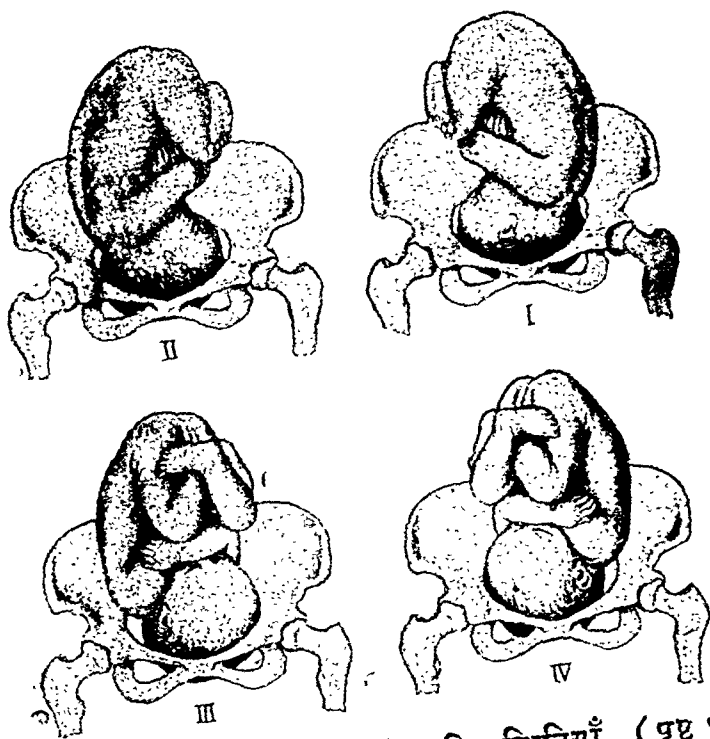
चित्र ८—चेहरे की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ (पृष्ठ १४७)

चित्र ११—चिह्नित स्थानों पर भिन्न-भिन्न स्थितियों का शब्द उदर के ऊपर सुना जा सकता है। (पृष्ठ १४७)

प्रथम स्थिति—'राइट मेंटो पोस्टीरयर' चिबुक दक्षिण पार्श्व में और पीछे।

द्वितीय स्थिति—'लैफ़्ट मेंटो पोस्टीरयर' चिबुक वाम पार्श्व में और पीछे

तृतीय स्थिति—'राइट मेंटो एंटीरयर' चिबुक दक्षिण पार्श्व में तथा आगे की ओर

चतुर्थ स्थिति—'लैफ़्ट मेंटो एंटीरयर' चिबुक वाम पार्श्व में तथा आगे की ओर

इनमें प्रथम स्थिति ही बहुतायत से होती है।

परीक्षा की विधि—पेट के ऊपर से परीक्षा। यदि पीठ आगे हो, और शिशु प्रथम या दूसरी अवस्था में हो, तो पीठ की प्रतीति कठिनता से होती है। कारण, गर्भ गर्भाशय की दीवार के साथ नहीं लग सकता। यदि पीठ पीछे हो, तो शिशु तीसरी या चौथी अवस्था में होता है, और हाथ-पाँव सुगमता से पहचाने जा सकते हैं। 'पैलविक ग्रीव' में जब चेहरा वस्ति-गह्वर तीर में हो, तो एक विशेष आकार के कारण चिबुक पहचान ली जाती है। इसके सामने ही वस्ति के अंदर एक बड़ा गोला दिखाई देता है, जो पीठ के गर्त से पृथक् होता है। इसको 'ऑक्सीपिट' कहते हैं। यह 'ऑक्सीपिट' गर्भाशय में चिबुक से ऊँचा रहता है।

योनि-मार्ग से परीक्षा—प्रसूति के प्रारंभ होने पर यह भाग मुश्किल से नीचे आ जाता है, और थोड़ी देर वस्ति में अटका रहता है। यदि आवरण-कलाएँ न फटी हों, तो इसका आकार जुराब की भाँति लगता है। परंतु जब गर्भ नीचे आता है, तो उदित भाग की परीक्षा कठिन होती है। प्रसूति के लंबे होने से सिर पर 'कैपिट सैसीडेनियम' हो जाता है। और सिर नितंब मालूम होने लगता है। चेहरे में आँख की किनारी, अक्षास्थि, अक्षिगोलक, गाल की हड्डी और मुँह होता है। मुँह का गुदा से भेद करना चाहिए।

मुँह में उँगली डालने से मसूड़े और जीभ दिखाई देती है। गुदा में उँगली डालने पर उँगली पकड़ी जाती और मल लग जाता है। चेहरे की परीक्षा विशेष सावधानी से करनी चाहिए। आँख को चोट से बचाना चाहिए। मुँह में उँगली डालने से शिशु श्वास ले लेता है, अतः गर्भ-जल और श्लेष्मा से श्वास-प्रणाली रुक सकती है। यदि शिशु का निचला भाग प्रतीत न हो, तो उस भाग और वस्ति के बीच में एक उँगली रखनी चाहिए। यदि चेहरा होगा, तो कान के ऊपर जायँगे।

स्टैथस्कोप (द्विनाली-यंत्र) से परीक्षा—शिरोदय की अपेक्षा इस दर्शन में हृच्छब्द ऊँचा सुनाई देता है। और यदि चिबुक आगे हो, तो जहाँ हाथ-पाँव होते हैं, वहाँ हृच्छब्द सुनाई देता है।

प्रसूति की प्रक्रिया—चेहरे का वस्ति में घूमना।

चेहरे का लंबा व्यास 'सरवाईको ब्रेगमेटिक' जो ३$\frac{3}{4}$ है, वह वस्ति के एक तिर्यक् व्यास में रहता है। और तिरछा व्यास 'वाय पैरायटल' जो ३$\frac{3}{4}$ इंच है, वह सामने के तिर्यक् व्यास में रहता है। 'सरवाईको ब्रेगमेटिक' और 'सबऔक्सीपिटो ब्रेगमेटिक' की लंबाई प्रायः एक है। परंतु सरवाईको ब्रेगमेटिक दबाव से छोटा नहीं हो सकता।

(१—२) डोसेंट और एक्सटेंशन—चेहरा वस्ति में तिरछे व्यास 'सरवाईको ब्रेगमेटिक' व्यास से नीचे उतरता है। और नीचे उतरते समय सिर पीछे खिच जाता है। और अंत में 'औक्सीपट' शिशु की पीठ से लग जाता है।

(३) इंटर्नल रोटेनशन—वस्ति की सपाटी में चेहरा जब तक नहीं आ जाता, तब तक नीचे उतरता है। और चिबुक जो सबसे नीचे है, आगे की ओर घूम जाता है। शिरोदय की अपेक्षा इसमें अधिक देर लगती है।

(४) फलैक्शन—जब चिबुक विटप-संधि के नीचे आती है,

तो जो सिर खींचा होता है, वह उसके आस-पास घूमकर बाहर आ जाता है।

प्रथम मुँह और नाक, पीछे आँख, कपाल और अंत में औक्सीपिट बाहर आता है।

(५) एक्सटर्नल-रोटेनशन—जिस प्रकार शिरोदय में बाहर घुमाव होता है, वैसे ही चेहरे में। इसके भी दो भाग हैं। एक रैस्टीट्यु शन और दूसरा ठीक तरह से घूमना, जिससे जिस ओर प्रथम चिबुक होती है, उधर ही अब भी आ जाती है।

असाधारण रीति से शिशु का घूमना—कई बार सिर के पूर्ण खिंचाव न होने से चिबुक अस्थि के गड्ढे में पीछे घूमती है। इसमें शिशु के जीवन की कम आशा होती है। यदि वस्ति बड़ी हो, और शिशु छोटा हो, तो शिशु प्रकृत रूप में बाहर आ जाता है।

मोल्डिंग—चेहरे के दर्शन में 'सरवाईको ब्रेगमेटिक' 'सब औक्सीपिटो ब्रेगमेटिक' 'सुप्रा औक्सीपिटो मैंटल' और 'वाई पैरायटल' व्यास छोटे हो जाते हैं। और 'औक्सीपिटो फ्रैंटल' और 'औक्सीपिटो मैंटल' व्यास बड़े हो जाते हैं। चेहरे पर 'सैसिडेनम' होने से चेहरा बेडौल हो जाता है।

उपाय तीन हैं—

(१) यदि संभव हो, तो इसको शीर्षोदय में बदल देना चाहिए।

(२) 'पोडेलीक वर्शन' करके शिशु को घुमाकर नितंब नीचे कर देना चाहिए।

(३) चेहरा उसी प्रकार रहने दें, और उसी अवस्था में उपाय करें।

धात्री को चाहिए कि सिर के देखते ही प्रसूति के चिकित्सक को बुलावे। यदि चिकित्सक न आवे, तो धात्री को साधारण प्रसूति का क्रम करना चाहिए। जब तक आवरण न फटें, तब तक पीठ के बल

लेटा देना चाहिए। जिस ओर चिबुक हो, उस ओर सुला देना चाहिए। जब सीवन के ऊपर चेहरा आ जाय, तब योनि-मार्ग से परीक्षा करके देखना चाहिए कि चिबुक फिरती है या नहीं ? यदि घूम सके, तो घुमा दें। यदि चिबुक पीछे फिर जाय, तो 'क्रेनी ओटोमी' करनी पड़ेगी।

प्रोगनोसिस (पूर्व कथन)—चेहरे के दर्शन में माता की मृत्यु अधिक होती है। और शिशु की मृत्यु का प्रमाण और भी अधिक होता है। १०० में १३ बच्चे मरते हैं।

भ्रू-उदयन

जब सिर न तो झुका हो और न पीछे खिंचा हो, तो ललाट-उदयन होता है। ललाट का अभिप्राय आँख की किनारी से लेकर पूर्व विवर तक है। यह ५०० में १ केस होता है। प्रायः उदयन या तो सिर का हो जाता है, या चेहरे का।

कारण—इसके भी वही कारण हैं, जो चेहरे के हैं।

स्थितियाँ—दो हैं—पहली स्थिति में पीठ दक्षिण पार्श्व में, और दूसरी में पीठ वाम पार्श्व में होती है।

परीक्षा-विधि—(१) पेट के ऊपर से शरीर के भागों का आपस में संबंध नहीं होता। पीठ गर्भाशय में साधारणावस्था की अपेक्षा गहरी रहती है। 'पैलविक ग्रीव' में सिर वस्ति की किनारी से बहुत ऊँचा रहता है। चिबुक और पश्चादस्थि दोनो समान ऊँचाई पर रहते हैं।

योनि-मार्ग से परीक्षा—सिर के वस्ति तीर में बहुत अधिक ऊँचा होने से प्रसूति में दर्शन कठिनता से प्रतीत होता है। आवरण-कलाएँ 'शंकु' के आकार में बाहर आती हैं। फिर जब सिर नीचे आता है, तब दर्शन स्पष्ट होता है, जिसमें वस्ति के एक पार्श्व में पूर्व विवर, ललाटास्थि तथा उसके बीच की स्यूति और

दूसरी ओर अक्षि-भ्रू की किनारी, अक्षि-गोलक और गाल की अस्थि दिखाई देती है। 'सिसेडैनम' ललाटास्थि पर होता है।

श्रवण-परीक्षा—हृच्छब्द मध्य रेखा के एक पार्श्व में, जिस ओर पीठ होती है, उत्तम रूप से सुनाई देता है।

प्रक्रिया—'सुपरा ऑक्सीपिटोमेंटल' जिसकी लंबाई ५½ इंच है, और 'बाई पैरायटल' (३¾") ये दोनो वस्ति तीर में प्रविष्ट होते हैं। प्रायः सिर वस्ति में प्रविष्ट नहीं होता। यदि हो, तो 'सुपरा ऑक्सीपिटोमेंटल' व्यास वस्ति के तिर्यक् व्यास में प्रविष्ट होता है। इससे चार रीतियाँ होनी संभव हैं—

(१) सिर छोटा हो, और वस्ति बड़ी हो, तो सिर माथे की अवस्था बिना ही बदले जन्म हो जाता है।

(२) ललाट के स्थान में चेहरे में परिवर्तन हो जाता है।

(३) ललाट के स्थान में सिर में परिवर्तन हो जाय।

(४) सिर वस्ति में फँस जाय।

यदि ललाट में बिना परिवर्तन के जन्म हो, तो अंतःघुमाव इस प्रकार होना चाहिए, जिसमें चेहरा आगे आवे, जबड़ा विटप-संधि के नीचे स्थिर हो जाय, और उसके आस-पास सिर घूमकर बाहर आ जाय।

मोल्डिंग-परिवर्तन—ललाटोदय में 'सबऑक्सीपिटोब्रेगमेटिक' 'सुपरा ऑक्सीपीटोमेंटल' और 'बाय पैरायटल' व्यास कम हो जाते हैं। 'ऑक्सीपिटो फ्रंटल', 'ऑक्सीपिटोमेंटल' और 'सब ऑक्सीपिटो फ्रंटल' व्यास बढ़ जाते हैं। 'सिसेडैनम' ललाट पर होता है, जो बहुत बड़ा होता है।

उपाय—तुरंत प्रसूति के चिकित्सक को बुलाना चाहिए। यदि चेहरे के उदयन में बदला जा सके, तो उत्तम है।

ललाट-दर्शन तीन प्रकार से बदल सकते हैं—

(१) एकदम झुकाकर—शिरोदय में हो जायगा।

(२) एकदम खींचकर—जिससे चेहरे का उदय हो जायगा ।

(३) वर्शन करके—जिससे पाँव नीचे आ जाय ।

यदि ललाटोदय प्रथम दो अवस्था में न बदला जा सके, तो प्रकृति पर ही छोड़ देना चाहिए । परंतु यदि प्रसूति लंबी हो जाय, तब तुरंत गर्भ को बाहर करना चाहिए ।

पूर्वकथन—माता और शिशु की मृत्यु प्रथम दोनो उदयनों की अपेक्षा इसमें अधिक होती है । कारण प्रसूति का लंबा होना है ।

पंद्रहवाँ प्रकरण

नितंबोदय

"स यदा विगुणानिलपीडितोऽपत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा संख्या दीयते । तत्र कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते । कश्चिदाभुग्नैक सक्थिरेकेन । कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः ।"

मृते चोत्तानया आभुग्नसक्थ्या वस्त्राधारकोन्नतमित कट्या धन्वन शाल्मली मृत्स्ना घृताभ्यां मुक्तायित्वा हस्तं योनौ प्रवेश्य गर्भमुपहरेत् । तत्र सक्थिभ्यामागतमनुलोममवाञ्छत् । एकसक्थिप्रपन्नस्यापरसक्थि प्रसार्यापहरेत् स्फिग्देशेनागतस्य स्फिग्देशं प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य सक्थिनी प्रसार्यापहरेत् ।

जब गर्भ का निचला भाग नीचे हो, तो इसको नितंबोदय कहते हैं। इसमें प्रायः शिशु मुड़ा होता है। अर्थात् जाँघ पेट पर और टाँग जाँघ पर मुड़ी होती है, जिससे एड़ी नितंब पर आ जाती है। इसको संपूर्ण 'नितंबोदय' कहते हैं। एक दूसरे प्रकार का असंपूर्ण नितंबोदय है, जिसमें—

(१) केवल नितंब नीचे हो, और उसके पार्श्व में एड़ी न हो। (२) एक घुटना नीचे हो। (३) एक पाँव नीचे हो। ८० केसों में १ केस नितंबोदय का होता है। एक से अधिक गर्भ-धारण करनेवाली स्त्रियों में २३ में से १ केस आता है। कारण, साधारणतः गर्भाशय ऊपर से बड़ा और नीचे छोटा होता है। अतः शीर्षोदय में गर्भ ठीक आ जाता है। परंतु यदि किसी कारण से शिशु का

आकार या गर्भाशय बदल जाय, तो असाधारण दर्शन मालूम होता है।

नितंबोदय के मुख्य निम्न-लिखित कारण हैं—

(१) बार-बार गर्भवती या प्रसूता होने से—इससे गर्भाशय की भित्तियाँ निर्बल हो जाती हैं।

(२) संकुचित वस्ति—सिर वस्ति में आ नहीं सकता।

(३) युगल-प्रसूति—इससे गर्भाशय का आकार बढ़ जाता है।

(४) हाइड्रो एम्नीयस—गर्भ-जल की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाय।

(५) प्लेसंटा प्रीविया—कमल प्रथम आ जाय। यह तब होता है, जब कमल गर्भाशय के निचले भाग में लगे।

(६) हाइड्रोकैफलिक हैड—सिर में पानी भर जाय, जिससे सिर नितंब से बड़ा हो जाता है।

(७) नियत समय से पूर्व प्रसव।

(८) गर्भाशय के रोग और उनके कारण परिवर्तन।

स्थितियाँ चार हैं—

प्रथम स्थिति—पीठ वाम पार्श्व और आगे। द्वितीय स्थिति—पीठ दक्षिण ओर और आगे; तृतीय स्थिति—पीठ दक्षिण ओर और पीछे। चतुर्थ स्थिति—पीठ वाम और पीछे।

प्रथम स्थिति को 'लैफ़्टसैक्रोइंटीरयर', द्वितीय को 'राईट सैक्रोइंटीरयर', तृतीय को 'राईट सैक्रोपोस्टीरयर' और चौथी को 'लैफ़्टसैक्रोपोस्टीरयर' कहते हैं। प्रथम स्थिति प्रायः साधारण होती है।

परीक्षा-विधि—पेट के ऊपर से परीक्षा—ऊपर से देखने पर गर्भाशय का आकार बदला प्रतीत होता है। यह नीचे से चौड़ा और ऊपर से संकुचित होता है। गर्भाशय के ऊपर स्थित सिर एक पार्श्व से दूसरी ओर हिल सकता है। इस हिलाव के साथ पीठ नहीं

हिलेगी। सिर और पीठ के मध्य में ग्रीवा का गर्त होता है, जिससे सिर का ज्ञान भले प्रकार हो सकता है। और निचला सिरा गोल, कठोर तथा सुगमता से हिल नहीं सकता। अथवा पीठ के विना नहीं हिलता। कई बार जंघा भी प्रतीत होती है।

योनि-मार्ग से परीक्षा—प्रसूति के आरंभ में नितंब को वस्ति में प्रवेश करने में समय लग जाता है। नितंबोदय की अवस्था में आवरण कलाएँ एक विचित्र प्रकार से लटकी होती हैं। नितंबोदय का सिर पर हुए 'सिसेडैनम' से भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। नितंब गुदा और तीन अस्थियों से पहचाना जा सकता है। गुदा का मुँह से मसूड़ों और जीभ के द्वारा भेद कर सकते हैं। गुदा में उँगली पकड़ी जाती है, और बू आती है। यदि कोई अवयव हो, तो कोहनी है या घुटना, हाथ है या पाँव, इसकी परीक्षा करनी चाहिए।

श्रवण-परीक्षा—हृच्छब्द माता की नाभि के बराबर उँचाई पर सुनाई देता है। जिस ओर पीठ होगी, उधर अच्छे प्रकार सुनाई देगा।

प्रक्रिया—नितंब का व्यास अत्यावश्यक नहीं। कारण, वह सिर के व्यास से छोटा है, एवं दबकर और भी छोटा हो सकता है। 'वाईट्रोकेंट्रक' व्यास सबसे लंबा (३॥ इंच) है। सैक्रोप्युबीक व्यास २ इंच है। नितंब वाईट्रोकेंट्रक व्यास को वस्ति के एक तिर्यक् व्यास में रखकर प्रविष्ट होता है, इसमें निम्न-लिखित परिवर्तन होते हैं—

(१) डिसेंट, (२) इंटर्नल रोटेनशन, (३) लैटरल फलैक्शन, (४) एक्सटर्नल रोटेनशन। प्रथम स्थिति में (लैफ्ट सैक्रो एंटीरियर) शिशु निम्न-लिखित प्रकार से नीचे आता है—

डीसेंट—जिस प्रकार और दर्शनों में नीचे आता है, उसी प्रकार इसमें भी।

इंटर्नल रोटेनशन—प्रथम स्थिति में अगला नितंब दक्षिण ओर होता है, और 'बीस इलीयक' व्यास वाम-तिर्यक् व्यास में होता है। अतः यह सीवन के मांस पर घूमकर विटप-संधि के नीचे आ जाता है, जिससे 'बीस इलीयक' व्यास वस्ति के अग्रिम-पश्चिम व्यास में आ जाता है।

लैटरल फलैकशन—जब नितंब सीवन पर आता है, तब वह आगे आने का प्रयत्न करता है। इससे गर्भाशय संकुचित होता है, और एक पार्श्व से दूसरी ओर हिलता और बाहर आ जाता है। यदि नितंब संपूर्ण हो, तो प्रथम नितंब बाहर आता है। अन्यथा दोनो नितंब साथ ही बाहर आते हैं।

एक्सटर्नल रोटेनशन—नितंब बाहर आने पर स्कंध वाम-तिर्यक् व्यास में आते हैं, जिससे नितंब जिस तिर्यक् व्यास में प्रथम थे, उसी ओर घूम जाते हैं। नितंब बाहर आने पर पाँव बाहर आते हैं। फिर पेट और अंत में स्कंध बाहर आते हैं।

सिर का जन्म—स्कंध निकलने पर सिर झुका हुआ वस्ति में प्रविष्ट होता है। इस 'सब ऑक्सीपिटो फ्रंटल' व्यास तिर्यक् और दिगंतसम व्यास के बीच में रहता है। और पश्चादस्थि वाम पार्श्व में और सामने रहती है। 'पश्चादस्थि' सबसे अगला भाग होता है, जो वस्ति की ज़मीन के दबाव के कारण दूर घूम जाता और विटप-संधि के नीचे रहता है। सिर झुका उत्पन्न होता है। प्रथम चिबुक, फिर मुँह, नाक, आँख, ललाट और अंत में पश्चादस्थि बाहर आती है।

जब 'सैक्रम' पीछे होती है, तब तीसरी और चौथी स्थिति के बीच में शिशु दो प्रकार बाहर आता है—

(१) बच्चे का स्कंध, जो दिगंतसम व्यास में नितंब के प्रविष्ट होने से सामने के दिगंतसम व्यास में आ जाता है, शिशु के बाहर

फिरने से जिस तरफ़ शिशु अंदर फिरता है, उसी ओर हो जाता है। कारण, माता की पीठ के साथ शिशु की पीठ नहीं रह सकती, इससे वह आगे घूम जाती है। इस प्रकार 'औक्सीपट' तिर्यक् व्यास के ज़रा अगले वस्ति में प्रविष्ट हो जाती है। अतः विटप-संधि के नीचे ख़ाली स्थान पर घूमती है।

(२) जो स्कंध जिस दिगंतसम व्यास में नितंब प्रविष्ट हुए हैं, उसी में प्रविष्ट हों, तो 'पश्चादस्थि' तिर्यक् व्यास के पीछे प्रविष्ट हो जाते हैं। यदि सिर भले प्रकार झुका हो, तो 'औक्सीपट' सिर का सबसे निचला भाग होने से वस्ति की भूमि के साथ घिसड़कर आगे फिर जाता है। इस प्रकार इस कुंडली के $\frac{3}{8}$ भाग में घूमना होता है, और फिर विटप-संधि के नीचे आ जाता है।

मोल्डिंग—'फ्रंटो औक्सी पिटल' और 'मेंटोऔक्सी पिटल' छोटे हो जाते हैं, जिससे 'सरवाईको ब्रेग्रमेटिक' और 'सबऔक्सीपिटो ब्रेग मेटिक' व्यास ज़रा बढ़ जाते हैं। 'सिसेडैनम' नितंब या शिशु के छिपे अंगों पर होता है। अंड ज़रा सूजे हुए आते हैं।

उपाय—यदि नितंब का दर्शन पहले ही हो, तो निम्न-लिखित दो विधियाँ हैं—

१. एक्सटर्नल वर्शन—बाहर से घुमाकर शिरोदयन कर दिया जाय।

२. उसको ऐसा ही रहने देकर नितंबोदय की भाँति उपाय करें।

यदि धृतानेकगर्भा में नितंबोदय हो, तो एक धात्री इस कार्य के लिये पर्याप्त है। परंतु यदि प्रथम प्रसव के समय ऐसा हो, तो प्रसूति के चिकित्सक को बुला लेना चाहिए।

जब तक आवरण-कलाएँ फटें नहीं, तब तक जल्दी न करें। प्रसूति की प्रथमावस्था में जननी को पीठ के बल लेटा दें, और आवरण-कला के न फटने तक बल-प्रयोग न करने दें। योनि-परीक्षा

यथासंभव कम करें। जब नितंब बाह्य मार्ग के ऊपर आ जाएँ, जननी को पीठ के बल लेटा दें। जब सीवन पर नितंब आ जाय, तब पाँव को बाहर खींच लेना चाहिए, जिससे वह मुड़ न सके। जब तक नाभि बाहर न आवे, तब तक जननी को प्रकृति पर छोड़ देना चाहिए। जब नाभि बाहर आ जाय, तब जननी को बिस्तर पर इस प्रकार लेटाना चाहिए, जिससे नितंब बिस्तर की किनारी पर रहे। फिर धीरे से नाल को नीचे खींचो।

नाल को नीचे खींचने के निम्न-लिखित कारण हैं—

१. जब शरीर नीचे उतरता है, तब नाल को वस्ति की किनारी के साथ दबाता है, अतः जब शरीर नीचे उतरता है, नाल नीचे नहीं उतरती, अतः खींच पड़ने के कारण नाल के टूटने की शंका है।

२. यदि नाल खींचने पर स्पंदन प्रतीत हो, तो शिशु की अवस्था का ज्ञान हो सकता है।

यदि नाल में स्पंदन हो, और गर्भाशय संकुचित हो रहा हो, तो प्रकृति पर ही छोड़ देना चाहिए। परंतु यदि स्पंदन मंद हो, या बंद हो जाय, तो शीघ्र ही प्रसव कराने का यत्न करना चाहिए। जब ऊपर से संकुचन आ रहे हों, तब हमको नीचे खींचना चाहिए, जिससे यदि कहीं हाथ फँसा हो, वह छुट जाय। यह उपाय बहुत संगत है। पाँव को बाहर नहीं खींचना चाहिए। यदि हाथ निकल सके, तो सिर से पहले निकाल लेना चाहिए।

जब बच्चा वस्ति के तिर्यक् व्यास में रहता है, तब एक हाथ पीछे, पुच्छास्थि के समीप, रहता है, और दूसरा विटप-संधि के समीप। पीछे का हाथ प्रथम नीचे लाना चाहिए। इसके लिये अपना दाहना हाथ डालकर इस हाथ को माता के पेट की ओर खींचना चाहिए। अपना हाथ शिशु की कोहनी तक डालना और हाथ को

पीठ की ओर फेर देना चाहिए। यदि हाथ मुड़ा हो, तो हथेली को छाती पर मोड़ देना चाहिए। या सिर पर से घुमाकर नीचे खींच लेना चाहिए।

अगले हाथ को भी इसी प्रकार बाहर निकाल लेना चाहिए। यदि इस प्रकार संभव न हो, तो शिशु को घुमाकर इस हाथ को भी पीछे लावें।

कई बार हाथ शिशु की गर्दन के पीछे होता है। इसको 'न्युकल पोज़ीशन' कहते हैं। इस अवस्था में संभव है कि बच्चे को घुमाते समय हाथ छुट जाय। यदि न छुटे, तो निकालने से पूर्व तोड़ना पड़ता है। हाथ को नीचे लाते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए। कहीं अस्थि भंग न हो जाय।

स्कंध आने पर केवल सिर का निकलना रह जाता है। कई बार गर्भाशय के संकुचनों के कारण निकल जाता है, और कई बार योनि-मार्ग में आकर अवरुद्ध हो जाता है। यदि संभव हो, तो सिर को योनि-मार्ग में एक क्षण भी नहीं रहने देना चाहिए। कारण—

१. शिशु के दिल को ठंढक लगने से वह श्वास लेने का प्रयत्न करता है, जिसमें श्लेष्मा और मल का फुप्फुस में चला जाना संभव है।

२. यदि नाल पर सिर का दबाव न आया हो, तो अब आ जाता है।

३. शिशु के गर्भाशय से बाहर आने पर कमल छुट जाता है, या छुटनेवाला होता है।

पीछे से आनेवाले सिर को निकालने की कई विधियाँ हैं, जिनमें से निम्न-लिखित तीन प्रायः उत्तम हैं—

१. 'प्रेग' की विधि—जब सिर वस्ति में हो, तो यह सबसे उत्तम, सरल, जल्दी की विधि है। परंतु सिर के वस्ति तीर में होने

से यह विधि बिल्कुल काम नहीं आती। जननी को वामपार्श्व से ऊँचा करके अपने बाएँ हाथ की उँगलियों को शिशु की गर्दन के ऊपर दोनो ओर रखकर और पाँव को दाहने हाथ से पकड़ना
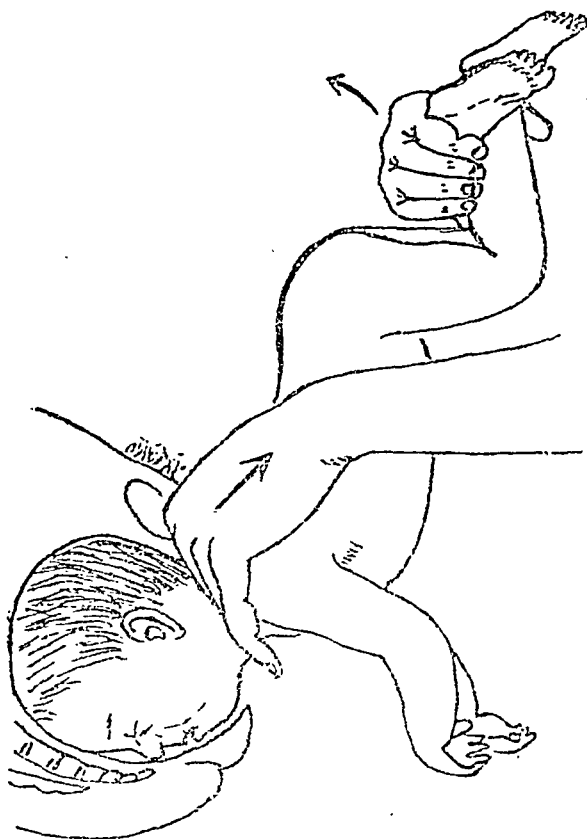
चित्र २०—'प्रेग' की विधि

चाहिए। प्रथम वाम से शिशु को स्कंध के ऊपर खींचें, और जब तक शिशु का सिर बाहर न आवे, तब तक इस प्रकार रक्खें। इससे विटप-संधि का 'औक्सीपट' पर दबाव पड़ेगा, और झुककर बाहर आ जायगा। फिर दाहने हाथ से शिशु के हृदय से माता का पेट ऊपर, आगे और पीछे मोड़ना, जिससे 'औक्सीपट' नो विटप-

संधि में फँसा हो, आस-पास घूमकर सीवन के ऊपर से बाहर आ जाय।

२. 'स्मेली-वीट' की विधि—जब शिशु का सिर वस्ति-तीर पर या वस्ति के अंदर हो, तब उपयोगी है। बायाँ हाथ आवश्यकतानुसार
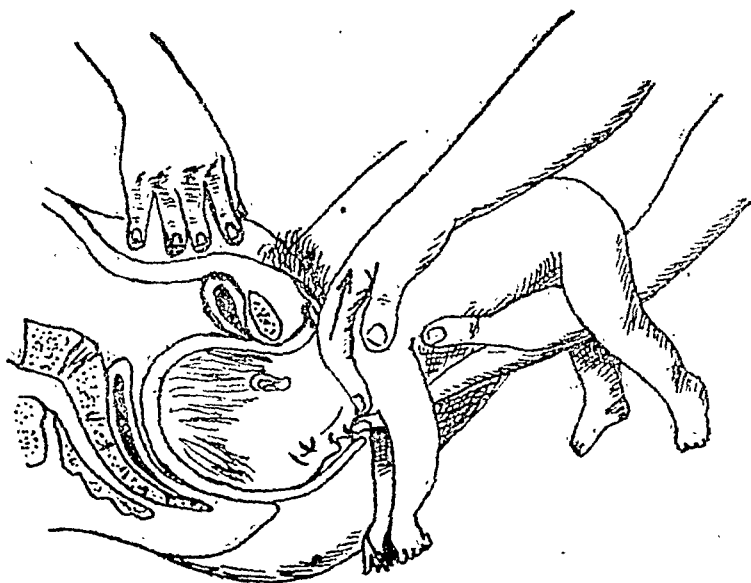
चित्र ३१—'स्मेली-वीट' की विधि

योनि-मार्ग में प्रवेश कराना और चेहरे के पीछे से मुँह तक लाना चाहिए। मुँह के अंदर जबड़े के दोनो ओर दो उँगलियाँ डालनी चाहिए। और जितनी अंदर जा सकें, उतनी अंदर जाने देना चाहिए, जिससे जबड़ा टूटे नहीं। अब मुँह में उँगली पहुँचे हुए सिर को वस्ति में इस प्रकार डालना चाहिए, जिससे उसका अग्रिम-पश्चिम व्यास वस्ति के तिर्यक् व्यास में रहे। इसके लिये उँगलियों से मुँह

को खींचकर सिर को झुकाए रखना चाहिए। सिर को फिर 'प्रेग' की रीति से कंधे पर खींचकर बाहर कर सकते हैं। उस समय अंदर के हाथ से भी खिंचाव करना चाहिए। जब सिर वस्ति के तीर पर हो, तब पहले पीछे और नीचे खींचना चाहिए, और पीछे से एकदम नीचे और अंत में ऊपर खींचना चाहिए।

यदि चेहरा आगे की ओर घूम जाय, तो सिर को निकालने की दो विधियाँ हैं—प्रथम विधि में यदि चेहरा त्रिटप-संधि के पीछे हो, तब उपयोगी है। इसमें जितना संभव हो, शिशु का शरीर पीछे की ओर खींचना चाहिए, जिससे चिबुक त्रिटप-संधि के नीचे से बाहर आ जाय। यदि चेहरा सुगमता से बाहर न आवे, तो मुँह में उँगली डालकर 'स्मेली' की विधि से बाहर करें। प्रथम ललाट आएगा और अंत में 'औक्सीपट'।

दूसरी विधि यह है कि शिशु के शरीर को माता के पेट पर ले जाओ, जिससे 'औक्सीपट' सीवन पर फिसल पड़ेगी। और अंत में चेहरा बाहर आएगा।

३. त्रिटप-संधि पर दबाव—जब सिर वस्ति-तीर से ऊपर हो, तो यह विधि उत्तम है। 'सुपरा प्युबीक प्रेसर' इसमें यथासंभव सिर को झुका रखना चाहिए। इसमें दो हानियाँ हैं—

१. सिर के खिंच जाने से प्रसूति कठिन हो जाती है।

२. यदि सिर इस रीति से बाहर न आवे, तो हाथ स्वच्छ करते हुए बहुत समय निकल जाता है।

नितंबोदय में शिशु की मृत्यु के कारण—

(१) प्रीमैच्युर इंस्पायरेशन (पूर्ण प्रसव होने से पूर्व श्वास लेना)—शिशु का सिर जब योनि में होता है, तो बाहर के अवयवों पर ठंडी वायु लगने के कारण श्वास-क्रिया चल पड़ती है, जिससे श्लेष्मा और मल फुफ्फुस में जाकर मृत्यु के कारण होते हैं।

यदि ½ इंच भी बाहर हो, तो ठंढी वायु लगकर यह क्रिया चला सकती है। अतः इसके लिये शिशु के जनित भाग को एकदम गरम फ़लालेन से ढाँप देना चाहिए।

(२) प्रीमैच्युर सैपरेशन ऑफ़् दी प्लेसंट (कमल का प्रथम छुट पड़ना)—नितंबोदय में प्रसव लंबा हो जाता है, अतः कमल शीघ्र छुट जाता है। इसके छुटने से शिशु को रक्त नहीं मिलता, अतः वह मर जाता है। इसके लिये गर्भाशय के संकोच के समय जब शिशु बाहर आ रहा हो, तो गर्भाशय के ऊपर हाथ रख देना चाहिए, जिससे उसे छोटा होते समय सहायता मिलती जाय, जिससे कमल जल्दी से छुटे नहीं।

(३) प्रेसर ऑन दी कॉर्ड (नाल पर दबाव)—सिर के बाहर आते समय नाल वस्ति और सिर के बीच में दब जाती है, जिससे शिशु को रक्त न मिलने से वह मर जाता है।

ऐसी अवस्था में जब शिशु नाभि तक बाहर आ जाय, तो नाल को धीरे से खींच लेना चाहिए। उसमें स्पंदन की परीक्षा करके उसे 'ईकयक' स्थान में छोड़ देना चाहिए। वहाँ पर्याप्त स्थान है।

प्रोगनी सिस—शिरोदय करने में माता की मृत्यु अधिक संख्या में होती है, एवं सीवन और योनि-मार्ग भी फट जाता है। कारण, कई बार शिशु का सिर शीघ्र बाहर निकालना होता है। ११ में १ मृत्यु शिशु की (अधिक संख्या में) होती है। आवरण-कलाओं के फटने में जितना अधिक समय लगता है, उतना ही शीघ्र ग्रीवा खुल जाती है, अतः सिर सुगमता से बाहर आ जाता है। परंतु नितंबोदय में ग्रीवा पूर्ण रूप से खुली नहीं होती। अतः मृत्यु-संख्या अधिक होती है।

सोलहवाँ प्रकरण

तिर्यक् उदयन

कश्चिदुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिध्ययावतिष्ठते। अन्तः पार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना, कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन; कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः कश्चिदेकेन सक्थना योनिमुखमभिप्रतिपद्यतेऽपरेण पायुम्।

तिर्यकागतस्य परिधस्यैव तिरश्चीनस्य पश्चादधमुत्क्षिप्य पूर्वादपत्यपथं प्रत्यार्जवमानीयापहरेत्। पार्श्वायवृत्तसमं संप्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य शिरोऽपत्यपथमानयेत्। बाहूद्वयप्रतिपन्नस्योर्ध्वमुत्पीड्यांसौ शिरानुलोममानीयापहरेत्।

एवमशक्ये शस्त्रमवचारयेत्। (सुश्रुत)

जब गर्भाशय में गर्भ इस प्रकार हो, जिससे गर्भ का न तो सिर नीचे हो और न नितंब। इस प्रकार के उदयन को तिर्यक् उदयन कहते हैं। यह १७८ प्रसूतियों में एक होता है। कारण, जिनसे गर्भाशय या वस्ति का साधारण आकार बदल जाता है, जिससे तिर्यक् दर्शन होता है। ये कारण दो प्रकार के हैं—एक माता से संबंधित और दूसरा शिशु से संबंधित।

माता से संबंधित

(१) संकुचित वस्ति।

(२) बड़ा और ढीला गर्भाशय।

(३) गर्भाशय में पानी की मात्रा अधिक हो।

(४) संयुक्त बच्चे (युगल)।

(५) कमल का नीचे लगना ।

(६) गर्भाशय के रोग—यथा गर्भाशय में अर्बुद ।

शिशु से संबंधित

(१) अधिक बड़े शरीर का शिशु ।

(२) एक अपूर्ण समय का या अति छोटा शिशु ।

(३) शिशु के शरीर पर कोई रोग ।

(४) संयुक्त शिशु (युगल) ।

स्थितियाँ चार हैं—

प्रथम स्थिति—'लैफ़्ट डॉर्सो एंटीरियर'—सिर वाम पार्श्व में और पीठ सामने ।

द्वितीय स्थिति—राइट डॉर्सो एंटीरियर—सिर दक्षिण पार्श्व में और पीठ सामने । } प्रायः पीठ सामने आती है ।

तृतीय स्थिति—राइट डॉर्सो पोस्टीरियर—सिर दक्षिण और पीठ पीछे ।

चतुर्थ स्थिति—लैफ़्ट डॉर्सो पोस्टीरियर—सिर वाम और पीठ पीछे ।

पहचान—पेट के ऊपर—यह बड़ी सुगमता से पता लग सकता है । गर्भाशय चौड़ा अधिक होता है । प्रसूति के प्रारंभ में वस्ति-तीर ख़ाली होता है । माता के पेट के एक पार्श्व में सिर होता है और दूसरी ओर नितंब । बीच में पीठ या शिशु के हाथ-पाँव होते हैं, जो सामने होते हैं ।

योनि-मार्ग से परीक्षा—प्रसूति के प्रारंभ का देर में पता लगता है । आवरण-कलाएँ विचित्र रूप में लटकती प्रतीत होती हैं । जब प्रसूति बढ़ जाती है, तब स्कंध और पसली ज्ञात होती है । हाथ नीचे योनि-मार्ग में मालूम होता है । इसको 'नैगलेक्टेड शोल्डर प्रेजन-टेशन' कहते हैं । प्रायः पीठ का भाग सबसे पीछे या हाथ-पाँव के साथ आता है ।

शिशु को वस्ति में घुमाना—ललाटोदय की भाँति शिशु को छोड़ना नहीं चाहिए। यदि शिशु बहुत छोटा हो, तो छोड़ा जा सकता है।

तिर्यक् उदयन में शिशु अपने आप निम्न-लिखित चार प्रकार से बाहर आ सकता है—

(१) स्पौंटनियस रैकटिफ़िकेशन—तिर्यक् उदयन में शिरोदय की भाँति बाहर आता है।

(२) स्पौंटेनियस वर्शन—संपूर्ण घूमकर नितंबोदय हो जाता है।

(३) स्पौंटेनियस एवोल्युशन—शिशु पूर्ण संकुचित होकर बाहर आ जाय।

(४) स्पौंटेनियस एक्सपलशन—शिशु का शरीर दोहरा होकर एक वेग से बाहर हो जाता है।

प्रथम प्रकार में ये बातें देखनी चाहिए—(१) शिशु जीता है या मर गया, (२) गर्भ-स्थान ज़ोर से संकुचित हो रहा या नहीं, (३) आवरण-कलाएँ फट गई हैं या नहीं। गर्भाशय के अनियमित संकोच के कारण प्रथम स्कंध निकलता है, फिर किसी भी प्रकार आकर सिर नीचे स्थिर हो जाता है।

द्वितीयावस्था में भी उपर्युक्त तीन बातों की परीक्षा करनी चाहिए। गर्भाशय के अनियमित संकोच के कारण प्रथम स्कंध बाहर आकर फिर नितंब उसकी जगह ले लेते हैं, फिर प्रसूति शीघ्र हो जाती है।

तृतीयावस्था—एक विचित्र विधि है। प्रथम शिशु का स्कंध वस्ति में नीचे आता है। जब तक योनि-मार्ग में हाथ नहीं आ जाता, तब तक नीचे आता है। फिर स्कंध विटप-संधि के नीचे स्थिर हो जाता है। पीठ दृढ़ता से दोहरी होकर सीवन पर से बाहर आ जाती है, फिर नितंब और पाँव बाहर आ जाते हैं, और सबसे अंत में सिर और ऊपर का हाथ आता है। १—इस क्रिया के लिये शिशु को बहुत
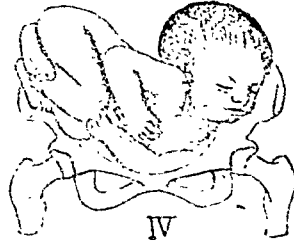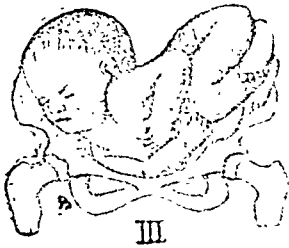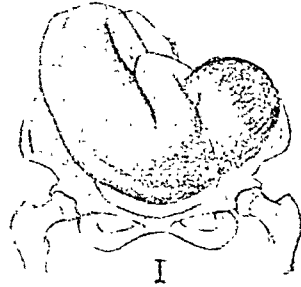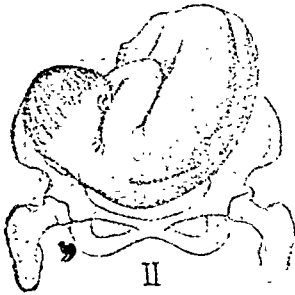
चित्र १२—तिर्यंगुदयन के भिन्न-भिन्न रूप (पृष्ठ १६६)

छोटा होना चाहिए । २—गर्भाशय को बराबर संकुचित होना चाहिए । ३—आवरण-कलाएँ फटी होनी चाहिए ।

चतुर्थावस्था—इसमें शिशु दोहरा होकर बाहर आता है । यह बहुत कम होता है । बहुत ही छोटे शिशुओं में ऐसा होता है । यदि स्कंध नीचे हों, तो वे वस्ति में बहुत नीचे चले जाते हैं । फिर सिर और हृदय बाहर आता है । सिर पेट में घुसा होता है । सिर छाती के साथ नीचे आता है । इसमें सारा शरीर दोहरा होकर बाहर आता है । इसमें निम्न-लिखित बातें आवश्यक हैं—(१) बच्चा छोटा और दोहरा होना चाहिए । (२) आवरण-कलाएँ फट जानी चाहिए । (३) गर्भाशय बराबर संकुचित होना चाहिए ।

उपाय—यथासंभव शीघ्र ही प्रसूति के चिकित्सक को बुलाना चाहिए । तब तक धात्री को इस प्रकार यत्न करना चाहिए—

(१) पोसचरल (चिकित्सा)—यदि शिशु थोड़ा तिरछा होता है, तो इस विधि से ठीक हो जाता है । यह तब तक संभव है, जब तक गर्भ का कोई भाग योनि-मार्ग में स्थिर न हो । जननी जिस पार्श्व पर लेटती है, गुरुत्वाकर्षण के नियम से गर्भाशय का ऊर्ध्वांश भी उधर ही होता है । उर्ध्वांश में शिशु का जो भाग होता है, वह भी उधर हो जाता है । इस प्रकार शिशु के दूसरे सिरे को सामने से ऊँचा कर सकते हैं । इस प्रकार यदि सिर दक्षिण 'इलायक' गुहा में हो, तो जननी के दक्षिण भाग में लेटने पर नितंब दक्षिण भाग में आ जायँगे, और सिर वाम पार्श्व में ।

(२) एक्सटर्नल वर्शन—इसके लिये धात्री को जननी के पार्श्व में बैठकर शिशु के नितंब और सिर की परीक्षा करनी चाहिए । तब एक हाथ से नितंबवाले भाग को गर्भाशय के शिखर की ओर और दूसरे हाथ से सिरवाले भाग को वस्ति की ओर घुमाना चाहिए । यदि इस विधि से सफलता मिल जाय, तो पेट पर पट्टी बाँध देनी

चाहिए, जिससे शिशु स्थिर रहे। यदि पेट में नितंब माथे की अपेक्षा नीचे हो, तो वस्ति में सुगमता से सिर को गर्भाशय के शिखर में घुमा सकते हैं।

(३) इंटर्नल अथवा 'वाई पोलर पोडलिक वर्शन—एक हाथ अंदर डालकर और दूसरे हाथ को बाहर रखकर बच्चे को घुमाना, जिससे नितंब नीचे आ जाय।

यदि आवरण-कलाएँ फटी न हों, तो धात्री को उनको फाड़ना नहीं चाहिए। अन्यथा प्रसूति बहुत लंबी हो जाती है। यदि सिर या नितंब बदल सके, तो आवरण-कलाओं को फाड़ देना चाहिए।

पूर्वकथन—शिशुओं की मृत्यु अधिक संख्या में होती है। ३३ प्रतिशत शिशु, जो प्रसूति के प्रारंभ में जीवित होते हैं, मरे हुए उत्पन्न होते हैं। माता की मृत्यु ५½% होती है।
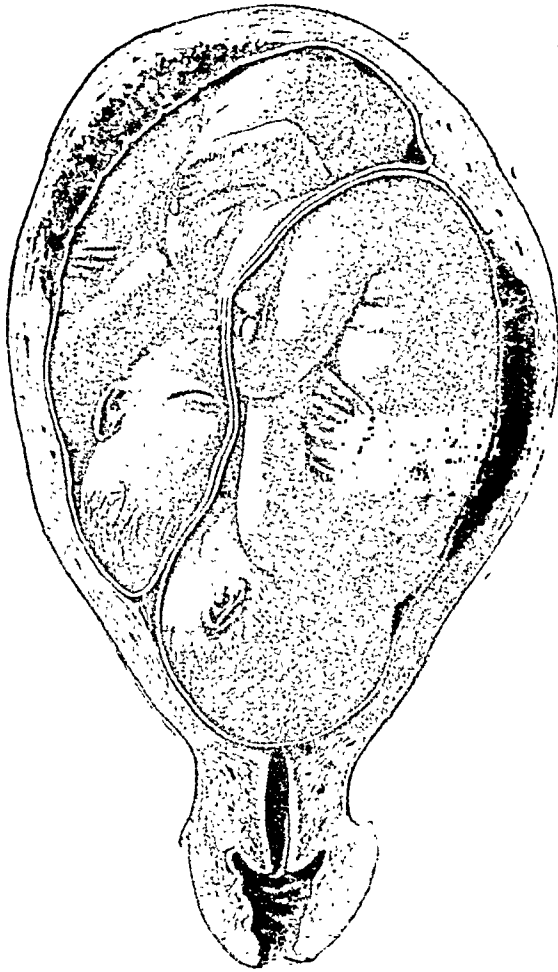
चित्र १३—युगल-प्रसव (पृष्ठ १६६)

सत्रहवाँ प्रकरण

बहुगर्भ

युगल प्रसूति

शुक्राधिकं द्वैधमुपैति बीजं यस्याः सुतौ वा सहितौ प्रसूते ;
रक्ताधिकं वा यदि भेदमेति द्विधा सुते सा सहिते प्रसूते ।
भिनत्ति यावद् बहुधा प्रपन्नः शुक्रार्त्तवं वायुरतिप्रवृद्धः ;
तावन्त्यपत्यानि यथाविभागं कर्मात्मकान्यस्ववशात्प्रसूते ।

(आत्रेय)

बहुगर्भ—दो या इससे अधिक बच्चे गर्भाशय में रहते हैं ।

युगल छोकरे दो प्रकार के होते हैं—(१) जिनमें एक ही कमल और एकही 'कोरीयन' तथा दो आवरण-कलाएँ होती हैं । (२) जिनमें दो कमल, दो 'कोरीयन' और दोनो की भिन्न-भिन्न आवरण-कलाएँ होती हैं । प्रथम प्रकार में शिशु की जाति एक होती है, और दूसरे में जाति निश्चित नहीं । भिन्न-भिन्न भी हो सकती है। कई बार दोनो कमलों की किनारी इस प्रकार मिली होती है, जिससे वह एक मालूम होती है । परंतु 'कोरीयन' दो होती हैं । ८८ प्रसूतियों में एक युगल जोड़ा ; ७,८२० प्रसूति में एक तीन जुड़े बच्चे, ३,९६,११२ प्रसूति में एक चार जुड़े बच्चे होते हैं ।

परीक्षा की विधि—युगल-प्रसूति में गर्भाशय बहुत बड़ा हो जाता है । इसका आकार बदल जाता है । कई बार दोनो बच्चों के बीच में गर्त मालूम पड़ते हैं । मुख्य रूप से दो सिर, चार से अधिक अवयव, दो नितंब मालूम होते हैं । युगल बच्चों में हृदय-शब्द

भिन्न-भिन्न स्थानों पर सुनाई देता है। दो व्यक्ति यदि पृथक्-पृथक् हृदय-शब्द को गिनें और सुनें, और परिणाम में यदि भिन्न-भिन्न अंतर हो, तो निश्चय दो लड़के हैं।

दर्शन—एक शिशु की अपेक्षा युग्म बच्चों में असाधारण दर्शन अधिक मालूम पड़ता है। कारण, एक शिशु के स्थान पर दो शिशु आते हैं। ५० प्रतिशत प्रसूति में दोनो का सिर नीचे रहता है। ३०% में एक नितंब और एक सिर नीचे रहता है। ६% में दोनो के नितंब नीचे रहते हैं, और एक शिशु तिर्यक् उदयन से उत्पन्न होता है।

उपाय—साधारणतः प्रथम शिशु उत्पन्न होता है, फिर दूसरा आता है। इसके पीछे प्रथम शिशु का कमल बाहर आता है, और फिर दूसरे शिशु का बाहर आता है। कई बार प्रथम शिशु के उत्पन्न होते ही उसका कमल आ जाता है। फिर दूसरा शिशु और उसका कमल। प्रथम शिशु का उदयन देखकर वह यदि सिर या नितंब द्वारा आवे, तो उसे स्वाभाविक रूप से बाहर आने देना चाहिए। इसके पीछे दूसरे शिशु के पेट के ऊपर से परीक्षा करना चाहिए। यदि वह तिर्यक् हो, तो धात्री को नितंब या सिर नीचे कर देना चाहिए। यदि सिर समीप हो, तो सिर नीचे करें।

यदि प्रथम शिशु के जन्म होने पर ½ घंटे के अंदर आवरण-कलाएँ न फटें, तो उनको फाड़ देना चाहिए। अन्यथा शिशु एक घंटे या इससे अधिक गर्भाशय में रह सकता है। प्रायः शिशु अपूर्ण उत्पन्न होते हैं। एक शिशु के उत्पन्न होने पर प्रायः गर्भाशय की संकुचन-शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः दूसरा शिशु कई बार १५ दिन के पीछे उत्पन्न होता है। प्रथम शिशु के पीछे ½ घंटे तक प्रतीक्षा करनी चाहिए, जिससे रक्त-स्राव का संदेह नहीं रहता।

पूर्वकथन—एक शिशु की अपेक्षा इसमें माता के लिये पूर्वकथन ख़राब है। शिशु का पूर्वकथन उदयन पर आश्रित है। यदि बच्चा छोटा हो, तो सुगमता से बाहर आ जाता है।

उपद्रव—युगल बच्चों से कई बार प्रसूति में बाधा पड़ती है। कारण, शिशु उत्पन्न होते समय आपस में फँस जाते हैं। यह चार प्रकार से होता है। यथा—

(१) दो छोटे सिर वस्ति में एक साथ प्रविष्ट हो जाते हैं। एक दूसरे को रोकते हैं, जिससे बिना सहायता के बाहर नहीं आ सकते।

(२) यदि प्रथम शिशु सिर से आता है, और दूसरा तिरछा पड़ा हो, तो पहले की गर्दन दूसरे के स्कंध के नीचे आ जाती है, और इस प्रकार नीचे आते हुए रोकता है।

(३) यदि प्रथम शिशु नितंब से आता हो, और थोड़ा ही नीचे आया हो, और दूसरा शिरोदय से उत्पन्न हो रहा हो, जिससे प्रथम शिशु की चिबुक दूसरे बच्चे की चिबुक से फँस जाय।

(४) प्रथम शिशु नितंब से आवे और थोड़ा उत्पन्न हो, दूसरा शिशु जो सिर से आ रहा है, इस प्रकार वस्ति में प्रविष्ट हो, जिससे उसकी चिबुक पहले बच्चे की पीछे से आनेवाले सिर की चिबुक के साथ स्थिर हो जाती है।

कई बार दोनो नालें आपस में लिपटी या उलझी होती हैं, जिससे एक शिशु की मृत्यु हो जाती है। प्रथम शिशु के जन्म के पीछे नाल को तब काटना, जब उसमें फिरता रक्त बंद हो जाय। इसके लिये प्रथम शिशु की नाल प्रसूति में सर्वथा नहीं खींचनी चाहिए।

युगल बच्चों में प्रसूति की प्रथमावस्था बहुत लंबी हो जाती

है। कारण, गर्भाशय के बहुत अधिक फैलने से पूर्ण रूप से संकुचित नहीं होता। कई बार प्रसूति के पीछे बहुत अधिक रक्त स्राव होता है। युगल बच्चों में अवश्य ही धात्री को प्रसूति के चिकित्सक को बुला लेना चाहिए।

अठारहवाँ प्रकरण

सूतिका की अवस्था

सूतिकायां तु खलु बुभुक्षितां विदित्वा स्नेहं पाययेत्। स्नेहं पीतवत्याश्च सर्पिस्तैलाभ्यामभ्यज्य वेष्ठेदुदरं महता वाससा। तथा तस्या न वायुरुदरे विकृतिमुत्पादयति अनवकाशत्वात्। तस्यास्तु खलु यो व्याधिरुत्पद्येत स कृच्छ्रसाध्यो भवति असाध्यो वा। तस्मात्तां यथोक्तेन विधानेनाचरेत्।

(आत्रेय)

'सूतिका' की अवस्था में जननी गर्भावस्था और प्रसूति की अवस्था से शांत हो जाती है। इस अवस्था में गर्भाशय और वस्ति के अन्य अवयव अपनी वास्तविक अवस्था में आ जाते हैं, और जननी के दूध आने लगता है। इस स्थिति में तीन मुख्य परिवर्तन होते हैं—

१. गर्भाशय संकुचित होता है।

२. सूतिका का स्वाभाविक स्राव।

३. दूध का आना प्रारंभ हो जाता है।

गर्भाशय का संकुचित होना—गर्भाशय को अपनी पहली अवस्था में आने तक ६ या ८ सप्ताह लग जाते हैं। प्रसव के पीछे इसका भार २४ से ४८ औंस होता है, और वह कम होकर ६-१० ड्राम होना चाहिए। इस क्रिया को 'इनवोल्युशन' संकोच कहते हैं। प्रसव के पीछे गर्भाशय का रक्त भी कम मिलना चाहिए। गर्भाशय जब वेग से संकुचित होता है, तब रक्त की प्रणालियों के मुख बंद

हो जाते हैं। जिससे मांस-तंतुओं का पोषण बंद हो जाता है, और वह गर्भाशय पतला हो जाता है। ९वें दिवस संकुचित गर्भाशय विटप-संधि के शिखर पर होता है, और ६ सप्ताह में स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है।

स्राव—इसको 'लोशिया' कहते हैं। जिस केस में जीवाणुओं का संक्रमण नहीं हुआ, उसमें यह रक्त एक व्रण के रक्त से मिलता है। प्रथम यह शुद्ध रक्त होता है, पीछे रक्त और लसीका और अंत में लसीका ही रह जाती है। ६ दिन में रक्त बंद हो जाता है। इस स्राव के साथ 'गर्भकला' 'डेसीडुवा' के छिछड़े भी आते हैं। यदि योनि-मार्ग को स्वच्छ रक्खा जाय, तो जीवाणुओं का आक्रमण नहीं होता। साधारण प्रसूति में स्राव की मात्रा ११ औंस होती है, और ८ दिन तक आता है। जब कमल बड़ा हो और जननी को ऋतुस्राव के दिनों में अधिक रक्त आता हो, तो यह अधिक दिनों तक जारी रहता है। एवं यदि जननी का बहुत-सा रक्त प्रसव में निकल जाय, तो शीघ्र बंद हो जाता है। इसकी गंध शुद्ध रक्त के समान होती है। उसमें कोई बू नहीं होती। इसका निशान बीच से गाढ़ा लाल और फिर किनारों की ओर हलका होता हुआ अंत में लुप्त हो जाता है, और यदि जीवाणुओं का संक्रमण हो जाय, तब इसकी गंध में दुर्गंध और चक्ता बीच से फीका और किनारों पर गाढ़ा लाल होता है।

दूध का आना—प्रथम २४ घंटों में जो द्रव स्तनों से निकलता है, उसे 'कोलस्ट्रम' चीक कहते हैं। शुद्ध दूध दूसरे दिन शाम या तीसरे दिन प्रातः आता है*। यह दूध की मात्रा शीघ्र

---

* धमनीनां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् ;
चतुरात्राद् त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते। (सुश्रुत)
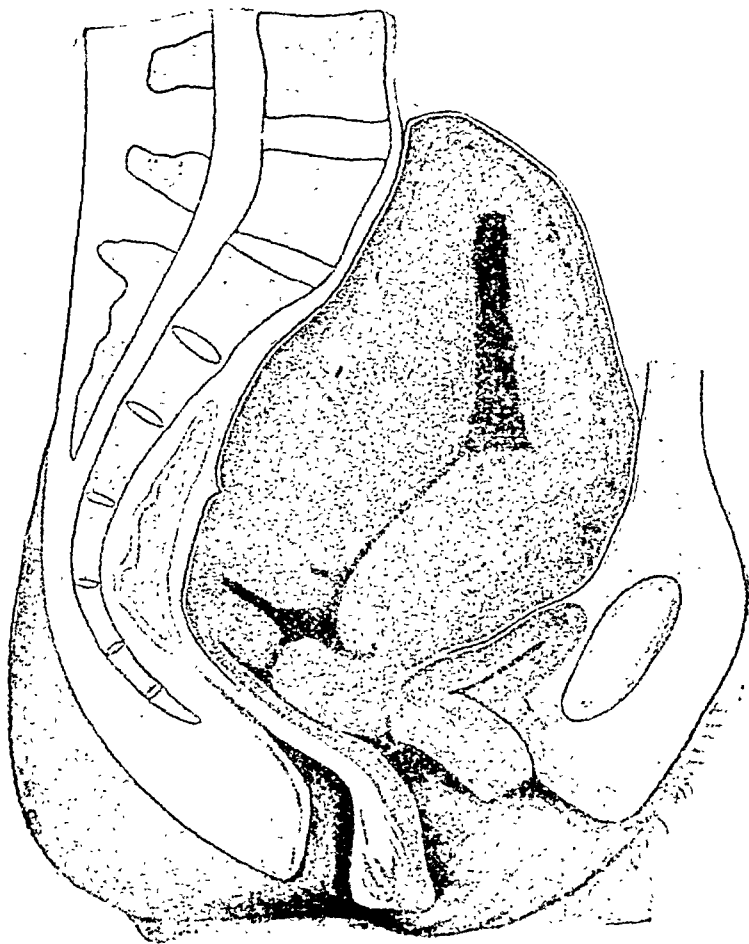
चित्र १४—गर्भाशय का संकुचित होना (पृष्ठ १७४)

ही बढ़ जाती है। ११ दिन के दूध का प्रमाण नीचे दिया जाता है—

दिन	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
औंस	०	३½	७	८¾	१३	१५	१७½	१९	२२	२३	२५

निम्न-लिखित तालिका से स्पष्ट है कि प्रतिदिन दूध कितनी मात्रा में उत्पन्न होता है—

प्रथम सप्ताह के अंत में प्रतिदिन दूध की मात्रा	१० से १६	औंस
द्वितीय ,, के मध्य में ,, ,, ,,	१२ से १८	,,
तृतीय ,, ,, ,, ,, ,,	१४ से २४	,,
चतुर्थ ,, ,, ,, ,, ,,	१६ से २६	,,
पाँचवें ,, से १९ वें सप्ताह तक प्रतिदिन का दूध	२० से ३४	,,
चतुर्थ मास से छठे मास तक ,, ,,	२४ से ३८	,,
छः से आठ मास तक	३० से ४०	,,

उपाय—प्रसव के पीछे थोड़े घंटों के लिये धात्री को शांत छोड़ देना चाहिए। तब तक शिशु को स्नान तथा वस्त्र आदि पहना देना चाहिए। एक चतुर धात्री जननी के चेहरे को देखकर अवस्था का ज्ञान कर सकती है। यदि रक्तस्राव का भय हो, तो जननी की चादर देखनी चाहिए। यदि रक्तस्राव हो रहा हो, तो पेट की पट्टी ढीली कर देनी चाहिए, और गर्भाशय को दबाकर रक्त का जमा चक्का बाहर कर देना चाहिए। इससे भी यदि रक्तस्राव बंद न हो, तो 'एक्सट्रैक्ट अरगट लिक्विड' देना चाहिए *। यथासंभव धात्री को चाहिए कि वह जननी को सुलाने का यत्न करे। जननी को प्यास के लिये गरम पानी (दशमूल क्वाथ) देना चाहिए। विशेषतः यदि

---

* रक्तप्रतिरोध—अत्यर्थं स्रवति रक्ते कोष्ठागारिकागारमृत्पिण्ड-लापंगा-धातकी कुसुम नवमालिका गैरिक-सर्जरस रसाञ्जनचूर्णं मधुनावलिह्यात्।

रक्तस्राव हो। यदि 'एफटरपेंस' (मक्कल) अधिक हों, तो गर्भाशय को दबाकर रक्त का चक्का निकाल देना चाहिए*।

योनि-मार्ग को स्वच्छ रखना आवश्यक ही नहीं, अपितु अत्यंत आवश्यक है। कारण, इस समय का संक्रमण रोकना कठिन ही नहीं, अपितु असंभव हो जाता है। अतः आवश्यक है कि योनि-मार्ग को स्वच्छ रक्खें। इसके लिये योनि-मार्ग पर 'जंतुनाशक' दवा में भीगी रुई की गद्दियाँ (सैनेटरी टावल्स) रखनी चाहिए। इनके ऊपर रुई की गद्दी बाँध देनी चाहिए। जब वे बाहर से गीली प्रतीत हों, तो बदल देनी चाहिए प्रथम दो दिन में प्रत्येक दो घंटे बाद इनको बदल देना चाहिए। बदली गद्दी को जला देना चाहिए। जननी की जंघा और बाहर के मार्ग को साबुन और गरम पानी से साफ़ कर देना चाहिए। इस अवस्था में सदा शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र या विलायती रुई काम में लानी चाहिए। इस समय 'लाईजोल' का उपयोग उत्तम है। बाहर के ओष्ठों को खोलकर उस पर थोड़ा लोशन डाल देना चाहिए। यदि स्राव जंतु-युक्त हो, तो दो-तीन बार साफ़ करना चाहिए। धात्री को प्रतिदिन गर्भाशय की परीक्षा करनी चाहिए। वह छोटा होता है या नहीं। इसके स्राव की मात्रा, रंग की भी परीक्षा करनी चाहिए।

१. धैर्य देना—जननी को सदा धैर्य दिलाते रहना चाहिए। उसे

---

* एफटरपेंस (मक्कल) वेदनायां महासहा क्षुद्रसहा मधूकश्वदंष्ट्रा कण्टकारिका सिद्धं पयः शर्कराक्षौद्रमिश्रं पाययेत्। मूत्रसंगे दर्भादि सिद्धम्।

अदुष्टशोणितवेदनायां मधूकदेवदारुपयस्यासिद्धं पयः पाययेत। समन्तादाध्मानमुदरं मूत्रसंगश्च भवतीति मक्कललक्षणम्। तत्र वारि सत्त्वादिसिद्धं जलमूषकारि प्रतिवार्यं पाययेत। यवाक्षारचूर्णं वा सर्पिषा सुखोदकेन वा। सुश्रुत शारीर अ० १० देखिए।

कई बार गर्भाशय उलट जाता है, जिससे गर्भाशय संकुचित नहीं होता।

२. एफटर पेंस (मकल्ल)—यह प्रसव के पीछे २४ से ४८ घंटे तक होती है। कमल के छुटने पर प्रायः दुःख नहीं होता। दुःख तब होता है, जब प्रसूति शीघ्र हो जाय, अथवा गर्भाशय में रक्त का चक्का या कमल का कुछ भाग रह जाय, तब भी वेदनाएँ होती हैं।

चिकित्सा—(१) रक्त के चक्के को गर्भाशय दबाकर बाहर कर देना चाहिए।

(२) अरगट देना चाहिए।

(३) गर्भाशय पर गरम पुल्टिस, राई का लेप, रबर की बोतल का गरम सेंक करना चाहिए *।

---

* न्यग्रोधादित्वक् प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेत् । उत्पलादि कल्कं वा । उदुम्बरफलोदककंदक्वाथेन वा शर्करामधुमधुरेण वा शालीं पिष्टम् । न्यग्रोधादि स्वरसपोतं वा वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत् ।

दशमूल, देवदार्व्यादिक्वाथ, सौभाग्यशुंठी, वज्रकांजीक, जीरकादिमोदक उत्तम हैं।

कई बार गर्भाशय उलट जाता है, जिससे गर्भाशय संकुचित नहीं होता।

२. एफटर पेंस (मकल्ल)—यह प्रसव के पीछे २४ से ४८ घंटे तक होती है। कमल के छुटने पर प्रायः दुःख नहीं होता। दुःख तब होता है, जब प्रसूति शीघ्र हो जाय, अथवा गर्भाशय में रक्त का चक्का या कमल का कुछ भाग रह जाय, तब भी वेदनाएँ होती हैं।

चिकित्सा—(१) रक्त के चक्के को गर्भाशय दबाकर बाहर कर देना चाहिए।

(२) अरगट देना चाहिए।

(३) गर्भाशय पर गरम पुलटिस, राई का लेप, रबर की बोतल का गरम सेंक करना चाहिए *।

---

* न्यग्रोधादित्वक् प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेत्। उत्पलादि कल्कं वा। उदुम्बरफलोदककंदक्वाथेन वा शर्करामधुमधुरेण वा शालो पिष्टम्। न्यग्रोधादि स्वरसपोतं वा वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत्।

दशमूल, देवदार्व्यादिक्वाथ, सौभाग्यशुंठी, वज्रकांजीक, जीरकादिमोदक उत्तम है।

कई बार गर्भाशय उलट जाता है, जिससे गर्भाशय संकुचित नहीं होता।

२. एफटर पेंस (मकल्ल)—यह प्रसव के पीछे २४ से ४८ घंटे तक होती है। कमल के छुटने पर प्रायः दुःख नहीं होता। दुःख तब होता है, जब प्रसूति शीघ्र हो जाय, अथवा गर्भाशय में रक्त का चक्का या कमल का कुछ भाग रह जाय, तब भी वेदनाएँ होती हैं।

चिकित्सा—(१) रक्त के चक्के को गर्भाशय दबाकर बाहर कर देना चाहिए।

(२) अरगट देना चाहिए।

(३) गर्भाशय पर गरम पुल्टिस, राई का लेप, रबर की बोतल का गरम सेंक करना चाहिए *।

---

* न्यग्रोधादित्वक् प्रवालकल्क वा पयसा पाययेत्। उत्पलादि कल्कं वा। उदुम्बरफलोदककंदकायेन वा शर्करामधुमधुरेण वा शालो पिष्टम्। न्यग्रोधादि स्वरसपीतं वा वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत्।

दशमूल, देवदार्व्यादिक्काथ, सौभाग्यशुंठी, वज्रकांजीक, जीरकाद्यमोदक उत्तम है।

कई बार गर्भाशय उलट जाता है, जिससे गर्भाशय संकुचित नहीं होता।

२. एफटर पेंस (मकल्ल)—यह प्रसव के पीछे २४ से ४८ घंटे तक होती है। कमल के छुटने पर प्रायः दुःख नहीं होता। दुःख तब होता है, जब प्रसूति शीघ्र हो जाय, अथवा गर्भाशय में रक्त का चक्का या कमल का कुछ भाग रह जाय, तब भी वेदनाएँ होती हैं।

चिकित्सा—(१) रक्त के चक्के को गर्भाशय दबाकर बाहर कर देना चाहिए।

(२) अरगट देना चाहिए।

(३) गर्भाशय पर गरम पुल्टिस, राई का लेप, रबर की बोतल का गरम सेंक करना चाहिए *।

---

* न्यग्रोधादित्वक् प्रवालकल्कं वा पयसा पाययेत्। उत्पलादि कल्कं वा। उदुम्बरफलोदककंदलादेन वा शर्करामधुमधुरेण वा शाली पिष्टम्। न्यग्रोधादि स्वरसप्लुतं वा वस्त्रावयवं योन्यां धारयेत्।

दशमूल, देवदार्वादिक्वाथ, सौभाग्यशुंठी, पंचकांजीक, जीरकादिमोदक उत्तम हैं।

उन्नीसवाँ प्रकरण

गर्भावस्था के दुःख

व्याधिश्चास्या मृदुमधुरशिशिरसुखसुकुमारप्रायैः औषधाहारोपचारैः उपचरेत् । न चास्या वमनविरेचनशिरोविरेचनानि प्रयोजयेत् । न रक्तमवसव्ययेत् । सर्वकालं वा नास्थापनमनुवासनं वा कुर्यात् । अन्यत्राऽऽत्यायकाव्याधेः । (चरक)

मॉर्निंग सिकनैस (प्रातःकालीन वमन)—यह प्रथम या तीसरे मास में होती है। जननी जब प्रातः बिस्तर से उठती है, तो जी मिचलाता और वमन हो जाती है, जो एक या इससे अधिक घंटे तक रहती है। कइयों में वमन साफ़ होती है, और कइयों में तीव्र वमन होती है, जिसे 'हाइपरऐमीसीस ग्रैवीडारम' कहते हैं।

चिकित्सा—साधारणतः इसमें चिकित्सा की कोई आवश्यकता नहीं है। मल-त्याग पूर्ण रूप से होना चाहिए। उठते ही प्रातः गरम पानी का प्याला भरकर देना चाहिए। या प्रातः उठते ही नाश्ता देना चाहिए।

कौंस्टीपेशन (मलबंध)—यह प्रायः होता है। जिसका होना शिशु और माता दोनो के लिये हानिकारक है। इसके द्वारा गर्भ और माता के बुरे पदार्थ बाहर आते हैं। मलबंध के कारण पेट फूल जाता है, जिसमें वायु भर जाती है।

उपाय—(१) भोजन और रहन-सहन में परिवर्तन आवश्यक है।

(२) तीव्र रेचन न देकर मृदु विरेचन या वस्ति देनी चाहिए। (३) भोजन में दूध, हरी सब्ज़ी, लाप्सी, दलिया, फलों के रस देने चाहिए। (४) पानी यथेष्ट पिलाना चाहिए।

विरेचन के लिये—'पूर्पंटा', 'हुनीयाडा जैस' आदि प्राकृतिक पानी ½ वाइन गिलास (१ पाव-भर) देना चाहिए। अन्य विरेचन में मैगनेशियम सल्फ़ेट (½ से एक चम्मच) लिक्विड एक्सट्रेक्ट ऑफ़् कैसकारासैगरेडा (½ चम्मच) कंपाउंड लीकरीस पाउडर (½ चम्मच) देना चाहिए।

रिटैंशन ऑफ़् यूरीन (मूत्रावरोध)—गर्भाशय और योनि-मार्ग के अपने स्थान पर न रहने के कारण मूत्राशय और मूत्र-मार्ग पर दबाव पड़ने के कारण मूत्र रुक जाता है। इस अवरोध से मूत्राशय में असह्य वेदना होती है।

उपाय—(१) शलाका द्वारा मूत्र निकाल देना चाहिए। (२) यदि गर्भाशय उलट गया हो, तो चिकित्सक को बुलावें।

इनकॉंटिनैंस ऑफ़् यूरीन ऐंड ब्लैडर इरेटेबिलिटी (मूत्रकृच्छ्र और मूत्राशय-विक्षोभ)—खाँसते समय या मूत्र प्रवाहण करते समय मूत्र बूँद-बूँद आ जाता है। बहुतानेकगर्भा में प्रायः होता है।

कारण—मूत्राशय के मांस-तंतु ढीले हो जाते हैं। इसका कारण मूत्राशय की ग्रीवा पर गर्भाशय का दबाव होता है। प्रथम मास तथा चतुर्थ और पाँचवें मास में मूत्राशय में विशेष विक्षोभ होता है, जिसका कारण वस्ति में स्थित गर्भाशय का दबाव है। कई बार इस विक्षोभ का कारण 'सिस्टाईटीस' होता है।

उपाय—गर्भावस्था में कोई चिकित्सा नहीं। धात्री को चाहिए कि रोगी भोजन तथा बाह्य अवयव को साफ़ रक्खे। अंगों पर वैसलीन लगा देनी चाहिए।

एनीमीया (कामला)—साधारण रीति से रक्ताणु की मात्रा बढ़ जाती परंतु कभी-कभी कम हो जाती है।

कारण—पोषण-रहित भोजन, अजीर्ण, ख़राब दाँत, मलबंध, शुद्ध वायु का अभाव होता है। चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

हाइड्रीमिया (जलोदर)—जब जननी का रक्त बहुत ही फीका हो जाता है, तो जननी के पाँव और बाहर के अवयवों में शोथ हो जाता है। यदि मूत्र-परीक्षा में कोई अंतर न आवे, तो इस सूजन की अधिक क़ीमत नहीं है। यदि बाह्य ओष्ठ बहुत सूजा हो, तो प्रसूति कठिन हो जाती है।

उपाय—यदि शोथ कम हो, तो समीपवर्ती भागों पर 'लैड लोशन' रखने से कम हो जाता है। यदि शोथ अधिक हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिए। आवश्यकता होने पर पानी निकाल देना चाहिए।

वैरीकोजवेंस—यह प्रायः अंतिम मासों में होती है।

उपाय—उनको बिठा देना चाहिए। जो पाँव सूजा हो, उस पर रबर या फ़लालैन की पट्टी (नीचे से ऊपर जाती) बाँध देनी चाहिए। यह पट्टी रात्रि को खोल देनी और दिन में रहने देनी चाहिए। यदि नसें बहुत बड़ी हों, तो जननी को लेटा देना चाहिए।

हैमरोईडस (मस्सा)—गर्भावस्था के पिछले दिनों में प्रायः हो जाते हैं। और ये अपने आप नष्ट हो जाते हैं, कभी-कभी निकालने पड़ते हैं।

उपाय—(१) मल नियमित और मृदु होना चाहिए, (२) 'हैजेलीन' या 'गैलिकम औप्याई की मलहम' लगानी चाहिए, (३) एपोजेटरी (हैजेलीन) की कई बार आवश्यकता पड़ती है। मस्सा निकलने पर गरम पानी से धोना चाहिए। सेंक, पुल्टिस भी उत्तम है।

प्रुराईटीस ऑफ् दी वल्वा—इसका कारण योनि-मार्ग से बहने-वाला पदार्थ होता है। मूत्र में शर्करा आने से भी हो जाता है।

उपाय—(१) अवयवों को साफ़ रखना चाहिए, (२) टंकण खार के पानी से दिन में तीन-चार बार धोना चाहिए, (३) जस्ते के कीट का 'मलहम' (जिंक ऑक्साईड) लगाना चाहिए।

न्यूरेलजीया—गर्भावस्था में दाँत, चेहरा और नाक में श्लेष्मा के कारण दुःख हो जाता है।

उपाय—(१) दुःखित भाग पर सेक करना, (२) 'लिनीमैंट कौफर' या 'लिनीमैंट क्लोरोफ़ार्म' लगाना चाहिए, (३) यदि दाँत सड़ा हो, तो उसे निकाल देना ही उत्तम है।

बीसवाँ प्रकरण

गर्भ और गर्भ-कला के रोग

हाईड्रोरिया ऑफ् प्रेगनैंसी—यह दो प्रकार की है—(१) 'डैसीड्बल हाईड्रोरिया' और (२) 'ऐमनी ओटिक हाईड्रोरिया'।

पहचान (प्रथमावस्था में)—कलों के पीछे पानी भरा होता है। जब तक गर्भ-कला में रहने को स्थान मिलता है, तब तक रहता है, और फिर वेग से बाहर आ जाता है। प्रथम तीन मास के बाद कभी हो सकता है। इसके कारण अकाल प्रसव भी हो सकता है। (द्वितीयावस्था में) प्रायः गर्भावस्था के अंतिम मासों में होता है, यह प्रथम की अपेक्षा भयानक है। कारण, इसमें प्रसव शीघ्र हो सकता है।

उपाय—इसके लिये कोई उचित उपाय नहीं। धात्री को लेटा रहना चाहिए। पानी के स्राव के साथ प्रसव होना बहुत संभव है।

वैसीक्यूलर मोल (मोतियाग्रंध छोड़)—'कोरीओन' के अंदर एक विचित्र परिवर्तन होने से छोटी-छोटी ग्रंथियाँ बन जाती हैं। इसको 'हायडैटी फ़ॉर्म' भी कहते हैं। यदि तीसरे मास में नष्ट न हों, तो शाखाओं के रूप में फैल जाती हैं। गर्भ शुष्क हो जाता और मर जाता है। ये ग्रंथियाँ संपूर्ण गर्भाशय में फैल जाती हैं। यदि युगल प्रसूति में हों, तो केवल एक गर्भ पर प्रभाव होता है।

पहचान—गर्भावस्था के लक्षण प्रायः होते हैं, परंतु गर्भ नहीं प्रतीत होता। युगल प्रसूति हो, तो एक का हृदय-शब्द सुना जा सकता

है। गर्भाशय बड़ा प्रतीत होता है (गर्भाशय की अपेक्षा)। कई बार छोटा हो जाता है। गर्भाशय बहुत खिंचा और मुलायम प्रतीत होता है।

परिणाम—यह भयानक है। यदि कोई भी चिकित्सा न करे, और गर्भाशय के संकोच से बाहर हो जाय, तो स्त्री स्वस्थ हो जाती है। यदि ऐसा न हो, तो गर्भाशय फट जाता है, जिससे मृत्यु हो जाती है, अथवा 'पैरीटोनाईटीस' हो जाता है।

उपाय—चिकित्सक को बुलाकर उसी समय गर्भाशय ख़ाली कर देना चाहिए। इस कार्य के लिये 'क्युरेट' कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

कोरीओन एपोथीली ओमा—प्रारंभ में कोरीओन में बाल की भाँति फलने निकलते हैं, और फिर ये दीवार तक फैल जाते हैं। ये 'नासूर' के चिह्न हैं। यदि शीघ्र न निकालें, तो मृत्यु हो जाती है।

पहचान—सबसे बड़ी परीक्षा रक्तस्राव है। यह बड़ी मात्रा में जाता है। रक्त में दुर्गंध होती है। कई बार अपूर्ण प्रसव के कमल का धोका कर देता है। परंतु परीक्षा से भ्रम नष्ट हो जाता है।

उपाय—रक्तस्राव के लिये चिकित्सक को बुलाना चाहिए। इस रोग में जीवन-रक्षा का एक ही उपाय है कि संपूर्ण गर्भाशय निकाल देना चाहिए।

हाइड्रो एमनी ओस (गर्भ-जल की बड़ी मात्रा)—यदि ९ पाइंट से अधिक हो, तो इसे 'हाइड्रो एमनी ओस' कहते हैं। यह 'एक्युट' और 'क्रोनिक' भेद से दो प्रकार का है। इसका मुख्य कारण युगल प्रसूति या शिशु को उपदंश-रोग होना है।

पहचान—गुदा पर दबाव होने से मलबंध, मूत्रकृच्छ्र, वमन, श्वास-काठिन्य, हृदय की धड़कन विशेष होती है।

प्रसूति की प्रथमावस्था लंबी हो जाती है। असाधारण दुर्बल

होता है। गर्भ-जल के एकदम निकलने के कारण गर्भाशय छोटा हो जाता है, जिससे कमल के छुटने से रक्तस्राव अधिक होता है। तृतीयावस्था भी गर्भाशय के निर्बल होने के कारण लंबी हो जाती है।

परीक्षा-विधि—गर्भाशय बहुत बड़ा होता है। गर्भ का स्पर्श कठिनता से होता है। हृच्छब्द कठिनता से सुनाई देता है। प्रसूति आरंभ होने पर शिशु की परीक्षा कठिन होती है।

उपाय—(१) गर्भावस्था में पेट पर पट्टी बाँध देनी चाहिए। (२) जननी को लेटाए रक्खे। (३) जब तक आवरण-कलाएँ फटें नहीं, जननी को ज़ोर नहीं करने देना चाहिए। (४) सबसे अच्छा उपाय यह है कि यथासंभव ऊँचाई पर शलाका से छेद करके पानी (ट्रोकार कैन्युला) निकाल देना चाहिए।

इनकारसरेशन ऑफ़् यूटर्स (वस्ति में गर्भाशय का स्थिर रहना)—कई बार गर्भाशय गर्भ के बढ़ने के साथ बढ़ता नहीं। यह भयानक अवस्था है। यदि गर्भाशय ख़ाली न हो, तो जननी की मृत्यु हो सकती है। यह प्रायः संकुचित वस्ति में या उस अवस्था में जब गर्भाशय ऊपर न जा सके, होता है। यदि गर्भाशय उलटा हो, तो भी यह अवस्था हो जाती है।

पहचान—पीड़ा, मलबंध, मूत्र-काठिन्य हो जाता है। गर्भाशय नाभि पर गाँठ के समान प्रतीत होता है। जिस पर टकोर से 'खोखली' (रेज़ोनैंस) आवाज़ आती है। परंतु यह भरा हुआ मूत्राशय होता है। योनि-मार्ग की परीक्षा में 'डगलस' के गड्ढे में एक गाँठ-जैसी प्रतीत होती है। गर्भाशय-ग्रीवा ऊपर खिंची होने के कारण हाथ को छूती नहीं। मूत्र-मार्ग ऊपर खिंचे होने के कारण शलाका नहीं जा सकती।

उपाय—चिकित्सक को बुलाकर मूत्राशय ख़ाली करा देना चाहिए।

एनोमेलीस ऑफ़् दी प्लेसंटा एंड फ्युनीस—कई बार कमल के आकार, क़द और स्थान में परिवर्तन रहता है। एवं नाल की लंबाई तथा उसके जोड़ने के स्थान में परिवर्तन होता है। इसके नीचे लिखे भेद हैं—

(१) मैंब्रेनस प्लेसंटा—इसमें कमल बहुत बड़ा और पतला होता है, जो संपूर्ण गर्भाशय को रोक लेता है। यह कमल अंदर रह जाता है। पतला होने के कारण संकुचनों से बाहर नहीं आता।

(२) ऐक्सेसरी प्लेसंटा या प्लेसंटा सक्सेन च्युरीएंटा—इसमें कमल का एक चक्का न होकर भिन्न-भिन्न छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं, जिनको आपस में रक्त की नलियाँ जोड़ देती हैं। इनमें से एक का रहना संभव है, जिसके कारण रक्तस्राव-संक्रमण हो सकता है। कई बार दो दिन पश्चात् 'रक्तस्राव' होता है। उसे 'सैकंडरी पोस्ट मारटम हैमरेज' (द्वितीय रक्तस्राव) कहते हैं। यदि प्रसूति के पीछे कमल और पड़ की बराबर परीक्षा करें, तो गर्भाशय में रहे हुए कमल का टुकड़ा प्रतीत हो जाता है।

(३) बेटलडोर प्लेसंटा—इसमें कमल के मध्य में नाल नहीं लगती, परंतु उसकी एक किनारी में लगती है।

(४) प्लेसंटा प्रीविया—कमल गर्भाशय के निचले भाग में सामने या पीछे की दीवार में लगता है। साधारणतः कमल का निचला भाग गर्भाशय के अंदर के निचले भाग से ४ इंच होता है। यदि कमल का कोई भी भाग इससे नीचे रहे, तो उसे 'प्लेसंटा प्रीविया' कहते हैं। यह गर्भाशय के मुख पर भी हो सकता है।

प्लेसंटा वैलमैंटोमा—इस अवस्था में कमल की रक्तवाहिनी जो नाल में जाती है, वह नाल में जुड़ने से पूर्व आवरण-कलाओं के अंदर छुटती हैं। अतः इस अवस्था में जब आवरण-कलाएँ फटती हैं, तो वे टूट जाती हैं, जिससे शिशु की मृत्यु हो जाती है।

इक्कीसवाँ प्रकरण

वृक्क के रोग

किडनी डिज़ीज (वृक्करोग)—कई बार गर्भवती स्त्री वृक्क के रोगों के कारण अति पीड़ित होती है। इसके कारण अकाल में प्रसव, हद दरजे की उलटी, अति रक्तस्राव और मृत्यु भी हो जाती है।

पहचान—मूत्र में 'एल्ब्युमिन' होती है। सिर-दर्द, वमन, हाथ-पाँव, भगोष्ठ पर शोथ और मूत्र की राशि कम होती है।

चिकित्सा—भोजन में दूध। मलबंध न होने दें। धात्री को पूर्ण विश्राम देकर चिकित्सक को तुरंत बुलाना चाहिए।

हाईपर एमेसिस ग्रैविडेरम (अतिवमन)—इसका कारण अभी तक स्पष्ट नहीं है। कइयों का विचार है कि इसका कारण 'हिस्टीरिया' या योषितापस्मार है। दूसरे इसका कारण गर्भाशय-ग्रीवा का शोथ या गर्भाशय के कारण बताते हैं। यह साधारण और तीव्र भेद से दो प्रकार का है। साधारणावस्था गर्भाशय उलट गया हो, ग्रीवा फट गई हो, या शोथ-युक्त हो, वमन, योषितापस्मार होती है। तीव्रावस्था में कोई विष कारण होता है, जो शरीर में एकत्रित हो जाता है। भोजन ठीक नहीं पचता, जिससे वमन, मलबंध, वृक्क-रोग और मूत्र की राशि घट जाती है।

पहचान—स्त्री को कोई भी भोजन नहीं पचता। तत्काल वमन हो जाता है। अति मलबंध और मूत्र कम हो जाता है। यदि यही अवस्था रहे, तो स्त्री मर जाती है।

चिकित्सा—चिकित्सक को तत्क्षण बुला लेना चाहिए। धात्री को

चाहिए कि रोगिणी को बिस्तर पर लेटाए एवं गरम रक्खे। भोजन मुँह से न पचे, तो गुदा के रास्ते देना चाहिए। इसमें 'पैपटोनाइज़्ड दूध' उत्तम है। प्यास के लिये बर्फ़ चूसने को दें। या गरम पानी घूँट-घूँट करके दें। 'शैमपीयन' भी उत्तम है। 'सीरीयाई ऑक्ज़ीलास' भी देकर देखना चाहिए। मलबंध के लिये विरेचन या वस्ति दें।

एकलैंपसीया (आक्षेप)—इसका क्या कारण है, यह अभी तक अनिश्चित है। निम्न-लिखित कल्पनाएँ की गई हैं—(१) रक्त में यूरिया की मात्रा बढ़ने से आक्षेप होते हैं। (२) माता या शिशु के शरीर से कोई विष उत्पन्न हो जाय। (३) वृक्क और हृदय के अस्वस्थ होने के कारण, जिससे विष बाहर नहीं हो सकते। अतः निम्न-लिखित कारण माने गए हैं—

(१) वृक्क का कोई उपस्थित रोग, (२) प्रसूति में बाधा, (३) अति या न्यून आयु में गर्भवती होना, (४) चिरकालीन का उपस्थित मलबंध और (५) बहुगर्भ।

पहचान दो प्रकार की है—(१) आक्षेप से पूर्व की निशानी और (२) आक्षेप-काल के लक्षण।

आक्षेप से पूर्व के लक्षण—मूत्र में एलब्युमिन का आना, बाह्य अवयव हाथ, पाँव, चेहरे की सूजन, मूत्र की राशि कम, अति मल-बंध, आँखों के आगे चक्कर, अँधेरा, सिर-दर्द, सुस्ती, उदासी, हृास होता है।

आक्षेप-काल के लक्षण—आक्षेप का दौरा एक से १½ मिनट तक रहता है। इसके तीन भाग किए गए हैं—

(१) प्रीलीमीनरी स्टेज, (२) टोनिक स्टेज और (३) क्लोनिक स्टेज।

इसके पीछे रोगिणी बेहोश हो जाती है। आँखें बंद हो जाती हैं, और श्वास, हृदय बंद होता प्रतीत होता है। इसके पश्चात् एक

दूसरा आक्रमण आकर रोगिणी की सब मांस-पेशियों को संकुचित कर देता है। चेहरा लाल हो जाता है। मुँह से झाग आने लगते हैं। इतने में तृतीयावस्था में हाथ-पाँव हिलने लगते हैं। श्वास मंद हो जाती है। इसका समय निश्चित नहीं।

रोगिणी प्रथम थोड़ी देर बेसुध रहती है, परंतु ज्यों-ज्यों आक्रमणों की संख्या बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों इसका समय भी बढ़ता जाता है। आक्रमण बंद होकर फिर स्वयं आरंभ हो जाता है। हृदय धीरे-धीरे निर्बल हो जाता है। नाड़ी बहुत तेज़ होती है। ताप-परिमाण पहले साधारण होता है, पीछे रोग के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता जाता है। कभी-कभी १०४° तक हो जाता है। आँख की दृष्टि-शक्ति घट जाती है। स्मरण-शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

विभेदक परीक्षा—हिस्टीरिया मृगी, मद्यपान, प्रसूतिकालीन आक्षेपों से एक भिन्न वस्तु है।

उपद्रव—हृदय का बंद होना, वृक्क का निष्फल होना, फुप्फुस में पानी या रक्त भरना है। मृत्यु का कारण प्रायः इनमें से कोई एक होता है। कई बार आक्षेपों के कारण मस्तिष्क में शिरा या धमनी फट जाती है। कई बार आक्षेपों के बाद भी ऐसा हो जाता है। श्वास बंद होकर भी मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—साधारणतः चिकित्सा दो प्रकार की है—(१) आक्षेपों को रोकने की और (२) तात्कालिक।

आक्षेपों को रोकने की—यदि वृक्क रोग हो, तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। रोगिणी को दूध का भोजन देना चाहिए। जब तक मूत्र की राशि बढ़े नहीं, दूध ही देना चाहिए। मलबंध नहीं होने देना चाहिए। इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। आवश्यकता हो, तो विरेचन दे। मूत्र की राशि मापनी चाहिए। पानी यथेच्छ पीने को दें। यवोदक (बार्लीवाटर) भी देना चाहिए। मूत्र

घटता दिखाई दे, तो विलायती नमक गरम पानी में देना उत्तम है। यदि मूत्र बहुत कम हो, तो रोगिणी को शीत चादर में लपेट-कर उष्ण स्नान देना चाहिए।

तात्कालिक चिकित्सा—इसमें दो बातों पर ध्यान रखना चाहिए। (१) आक्षेपों का वेग कम हो और (२) उपद्रव उत्पन्न न हों। आक्षेप कम हों, इसके लिये तीन उपाय हैं—

(१) शांतिकारक औषध दें। यथा मौरफ़ीया, क्लोरल और क्लोरोफ़ार्म व्यवहार में लावें। मौरफ़ीया को पिचकारी द्वारा रक्त में दें। क्लोरोफ़ार्म को सुँघाकर रोगिणी की संज्ञा लोप करें। 'क्लोरल हाइड्रेट' की वस्ति दें।

(२) रक्त और स्नायु में से विष को निकालें, इसके लिये निस्साव अंगों यथा वृक्क, त्वचा, गुदा को उत्तेजित रक्खें। वृक्क के लिये गरम पानी, वृक्क पर सेंक, पुलटिस बाँधें। गुदा के लिये 'सैलाइन परगैटिव' गुदा से दें। तथा 'सैलाइन इंजैक्शन' शिरा, त्वचा में करना चाहिए। पानी यथेच्छ देना चाहिए। भोजन बंद कर दें। आवश्यकता हो, तो रक्त-मोक्षण भी करें। आमाशय को 'स्टमक ट्यूब' से धो देना आवश्यक है। मलबंध के लिये 'कंपाउंड सैना मिक्स्चर' देना चाहिए। रोगिणी को गरम रखना चाहिए।

(३) यदि आवश्यक हो, तो गर्भाशय को रिक्त करके जननी की आयु बचानी चाहिए।

उपद्रवों को रोकने के लिये—रोगिणी को बिस्तर पर लेटा देना चाहिए। उसको अपने चोट लगाने से बचाना चाहिए। जीभ को काट न खाय, इसलिये चम्मच या शीशे का डाट देना चाहिए। कार्क का डाट टुकड़े-टुकड़े करके निगल सकती है। जब तक होश में न हो, कोई औषध मुख से नहीं देनी चाहिए। रोगिणी को पीठ के बल न लेटाकर पार्श्व के बल लेटाना चाहिए, जिससे लार बाहर गिरे।

पूर्वकथन—माता के लिये शोचनीय है। पूर्वकथन आक्षेपों पर निर्भर है। गर्भावस्था या प्रसूति में आक्षेपों का होना अशुभ लक्षण है। यदि आक्षेप अधिक हों (१० वार से अधिक), तो केस ख़राब है।

बाईसवाँ प्रकरण

गर्भ-पात, गर्भ-स्राव और पूर्व-प्रसव

सा चेच्चतुष्प्रभृतिषु मासेषु क्रोधशोकश्रमईर्ष्याभयत्रासव्यायामव्यवाय ...क्षुत्पिपासातियोगात् कदाहाराद्वा पुष्पं पश्येत् तस्या गर्भस्थापनविधिमुपदेस्यामः।

शयनं तावन्मृदुसुखाशिशिरास्तरणसंस्तीर्णमीषिदवनताशिरस्कं प्रतिपद्यस्वेति। ततो यष्टी मधुकसर्पिभ्यां परमशिशिरवारि संस्थिताभ्यां पिचुभारलव्योपस्थसमीपे स्थापयेत्तस्यास्तथा शतधौतसहस्रधौताभ्यां सर्पिर्भ्यामधोनाभेः सर्वतः प्रदिह्यात्। गव्येन चैनां पयसा सुशीतेन मधुकाम्बुना वा न्यग्रोधादिकषायेण वा परिसेचयेदधो नाभेः। उदकं वा सुशीतमवगाहयेत्। क्षीरिणां च कषायद्रुमाणां स्वरसपरिपीतानि चेलानि ग्राहयेत्। अतश्चैवाक्षमात्रं प्राशयेत्। प्राशयेद्वा केवलमेव क्षीरसर्पिः। क्रोधशोकायासव्यवायव्यायामेभ्यश्चाभिरक्षयेत्। तथाऽस्या गर्भस्तिष्ठति।

(चरक)

(१) सशर्करं नीलसरोजकन्दं चूर्णं निपीतं सह माक्षिकेण;
(२) लज्जावतीशावरधातकीभिः नीलाम्बुजैः क्षौद्रपयोन्विताभिः।
(३) कसेरुश्रृंगाटकजीवनीय पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः।

(गदानिग्रह)

एबोरशन (गर्भस्राव)—गर्भाशय में कमल के बनने से पूर्व गर्भ का बाहर (एक मास से चतुर्थ मास तक) आना गर्भ-पात कहाता है।

कारण—इसका मुख्य कारण 'एंडोमैट्राइटीस' (गर्भाशय का अंतः-

शोथ) है। इससे गर्भ को पूर्ण रक्त न मिलने से वह मर जाता है। जब गर्भ मर जाता है, तो प्रकृति उसे बाहर कर देती है। यदि मरे नहीं, तो वह निर्बल रहता है, जो हल-चल (शरीर के कारण) या धतिवमन अथवा आघात से स्त्रवित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त ज्वर (मलेरिया, स्कार्लेट फ़ीवर) भी स्राव के कारण होते हैं। परंतु यदि ताप एकदम न चढ़कर धीरे-धीरे चढ़े, तो टाइ-फ़ाइड (गर्भ-स्राव) का भय नहीं है। सहसा ताप होने से गर्भ मर जाता और फिर बाहर आ जाता है। गर्भ को 'सिफलिस' हो, तो भी स्राव हो जाता है। गर्भ-स्राव पाँच प्रकार का है—

(१) थ्रेटंड एबोरशन—गर्भ-स्राव होने की संभावना।

(२) सरवाइकल एबोरशन—गर्भ छुटकर ग्रीवा में आ जाय।

(३) मीस्ट एबोरशन—मृत गर्भ-गर्भ-स्राव।

(४) कंप्लीट एबोरशन—संपूर्ण गर्भ-स्राव।

(५) इनकंप्लीट एबोरशन—असंपूर्ण गर्भ-स्राव।

१—थ्रेटंड एबोरशन—प्रथम तीन मास में यदि किसी स्त्री को रक्त का कुछ स्राव हो, और गर्भ न स्त्रवित हो, तो यह अवस्था है। गर्भाशय के दुःख के कारण यह होता है। यदि योनि-मार्ग से परीक्षा करें, तो ग्रीवा का मुख थोड़ा खुला होता है।

उपाय—यदि रक्त अधिक नहीं गया, तो बहुत गड़बड़ी की आव-श्यकता नहीं। जब तक दर्द और रक्त बंद हो, तब तक जननी को बिस्तर पर लेटाए रखना चाहिए। यदि रक्त अधिक गया हो, तो तुरंत गर्भा-शय को ख़ाली कर देना चाहिए। इसके लिये 'क्युरेट' उत्तम शस्त्र है। कई बार 'योनि-मार्ग में डूश देकर भी रक्त बंद कर सकते हैं। प्रत्येक अवस्था में चिकित्सक और बिस्तर की सहायता लेनी चाहिए।

२—सरवाइकल एबोरशन—जब गर्भ गर्भाशय से छुटकर ग्रीवा में आ गिरता है। इसमें चिकित्सक की आवश्यकता है।

३—मीस्ट एबोरशन—कई बार गर्भ मर जाता है, परंतु गर्भाशय से बाहर नहीं आता। इसमें सप्ताहों तक वह अंदर ही रहता है।

लक्षण—जननी को शोक प्रतीत होता है। गर्भाशय पहले बढ़ता है, परंतु फिर नहीं बढ़ता, अपितु घटता जाता है, और स्तन के तथा अन्य परिवर्तन सब नष्ट हो जाते हैं। यदि आवरण-कलाएँ फट जायँ, तो गर्भ सड़ जाता है। इसमें से दुर्गंध-युक्त प्रवाही बाहर आता है।

चिकित्सा—इसमें तीव्र संक्रमण का भय रहता है। अतः चिकित्सक को तुरंत बुलाना चाहिए।

४—कंप्लीट एबोरशन—इसमें संपूर्ण गर्भाशय बाहर आ जाता है। जननी को सात दिन तक बिस्तर पर लेटाने के अतिरिक्त और कोई क्रिया नहीं करनी चाहिए।

५—इनकंप्लीट एबोरशन—यह 'मीस्ट एबोरशन' की भाँति है। केवल भेद इतना है कि इसमें संपूर्ण गर्भ बाहर नहीं आता। थोड़ा बाहर और थोड़ा अंदर रह जाता है।

उपाय—तुरंत चिकित्सक को बुलाना चाहिए, जिससे अंदर पड़ा भाग निकाल दिया जाय। यदि इसमें कहीं भी विष का संक्रमण होने लगे, तब डॉक्टर को अवश्य बुलाना चाहिए।

गर्भ-स्राव की परीक्षा—(१) योनि-मार्ग से जो भी कोई पदार्थ आवे, वह सँभालकर रखना चाहिए। (२) चिकित्सक को प्रत्येक वस्तु की परीक्षा करनी चाहिए। वह गर्भ-स्राव है या नहीं। वह संपूर्ण है या असंपूर्ण।

यदि केवल रक्त-स्राव ही हुआ है, और कोई वस्तु बाहर न आवे, और रक्त गर्भ के कारण आया हो, जिसमें गर्भ या 'कोरीओन' के टुकड़े हों, तो यह गर्भ-स्राव है। गर्भ-स्राव हो, तो यह संपूर्ण है या

असंपूर्ण। कई बार स्राव फेक दिया जाता है, जिससे पहचान कठिन हो जाती है। केवल ग्रीवा, मुख या रक्त-स्राव से ही परीक्षा करनी पड़ती है।

मीसकेरेज (गर्भ-पात)—कमल के बनने पर (जो २८ सप्ताहों के बाद बनता है) यदि गर्भ गिरे, तो गर्भ-पात है। यह पूर्ण दिनों की भाँति होता है। चतुर्थ मास के प्रारंभ में गर्भाशय 'कोरीओन' की उँगलियों से जुड़ा होता है। अतः छुटने पर रक्त-स्राव होता है। चतुर्थ मास के पीछे कमल बन जाता है। जब गर्भाशय संकुचित हो जाता है, तो गर्भाशय का मुख खुल जाता है। आवरण-कलाएँ फट जाती हैं। फिर शिशु और कमल बाहर आता है। साधारणतः जब कमल बाहर नहीं आता, रक्त भी नहीं आता।

कारण—जो कारण गर्भ-स्राव के हैं, वे ही अधूरे बच्चों के भी हैं।

लक्षण—प्रसूति के समान हैं।

चिकित्सा—पूर्ण समय की भाँति चिकित्सा करनी चाहिए। शिशु के जन्म के पीछे कमल की परीक्षा करनी चाहिए। यदि न निकले, तो गर्भाशय दबाकर बाहर कर देना चाहिए।

प्रीमेच्युर लेबर (अपूर्ण जन्म)—इस समय का उत्पन्न शिशु जीवित रह सकता है। २८ सप्ताह के बाद और नियत समय से पूर्व उत्पन्न होने को कहते हैं।

कारण—जो कारण गर्भ-स्राव के हैं, वे ही इसके भी हैं। इनमें मुख्य कारण उपदंश, वृक्क-रोग और आघात हैं।

अन्य कारण—कमल का गिर पड़ना, गर्भाशय का अधिक खिंचाव (यथा युगल प्रसूति और गर्भ-जल की बड़ी मात्रा में), गर्भ-पटल का शीघ्र टूटना आक्षेप हैं।

लक्षण—पूर्ण समय की प्रसूति की भाँति हैं। ग्रीवा का मुख

धीरे से खुलता है। शरीर का छोटा होने से असाधारण दर्शन में भी साधारण होकर बाहर आ जाता है।

चिकित्सा—साधारण प्रसूति के समान है। शिशु को गरम (इन्क्युबेटर में) रखना चाहिए।

तेईसवाँ प्रकरण

गर्भस्थान के बाहर रहनेवाला गर्भ

कई बार गर्भ गर्भाशय में न रहकर गर्भाशय से बाहर (प्रायः डिंब-प्रणाली में) रहता है। जब तक गर्भ छोटा रहता है, कोई विशेष लक्षण दिखाई नहीं देता, परंतु जब बढ़ जाता है, और प्रणाली में रह नहीं सकता, तब प्रणाली फट जाती है, और पेट या विस्तृत अस्थि-बंधन के ऊपर की कला पर रक्त जम जाता है। यह प्रायः गर्भावस्था के द्वितीय मास में होता है। इसमें निम्न-लिखित परिणाम होते हैं—

(१) रक्त के जाने से जननी मर जाती है।

(२) गर्भ मर जाता और सूख जाता है, अथवा अस्थि-छेद करके बाहर निकालना पड़ता है।

(३) एक बार बाहर आकर भी बढ़ सकता है।

लक्षण—स्त्री अपने को गर्भवती समझती है। गर्भावस्था के लक्षण होते हैं। सहसा रक्त-स्राव होने लगता है। पेड़ू में दर्द होता है। प्रणाली के टूटने से पूर्व रक्त-स्राव होता एवं तीव्र वेदना होती है। स्त्री ठंडी हो जाती है। नाड़ी निर्बल, तेज़ होती है, परंतु कभी-कभी धीमी निर्बल होती है। ताप ६५ से ६६° हो जाता है। तब गर्भाशय से एक मोटी कला-सी बाहर आती है, जो 'डैसी डूवा' से मिलती है। यह गर्भाशय में बनती और गर्भ के निकलने के साथ गर्भाशय से बाहर हो जाती है।

रक्त के पैरीटोनियम में जाने से पैरीटोनाईटिस हो जाता है।

यदि गर्भ बढ़ा होता रहे, तो जब तक पूरा नहीं हो जाता, कोई लक्षण दिखाई नहीं देता, और पूर्ण समय पर अशुद्ध प्रसूति होती है। यदि गर्भाशय में से 'डैसी डूवा' की भाँति का पदार्थ बाहर आता हो, तो शिशु मर जाता है। कुछ सप्ताहों तक जननी को कुछ प्रतीत नहीं होता, परंतु पीछे ऐसा मालूम होता है कि प्रसूति का समय हो गया। उसको प्रतीत होता है कि पेट छोटा हो गया। जिसका कारण गर्भाशय-जल का सूखना है। यदि कोई उपाय न किया जाय, तो पेट छोटा होता जाता और जननी निर्बल होती जाती है। मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है। वमन होता है। मुख में लाला भर आती है। पेड़ू में दर्द होता है।

चिकित्सा—गर्भाशय से बाहर गर्भ है, इसकी पहचान धात्री को हो सकती है। चिकित्सक को तत्क्षण बुलाना चाहिए। कारण, प्रणाली कभी फट सकती और रक्त-स्राव हो सकता है। साधारण विधि यह है कि जननी की मृत्यु रक्त-स्राव से न हो, इसलिये शीघ्र अस्थि-छेदन करके गर्भ निकाल देना चाहिए।

चौबीसवाँ प्रकरण

प्रसूति के प्रारंभ होने से पूर्व का रक्त-स्राव

(एंटी पार्टम हैमरीज़)

कपित्थबृहतीविल्वपटोलेक्षु निदग्धिकाः ;
मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद् भिषगष्टमे ।
नवमे मधुकानन्ता पयस्या सारिवा पिबेत् ;
क्षीरं शुंठी पयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् ।

(सुश्रुत)

गर्भ और गर्भाशय के बीच का संबंध टूटने से यह होता है। गर्भावस्था के विभेद के कारण इसका भी विभाग किया है।

(१) प्रथम तीन मासों में रक्त-स्राव अर्थात् कमल बनने से पूर्व रक्त-स्राव।

(२) दूसरे तीन मासों में होनेवाला रक्त-स्राव।

(३) पिछले चार मासों में होनेवाला रक्त-स्राव।

कारण—कमल के गर्भाशय के निचले भाग में होने से अथवा अपने दर्द के कारण कमल के पृथक् होने से।

मोतियाबंध छोड़ और छुटा गर्भ-स्राव अथवा अन्य कोई अवस्था, जिसमें गर्भ बिगड़ जाय।

लक्षण—लक्षण स्थिति के ऊपर आश्रित हैं। किसी में रक्त-स्राव बहुत थोड़ा होता है, और किसी में अधिक, तथा किसी में एकदम अधिक. रक्त-स्राव होने से मृत्यु हो जाती है। कभी कमल के छुटने से भी मृत्यु हो जाती है। परंतु यदि थोड़ा कमल रहे, तो
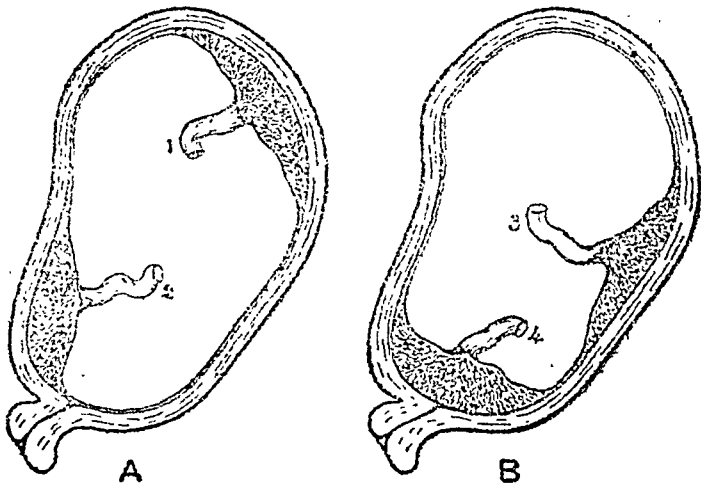
चित्र ३२—कमल के गर्भाशय में भिन्न-भिन्न रूप

गर्भ जीवित रहता है। यदि रक्त-स्राव गर्भाशय में रहे, तो अंतः-रक्त-स्राव और यदि रक्त बाहर आवे, तो बहिःरक्त-स्राव कहा जाता है।

यदि शिशु मर जाय, और रक्त-स्राव बाह्य हो, तो गर्भाशय छोटा हो जाता है। कारण, गर्भ-जल सूख जाता है। और यदि रक्त-स्राव अंतर् का हो, तो गर्भाशय रक्त के जमने के कारण बड़ा हो जाता है।

यदि शिशु मरा न हो, और रक्त-स्राव बाह्य हो, तो गर्भाशय गर्भ के परिमाण में बड़ा होता है। परंतु यदि रक्त-स्राव अंदर का हो, तो गर्भाशय गर्भावस्था की अपेक्षा बड़ा हो जाता है। यदि गर्भाशय में विष पहुँच जाय, तो प्रवाही स्राव में दुर्गंध होती है, और विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रक्त-स्राव के कारण जननी लगातार निर्बल और पांडु हो जाती है।

चिकित्सा—जननी को पीठ के बल बिस्तर पर सुला देना चाहिए। यदि विष थोड़ा हो, तो उसे क्षय करना चाहिए। नीचे लिखी अवस्थाओं में चिकित्सक की अवश्य आवश्यकता पड़ती है—

(१) अधिक रक्त-स्राव होने से यदि प्राण जाने का भय हो, या रक्त बंद होने का कोई लक्षण दिखाई न दे।

(२) यदि प्रवाही में वास आती हो।

(३) यदि गर्भ दिखाई देता हो, तो गर्भाशय एकदम ख़ाली कर देना चाहिए।

गर्भावस्था के पिछले चार मासों में जो रक्त-स्राव होता है, वह दो प्रकार का है—प्रथम को आकस्मिक रक्त-स्राव और दूसरे को असाध्य रक्त-स्राव कहते हैं, जो 'प्लैसंटा प्रीविया' के कारण होता है।

आकस्मिक रक्त-स्राव—कमल के अचानक छुटने पर स्राव हो जाता है।

कारण—गर्भ-स्राव या गर्भ-पात के कारणों से कमल के छुटने से रक्त-स्राव हो जाता है। इनमें से मुख्य कारण 'गर्भाशय का अंतः-शोथ' एवं वृक्क-विकार हैं। कमल पेट के ऊपर आघात लगने से या ऊँचे से कूदने पर भी छुट जाता है।

भेद—आकस्मिक रक्त-स्राव के दो भेद हैं—(१) गुप्त (अप्रकाश्य) रक्त-स्राव और (२) प्रकाश्य आकस्मिक रक्त-स्राव।

कंसील्ड एक्सी डैंटल हैमरेज (छिपा [अप्रकाश्य] रक्त-स्राव)—कमल के छुटने से जो रक्त-स्राव होता है, वह बाहर न आकर गर्भाशय में ही रहता है, जिससे गर्भाशय का आकार बढ़ा हो जाता है। इस प्रकार रक्त के अंदर जम जाने से रोगिणी बहुधा मर जाती है। सूतिकावस्था के रोगों में यह सबसे भयानक है। भाग्य से यह बहुत कम होता है।

लक्षण—इसकी निशानियाँ अंतःरक्त-स्राव से मिलती हैं। रोगिणी उदास, शरीर का ताप नीचे (कौलेप्स), नाड़ी निर्बल और तेज़, पेट में कठोर तथा तीव्र वेदना, चेहरा फीका और गर्भाशय बढ़ा

होता है, जो हाथ लगाने से दुखता है । गर्भ के अवयवों का स्पर्श नहीं किया जा सकता ।

चिकित्सा—चिकित्सक के आने से पूर्व पेट के ऊपर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिए । इससे रक्त अंदर एकत्रित नहीं हो सकेगा।। यह क्रिया तब करनी चाहिए, जब प्रसूति प्रारंभ न हुई हो । और, यदि प्रसूति प्रारंभ हो जाय, एवं डॉक्टर के आने में देरी हो, तो 'गर्भ-पटल' फाड़ देना चाहिए । अथवा अंतःरक्त-स्राव को बहिःरक्त-स्राव कर देना चाहिए । इसके लिये धात्री को चाहिए कि हाथों को साफ़ करके गर्भाशय के निचले भाग में मुड़े गर्भ-पटल को पृथक् कर दे । इससे अंतःरक्त-स्राव बाहर आ जायगा । फिर गर्भाशय-गुहा से रक्त निकालने के लिये पेट पर कसकर पट्टी बाँधनी चाहिए । चिकित्सक आकर या तो शिशु को बाहर कर देगा, अथवा अवस्था भयानक होने पर गर्भाशय को निकाल देगा ।

एक्सटर्नल एक्सीडेंटल हैमरेज़ (बाह्य आकस्मिक रक्त-स्राव)—यह अंतः रक्त-स्राव की भाँति भयानक नहीं है । कई बार फटी रक्त-वाहिनी में से जो रक्त-स्राव होता है, वह सब बाहर हो जाता है । कई बार थोड़ा-सा छिपा रक्त-स्राव होता है, परंतु वह अंदर न रह सकने के कारण बाहर आ जाता है ।

लक्षण—रक्त का आना सबसे बड़ी निशानी है । पीड़ा रक्त-स्राव की मात्रा पर निर्भर है । यदि रक्त-स्राव बंद न हो, तो जननी सहसा निर्बल और उदास हो जाती है ।

परीक्षा-विधि—सबसे प्रथम योनि-मार्ग में से 'प्लेसंटा प्रीविया' की परीक्षा करनी चाहिए । यदि कमल ग्रीवा के मुख पर या उसके समीप होगा, तो कमल की किनारी का स्पर्श हो जायगा । परीक्षा सावधानी से करनी चाहिए । यदि कमल हाथ को न लगे, तो भी उँगली के स्पर्श से रक्त-स्राव हो सकता है । कई बार पेट के ऊपर

से भी सिर की स्थिरता देखकर कमल के स्थान की परीक्षा कर सकते हैं।

चिकित्सा—रक्त-स्राव की चिकित्सा का मुख्य आधार जननी के तीव्र आकुंचनों पर है। यदि आकुंचन तीव्र हों, तो कोई भय नहीं है। पेट पर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिए, और गरम डूश देना चाहिए। यदि रक्त-स्राव बंद न हो, तो धात्री को चाहिए कि योनि में पिचु (पला) भर दे। यदि जननी प्रसूति में पूर्ण रूप से हो, तो गर्भ-पटल फाड़ देना चाहिए। इसके फाड़ने से कमल पर संकुचनों का दबाव नहीं होता।

पिचु लगाने से अंतः दबाव बढ़कर रक्त-स्राव बंद कर देता है। इसके पश्चात् ऐसा यत्न करना चाहिए, जिससे प्रसूति धीरे-धीरे हो।

पिचु देने की विधि—जननी को बिस्तर पर तिरछा लेटाकर बाह्य अंगों को धोकर डूश दे। फिर 'आयडोफ़ार्म गॉज़' को (जो लाईजोल लोशन में भीगा हो) गर्भाशय-मुख के आस-पास जितना हो सके, कसकर भर देना चाहिए। फिर नरम रुई को 'लाईजोल' घोल में भिगोकर योनि में पिचु दे देना चाहिए। आयडोफ़ार्म गॉज़ के स्थान में विलायती रुई व्यवहार करना चाहिए। फिर जननी को बिस्तर पर सीधा लेटाकर पेट पर पट्टी इस प्रकार बाँधनी चाहिए, जिससे गर्भाशय उसके और पिचु के बीच में दब जाय। जब तक आकुंचन तीव्र न हों, पिचु नहीं निकालना चाहिए। आकुंचन तीन-चार घंटे में आते हैं। १२ घंटे बाद पिचु निकाल देना चाहिए। अन्यथा संक्रमण हो जायगा। यदि पिचु निकालने पर फिर रक्त-स्राव हो, तो दूसरा पिचु दे देना चाहिए।

अनएवोडी एब्ल हैमरेज (अवश्यंभावी रक्त-स्राव)—

प्लैसंटा प्रीविया—कमल निचाई में होने के कारण छुट जाता है, जिससे रक्त-स्राव होता है। १८० में १ होता है।

कारण—निश्चित कारण अज्ञात है। कई कल्पनाएँ की गई हैं। परंतु यह निश्चित है कि 'शोथ' इसमें मुख्य कारण है।

रक्त जाने का कारण यह है कि नीचे लगा कमल छुट जाता है, जिससे गर्भाशय-भित्ति से रक्त-स्राव होता है। इस अवस्था में गर्भावस्था के सातवें मास में कमल गिरता है। यदि प्रसूति के प्रारंभ में ऐसा हो, तो इसका कारण खिंचाव है। यदि यह प्रसूति के मध्य में हो, तो इसका कारण गर्भाशय के अंतर्मुख का खुलना है। अंत में जननी की पीड़ा या आघात से भी कमल छुट जाता है।

भेद—तीन मुख्य भेद हैं—

सैंट्रल (केंद्रवर्ती)—गर्भाशय के अंतर्मुख के ठीक ऊपर कमल बनता है।

मार्जिनल (पार्श्ववर्ती)—इसमें कमल बंद गर्भाशय के अंतर्मुख की किनारी तक आ जाता है।

लैटरल (पश्चाद्‌वर्ती)—इसमें कमल का एक भाग गर्भाशय के निचले भाग में रहता है। परंतु मुख तक नहीं आता।

लक्षण—सात मास के पीछे कभी रक्त-स्राव होना मुख्य लक्षण है। यदि रक्त बंद न हो, तो जननी के मरने की संभावना है।

परीक्षा-विधि—योनि-मार्ग की परीक्षा से जाना जा सकता है। यदि कमल गर्भाशय-मुख में से या योनि-मार्ग से छुआ जा सके, तो वह असाधारण रूप से नीचे है। पेट की परीक्षा से भी जाना जा सकता है। यदि गर्भ का दर्शन साधारण हो, तो कमल नीचे नहीं होता।

चिकित्सा—जब तक चिकित्सक न आवे, धात्री को चाहिए कि पेट पर पट्टी बाँधकर गरम पिचकारी दे। यदि आकुंचन तीव्र हों, तो गर्भ-पटल तोड़ देने चाहिए। कई बार इतने से रक्त-स्राव बंद हो जाता है।

यदि आकुंचन तीव्र न हों, तो गर्भ-पटल को नहीं तोड़ना चाहिए।

चिकित्सक को चिकित्सा करने से पूर्व यह जानना चाहिए कि जननी प्रसूति में है या नहीं। प्रायः प्रसूति में नहीं होती। ऐसी अवस्था में 'ब्रेकसटन हिकस' की चिकित्सा करनी चाहिए। इसकी विधि यह है कि गर्भ को नितंबोदय में कर देना चाहिए। आवरण-कलाएँ फाड़कर, एक पाँव को नीचे खींचकर निकाल लेना चाहिए। इससे प्रसूति आरंभ हो जायगी, एवं नितंब के कमल पर दवाव पड़ने से रक्तवाहिनियाँ भिंच जायँगी। पाँव के ऊपर एक पतला टुकड़ा 'गॉज' का बाँध देना चाहिए। यदि अधिक रक्त आता है, तो 'गॉज' को शनैः-शनैः खींचना चाहिए। इससे शिशु ज़रा नीचे आवेगा, और कमल पर दबाव पड़ जायगा।

जब जननी प्रसूति में न हो, तो यह विधि रक्त-स्राव बंद करने के लिये सबसे उत्तम है। इसको सफल करने के लिये जब तक गर्भाशय-मुख दो अंगुल न खुला हो, आवरण-कलाएँ नहीं फाड़नी चाहिए। यदि मुख खुल जाय, और रक्त-स्राव अधिक हो, तो पिचु लगाकर 'वर्शन' कर देना चाहिए।

उपद्रव—मुख्य विष-संक्रमण है।

पच्चीसवाँ प्रकरण

सहसा प्रसव, गर्भाशय की अचेतनता और कमल का अंदर रहना

केचिदस्या अपरा प्रपन्नाऽप्रपन्ना वेति। तस्याश्चेदपरा न प्रपन्ना स्यादथैनां अन्यतमा स्त्री दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद्बलवन्निष्पीड्य सव्येन पृष्ठत उपसंगृह्य सुनिर्धूतं निर्धूनियात्। अथास्याः पादपार्ष्ण्याः श्रोणीमाकारयेत्। तस्याः स्फिचावुपसंगृह्य सुपीडितं पीडयेत्। अथास्या बाल वेरया कंठतालु परिस्पृशेत्। भूर्जपत्रे काचमणि सर्पिनिर्मोके धूमैश्चास्या योनिं धूपयेत्। (चरक)

शालिमूलकल्कं वा पिप्पल्यादि मथेन।

एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरबस्तिं दद्यात् स्निग्धेन वा कृत्तनखेन हस्तेनापहरेत्।

अथापतंतामिपरां पातयेद् पूर्ववद्भिषक्;
हस्तेनापहरेद्वापि पार्श्वाभ्यां परिपीड्य वा। (सुश्रुत)

प्रैसिपिटेड लेबर (सहसा प्रसव)—इसमें गर्भ जल्दी से बाहर आ जाता है। गर्भाशय के तीव्र सहसा आकुंचनों के कारण बिना गर्भाशय के मुख के खुले ही शिशु बाहर हो जाता एवं कई बार जननी के बिना तैयार हुए भी शिशु बाहर आ जाता है। ऐसी अवस्था में नाल टूट जाती है, कलाएँ फट जाती हैं, गर्भाशय उलट जाता या शिशु मर जाता है। और कई बार सीवन (भगगुदांतर स्थान) फट जाती है।

चिकित्सा—यदि सहसा प्रसव पतन हो जाय, और आकुंचन आरंभ हों, तो जननी को बिस्तर पर लेटा देना और उसे उठने नहीं देना चाहिए। यथासंभव सहसा प्रसव न होने देना चाहिए। कई बार मल-त्याग की इच्छा होने पर आकुंचनों से उस समय प्रसव हो जाता है। इस समय यदि जननी टट्टी में जाय, तो शिशु के ऊपर आपत्ति आ सकती है।

यूटराइन इनशिया (गर्भाशय की अचेतनता)—कई बार गर्भाशय के आकुंचन इतने निर्बल होते हैं कि शिशु को उत्पन्न नहीं कर सकते, या चिरकाल में उत्पन्न करते हैं।

यह अचेतनता दो प्रकार की है—प्राइमरी (प्राथमिक) और सैकंडरी (द्वितीय) अचेतनता।

प्राथमिक अचेतनता—इसमें गर्भाशय प्रसूति के प्रारंभ से ही निर्बल होता है, और कभी वेग से संकुचित नहीं होता।

कारण—कई कारण हैं, यथा गर्भाशय के स्नायुओं की निर्बलता, गर्भाशय के मांस के रोग, गर्भ-जल की बड़ी मात्रा, युगल प्रसूति, अर्बुद, ज्वर, अपूर्ण भोजन आदि से गर्भाशय सुस्त रहता है।

लक्षण—आकुंचनों के निर्बल होने से गर्भाशय का मुख देर में खुलता है। आवरण-कलाएँ संकोच के समय थोड़ी बाहर आती हैं। सिर पर 'सिसेडैनम' प्रतीत नहीं होता। संकोच के समय गर्भाशय कठोर नहीं होता।

यदि सिर वस्ति में चिरकाल तक रहे, तो प्रसूता बीमार तथा बेचैन होती है, और लगातार चिरकालीन दबाव से योनि-मार्ग की भित्ति अथवा ग्रीवा का मुख सड़ जाता है। तृतीयावस्था में कमल या तो धीरे से बाहर आता या अंदर रह जाता है, जिससे प्रायः 'एटोनिक पोस्ट मार्टम हैमरेज' हो जाता है।

चिकित्सा—गर्भाशय के आकुंचनों को बल देने के लिये दीवारों

को मलना या योनि-मार्ग में गरम डूश देना चाहिए। यदि यह चिकित्सा सफल न हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिए। शायद हथियार प्रयोग करना पड़े। प्रसूति के पीछे होनेवाले रक्त-स्राव के लिये सदा तैयार रहना चाहिए।

द्वितीय अचेतनता—इसमें गर्भाशय प्रसूति के प्रारंभ में तो सबल होता है, परंतु ज्यों-ज्यों प्रसूति आगे बढ़ती जाती है, गर्भाशय निर्बल होता जाता और अंत में सर्वथा क्रिया-शून्य हो जाता है।

कारण—उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त जिन कारणों से प्रसव में बाधा होती है, वे सब कारण इसके हैं। यथा भरे हुए मूत्राशय और गुदा, गर्भ का बड़ा सिर, झुलती लंबी पीठ, जननी का उदास या धैर्य-रहित होना, नरम भागों का जड़ हो जाना या न फैलना, योनि के आकार में किसी प्रकार का संकोच आना।

लक्षण—गर्भाशय धीरे-धीरे निर्बल हो जाता है। यदि जन्म दिए बिना चिरकाल तक पड़ा रहे, तो प्रथमावस्था के लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—मार्ग में रुकावट या भरे हुए मूत्राशय और गुदा को खाली कर देना चाहिए। यदि गर्भाशय एक पार्श्व में गिरा हो या झुलता हो, तो पट्टी बाँधकर ठीक करना चाहिए। जननी को सुलाने का यत्न करना, जिससे उसे बल मिलता है *। यदि इससे भी सफलता न हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

रिटेंड प्लेसंटा (कमल का अंदर रहना)—साधारणतः प्रसूति की तृतीयावस्था में कमल १०,२०,३० मिनट में 'डवलीन' की विधि से बाहर आ जाता है। यदि रक्त-स्राव न हो, तो एक घंटे तक प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए। इसके पश्चात् निम्न-लिखित प्रकार से बाहर करना चाहिए।

---

* निद्रायत्तं सुखं दुःखं तुष्टिः पुष्टिः कार्श्यबलाऽबलम्। (चरक)

कारण—गर्भाशय की अचेतनता, गर्भाशय और कमल में अस्वाभाविक जोड़, आवरण-कला-जैसा पतला कमल, गर्भाशय का घड़ी के शीशे की भाँति का संकोच। दाई यदि तृतीयावस्था में गर्भाशय के निचले भाग को मलती है, तो गर्भाशय के निचले भाग में संकुचन बंद हो जाता है, जिससे कमल का बाहर आना रुक जाता है।

चिकित्सा—यदि संकोच घड़ी के शीशे की भाँति हो रहे हों, तो गर्भाशय के शिखर को मलना चाहिए, जिससे स्वाभाविक रीति से कमल बाहर आ जाय। यदि इस प्रकार बाहर न आवे, तो 'डब्लीन' की विधि से बाहर कर देना चाहिए। यदि यह विधि भी सफल न हो, तो एक हाथ गर्भाशय में डालकर कमल को गर्भाशय के किनारों से पृथक् करना चाहिए। यह क्रिया तभी करना चाहिए, जब रक्त-स्राव अधिक हो, एवं चिकित्सक न मिले। इसमें हाथों की शुद्धता अति आवश्यक है।

विधि—रोगिणी को बिस्तर पर तिरछी लेटाकर बाहर के भागों को पूर्ण रूप से साफ़ करके मूत्राशय को साफ़ कर दे। दाहने हाथ की उँगलियाँ मिलाकर हाथ डालना चाहिए। परंतु 'गर्भ-पटल' के ऊपर बाहर हाथ रखना चाहिए। दूसरा हाथ गर्भाशय के शिखर पर रखकर गर्भाशय को नीचे दबाना चाहिए, जिससे शिखर गर्भाशय में प्रविष्ट उँगलियों के समीप आ जाय। अंतःप्रविष्ट उँगलियों से कमल की किनारी पहचानकर, छुटी किनारी को ढूँढ़कर इस प्रकार पृथक् करें, जैसे कोई काट रहा हो। समस्त कमल को एक साथ बाहर करने का यत्न करना चाहिए। जब सब छुट जाय, तब हाथ में पकड़कर बाहर निकाल लेना चाहिए। फिर कोई अंश गर्भाशय में न रह जाय। इसकी परीक्षा के लिये पुनः गर्भाशय में हाथ प्रविष्ट करना चाहिए। परंतु प्रविष्ट करने से पूर्व हाथ को 'लाइ जोल घोल' में भिगो लेना चाहिए। सब टुकड़े निकालकर गर्भाशय को पिचकारी

द्वारा 'लाईट जोल घोल' से धो देना चाहिए। जननी को विस्तर पर चित सुला देना चाहिए।

जब हाथ अंदर प्रविष्ट हो, और घड़ी के शीशे की भाँति के संकोच प्रतीत हों, तथा 'रीट्रैक्शन रीग' बंद हो जाय, तो हाथ को अति सावधानी से धीरे-धीरे अंदर प्रविष्ट करना चाहिए। अधिक ज़ोर लगने से गर्भाशय फट सकता है।

इस विधि में शांति, धैर्य और स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखना चाहिए*।

---

* हाथों पर स्टरलाईज़्ड (रबर के दस्ताने) अवश्य पहनने चाहिए।

छब्बीसवाँ प्रकरण

वस्ति-प्रदेश का बेडौलपन

जिस वस्ति का व्यास साधारण वस्ति से कम हो, उसे संकुचित वस्ति कहते हैं।

वस्ति-गुहा के साधारण व्यास ये हैं—

अग्रिम-पश्चिम व्यास ४ से ४$\frac{१}{२}$ इंच।

तिर्यक् व्यास (२) ५ ,,

दिगंतसम व्यास ५$\frac{१}{४}$,,

वस्ति बहिर्द्वार का व्यास—

अग्रिम-पश्चिम व्यास ३$\frac{४}{५}$ इंच।

दिगंतसम व्यास ४$\frac{२}{५}$,,

बेडौल वस्ति के निम्न-लिखित भेद हैं—

(१) 'जनरल कंट्रैक्टेड' (संकुचित वस्ति) और 'ड्वार्फ़ पैलविस' (ठिगनी वस्ति)—इसमें व्यास साधारण की अपेक्षा छोटे होते हैं। प्रायः प्रथम प्रकार की वस्ति छोटे क़द की स्त्रियों में होती है। कभी-कभी बड़ी स्त्रियों में भी देखी जाती है, और द्वितीय प्रकार की वस्ति ठिगनी स्त्रियों में होती है।

(२) 'फ़्लैटंड पैलविस' (चपटी वस्ति)—यह साधारण भेद है। इसमें अग्रिम-पश्चिम व्यास छोटा होता है, और अन्य व्यास या तो साधारण होते हैं, या कुछ ही छोटे होते हैं। इनके तीन भेद हैं—

(१) सिंपल फ़्लैट पैलविस, (२) रीकेटी फ़्लैट पैलविस और (३) जनरल कॅंट्रैक्ट पैलविस।

सिंपल फ़्लैट पैलविस—या तो यह स्वाभाविक जन्म से होती है, या बचपन में भारी बोझ उठाने से हो जाती है। इसमें वस्ति-तीर
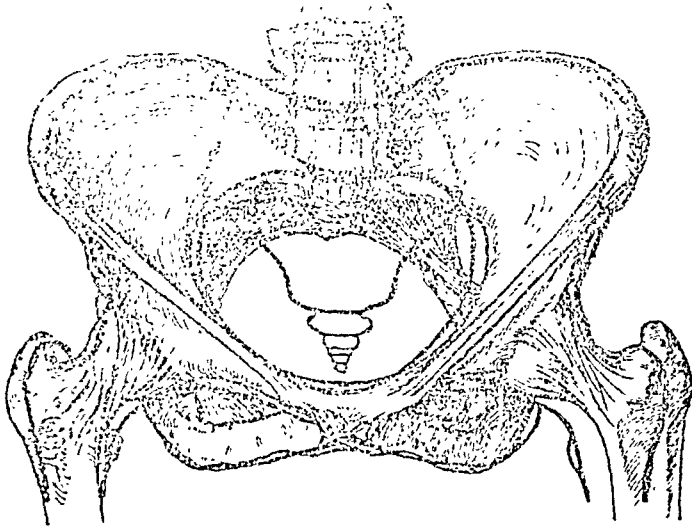
चित्र ३३—सिंपल फ़्लैट पैलविस
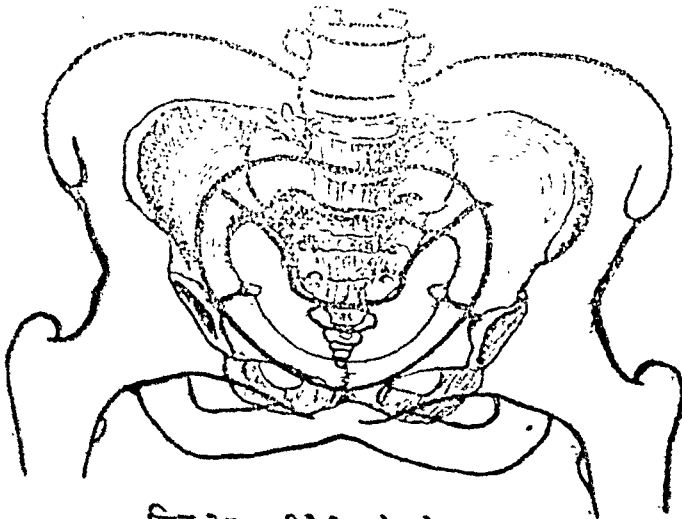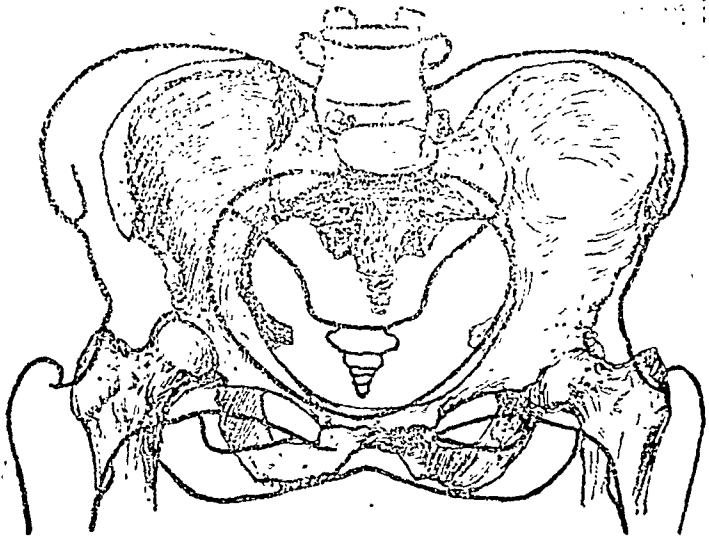
चित्र ३४—रीकेटी फ़्लैट पैलविस

चित्र २९—जनरल कैंट्रैक्स पैलविस

का अग्रिम-पश्चिम व्यास छोटा हो जाता है, और अन्य दोनों व्यास साधारण वस्ति से बड़े हो जाते हैं।

रीकेटी फ़्लैट पैलविस—बचपन की अस्थि-निर्बलता से होती है। अग्रिम-पश्चिम व्यास थोड़ा छोटा होता है, और दिगंतसम व्यास आकुंचनों के समय लंबाई में बढ़ जाता है। परंतु साधारणतः छोटा होता है।

जनरल कैंट्रैक्स पैलविस—यह या तो बचपन में रिकेट के कारण होती है या अन्य कारण से। इसमें व्यास साधारण वस्ति से छोटे होते हैं। विशेषतः अग्रिम-पश्चिम व्यास विशेष छोटा होता है।

परीक्षा-विधि—एक धात्री रोगिणी जननी को देखकर या लक्षणों पर से संकुचित वस्ति को पहचान सकती है। इसके अतिरिक्त अग्रिम-पश्चिम व्यास योनि-मार्ग के व्यास से सुगमता से जाना जा सकता है।

निरीक्षण—निम्न-लिखित लक्षण देखकर संकुचित वस्ति का ज्ञान कर लेना चाहिए—

(१) मेरुदंड का अंतिम छोर कमर में होता है, (२) पाँव छोटे या बड़े, (३) पसलियाँ छोटी, (४) ठिगना क़द, (५) झूलता पेट (गर्भाशय-च्युति) ।

इतिहास—बाल्यावस्था का इतिहास जानना चाहिए । बाल्यावस्था में रिकेट का रोग, दाँतों का देर में आना, योग्य आयु में चलने में अशक्ति ।

प्रथम प्रसव का इतिहास—प्रथम प्रसव सुगम हुआ या कठिनता से, मृत हुआ या जीवित ।

लक्षण—एक संकुचित वस्ति गर्भावस्था के प्रथम मासों में उलटे हुए गर्भाशय को बाहर कर सकती है । पिछले दिनों में गर्भाशय और गर्भोदय तंग किनारीवाली वस्ति में नीचे नहीं आ सकते, और गर्भाशय का ऊर्ध्वांश पीछे की ओर ढकेला जाता है । इससे गर्भाशय गिर जाता है ।

निम्न-लिखित कारणों से प्रसूति कठिन हो जाती है—

(१) तंग किनारी सिर को नीचे उतरते समय रोकती है । (२) अस्वाभाविक दर्शन हो जाता है । (३) गर्भाशय-च्युति के कारण पूरी सहायता नहीं मिलती । (४) जब सिर गर्भाशय के निचले भाग में स्थिर नहीं होता, तो गर्भ-पटल शीघ्र फटने से जरायु-जल बह जाता है । इससे गर्भाशय का मुख खुल नहीं सकता । इसके विपरीत गर्भाशय-शिखर चौड़ा हो जाता है । यदि सिर तीर में से न निकल सके, तो कनल का मुख कभी खुल नहीं सकता । प्रथम तो गर्भाशय पूर्ण शक्तिशाली होता है । अतः पूर्ण रूप से सिर को तीर में प्रविष्ट करने का यत्न करना चाहिए । इससे या तो गर्भाशय फट जाता है, या स्नायु धीरे-धीरे थककर शांत हो जाती या पीछे से अचेतन हो जाती है ।

परीक्षा—(१) पेट साधारणावस्था की तरह लटकता और बाहर गिरता होता है। (२) शिरोदर्शन हो, तो वह रुक जाता है। (३) शिरोदर्शन साधारण हो, तो तीर से ऊँचा होता है।

इसके पश्चात् धात्री को चाहिए कि वस्ति का अंदर से व्यास अवश्य ले। निम्न-लिखित तीन व्यासों को बाहर से लेना आवश्यक है।

(१) ईलीयम की अगली और ऊपर की दोनो पार्श्वों की ट्युबरोसिटी के बीच में।

(२) दोनो पार्श्वों की 'ईलीयम' की किनारी के बीच से सबसे दूर के स्थान तक।

(३) बाह्य अग्रिम-पश्चिम व्यास।

यह माप वस्तिमापक यंत्र (मारटीन के वस्तिमापक) से ले सकते हैं। धात्री जननी के पास बैठे, जिससे उसका मुख जननी के मुख की ओर रहे। फिर दोनो हथेली में यंत्र को पकड़कर दोनो छोरों पर अँगूठा रखना चाहिए। हथियार रखने के लिये प्रथम स्थान को ढूँढ़ लेना चाहिए। अग्रिम-पश्चिम व्यास के लिये जननी को पार्श्व के बल लेटाना चाहिए। अपनी ओर जननी की पीठ रखनी चाहिए। एक किनारा 'लंबर वरट्रीब्रा' की ट्युबरोसिटी के निचले खंड में रखना चाहिए और दूसरा विटप-संधि की किनारी में।

बाह्य अग्रिम-पश्चिम का व्यास साधारणतः ८ इंच होता है। वह यदि ६$\frac{1}{8}$ इंच से कम हो, तो संकुचित वस्ति जाननी चाहिए। दोनो ईलीयम की ट्युबरोसिटी के बीच का व्यास १०$\frac{1}{8}$ इंच होता है, और ईलीयम की दोनो किनारी के बीच का अंतर ११$\frac{1}{2}$ इंच है। यदि यह व्यास भी छोटा हो, तो वस्ति संकुचित है, ऐसा जानना। परंतु यदि अंतर $\frac{3}{4}$ इंच हो, और शिशु का प्रमाण बदला हो, तो संकुचित वस्ति के होने में कोई संदेह नहीं।

चिकित्सा—संकुचित वस्ति की चिकित्सा अवस्थानुसार होती है। अति संकुचित अवस्था में 'प्युबिओटोमी' (विटप-संधि का काटना), 'सीजरीयन सैक्सन' (पेट चीरकर गर्भ बाहर निकालना) या 'परफ़ोरेशन ऑफ़् दी हैड' करना चाहिए। थोड़ी संकुचित वस्ति में पूर्ण समय से पूर्व प्रसूति कराने का यत्न करना चाहिए। शिशु को नितंबोदय करना उस समय उत्तम है, जब वस्ति स्वाभाविक रूप से संकुचित हो। इस अवस्था में सिर को तीर में दबाकर भी बाहर कर देना चाहिए। नितंबोदय करने में लाभ यह है कि जब सिर पीछे आता है, तो शिशु सुगमता से बाहर आ जाता है। सिर यदि नीचे रहे, तो यदि वह घंटे-भर भी पड़ा रहे, तो भी शिशु के जीवन का भय नहीं। परंतु जब सिर पीछे आता है, तो वस्ति में से दो मिनट के अंदर बाहर कर देना चाहिए, नहीं तो शिशु मर जायगा।

सिर को वस्ति-तीर में से उतारने के लिये धात्री को चाहिए कि जननी को 'वोलचर' स्थिति में लेटा दे। इसका वर्णन आगे किया जायगा।

इस स्थिति में लाभ अधिक है, अतः जननी को तिरछा सुलाना चाहिए, और नितंबों को विस्तर के पार्श्वों से नीचे बाहर लटकता रहने देना चाहिए। पाँव कुर्सी पर टिका देने चाहिए। प्रत्येक आकुंचनों के समय कुर्सी निकाल लेनी चाहिए, और पाँव झूलते रहने चाहिए। आकुंचनों के पीछे कुर्सी की सहायता दे देनी चाहिए। इस स्थिति में रहने से कठिनता नहीं होती।

सत्ताईसवाँ प्रकरण

फँसे हुए नितंब तथा स्कंध

नाल का नीचे उतर आना

गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ;
मूढः करोति पवनः खलु मूढ गर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ।

..........सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ;
ततोऽभ्यक्तशरीरायै योनौ स्नेहं निधापयेत् ।
एवं शुद्धा भवेद्योनिः तच्छूलं चोपशाम्यति ।

कृष्णादि योग—

(१) कृष्णा तन्मूल शुंठ्येला हिंगु भार्गी सदीप्यकाः ;
वचामतिविसां रास्नां चव्यं संचूर्ण्य पाययेत् ।

(२) परुसक शिफालेपः स्थिरा मूलकृतोऽथवा ;

(३) मूलं प्रत्यक् पुष्पायः पठायाश्च विनिवेशितं गुह्ये ।
कटुतुम्बाहिनिर्मोके कृतवेधनसर्षपैः ;
कटुतैलान्वितो धूपो योनेः पातयतेऽपराम् । (गदनिग्रह)

एरेस्टेड ब्रीच (फँसे हुए नितंब)—नितंब के बड़े होने के कारण या वस्ति छोटी हो, तो नितंब फँस जाते हैं। गर्भाशय के बलवान् आकुंचन भी नितंबों को आगे सरका नहीं सकते ।

चिकित्सा—चिकित्सक का आना आवश्यक है । तब तक योनि-मार्ग में हाथ डालकर एक पाँव खींच लेना चाहिए ।

इंप्रैक्टडशोल्डर (फँसे हुए स्कंध)—कई बार सिर के बाहर आने पर स्कंध स्थिर हो जाते हैं । इसका कारण क़द का बड़ा होना है,
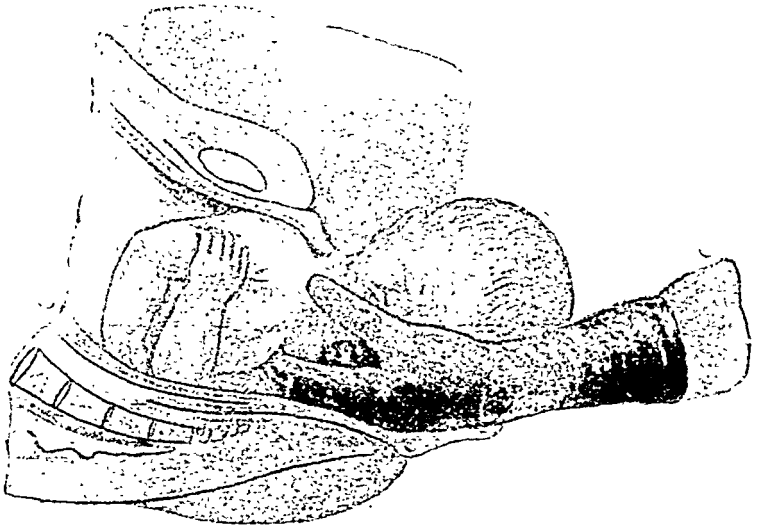
चित्र १५—योनि-मार्ग में स्कंध का फँसना (पृष्ठ २१६)

अथवा आकुंचनों के कारण वस्ति में यथावत् घूम न सकें, तो अटक जाते हैं।

चिकित्सा—यदि सिर के बाहर आने पर कंधे सहसा बाहर न आवें, और सिर खींचने पर स्कंध बाहर न आवें, तो गर्भाशय के शिखर पर दृढ़ दबाव देना चाहिए। यदि इससे भी बाहर न आवें, तो योनि-मार्ग में हाथ प्रवेश करके शिशु की ग्रीवा के पीछे एक हाथ का थोड़ा भाग रक्खें। यदि लेटी हुई जननी की पुच्छास्थि के समीप शिशु की बग़ल हो, तो उसके अंदर एक उँगली डालने का यत्न करना चाहिए। यदि इसमें सफलता मिल जाय, तो बग़ल में उँगलियाँ घुसाकर बग़लवाले भाग को नीचे खींचने का यत्न करना चाहिए। यदि इसमें सफलता मिले, तो उँगलियों को बहुत अंदर ले जाकर, शिशु की ग्रीवा को आगे ले जाकर दूसरी बग़ल में घुसेड़ने का यत्न करना चाहिए, और फिर खींचना चाहिए। यदि शिशु ज़रा अधिक नीचे हो, तो दोनो हाथों की दो-दो उँगलियाँ प्रत्येक बग़ल में घुसेड़कर एक ही समय दोनो बग़लों को खींचना चाहिए।

यदि बग़ल तक हाथ न पहुँच सके, या खींचने से बाहर न आवे, तो एक या दोनो हाथ नीचे लाने चाहिए। इसके लिये योनि-मार्ग की दीवार और शिशु की छाती के मध्य में से संपूर्ण हाथ अंदर प्रवेश करके वस्ति के पिछले भाग के समीप शिशु का जो हाथ हो, उसे शीघ्र निकालकर उसके पीछे दो उँगलियाँ कोहनी तक पहुँचानी चाहिए। इसके उपरांत हाथ को कोहनी पर मोड़ना चाहिए। इस प्रकार करने से हाथ नीचे कर सकते हैं, और शिशु पकड़कर बाहर किया जा सकता है। इस प्रकार पिछला हाथ नीचे ला सकते हैं। इस उपाय से छाती की चौड़ाई दोनो स्कंधों की मोटाई के बराबर कम हो जाती है। दोनो हाथों को सिर पर लाकर खींच सकते हैं। इससे सफलता न हो, तो चिकित्सक को बुलाना

चाहिए। यदि शिशु बेहोश हो जाय, तो जन्म के पीछे थोड़े समय में सचेत हो जाता है।

प्रोलैप्स ऑफ़् दी कार्ड (नाल का नीचे आना)—

'प्रेजेनटेशन ऑफ़् दी कॉर्ड' का अर्थ यह है कि गर्भाशय में गर्भ-दर्शन से नीचे नाल होती है, और आवरण-कलाएँ फटी नहीं होतीं। परंतु जब कलाएँ फट जायँ, तब 'प्रोलैप्स ऑफ़् दी कॉर्ड' कहते हैं।

कारण—किसी भी कारण से गर्भाशय के निचले भाग में पूर्ण स्थिरता न होना। इसमें मुख्य कारण संकुचित वस्ति, चेहरे, नितंब, तिर्यक्, ललाट-दर्शन, जरायु-जल की बड़ी मात्रा या बहुगर्भ है।

इन सब कारणों से गर्भ नीचे स्थिर नहीं होता। अतः कलाओं के फटने पर जब जरायु-जल बहता है, तब नाल भी नीचे आ जाती है। कमल गर्भाशय के निचले भाग के साथ संयुक्त होने के कारण नाल नीचे उतर आती है। यह अवस्था 'प्लैसंटा प्रीविया' में या नाल के असाधारण लंबी होने पर या कमल में नाल का प्रवेश सिरे पर से हो (जिसे 'बैटल डोर प्लैसंटा कहते हैं), उसमें होती है।

परीक्षा-विधि—इसकी परीक्षा बहुत सरल है। योनि-मार्ग के अंदर नाल में बट मालूम होता है, या लटकती देख पड़ती है। योनि-मार्ग में कलाएँ नाल पड़ी होती हैं। यदि शिशु जीवित हो, तो स्पंदन होता है।

चिकित्सा—जब तक चिकित्सक आवे, तब तक धात्री को चाहिए कि नाल पर पड़े दबाव को कम करे। इसके लिये सबसे उत्तम विधि यह है कि जननी को 'ट्रेनडेलन बर्ग' की स्थिति में लेटावे, अर्थात् सिर नीचे रहे, और नितंब ऊँचे रहें। इस प्रकार करने से गुरुत्वा-कर्षण नियम के अनुसार गर्भ का दबाव गर्भाशय-शिखर की ओर
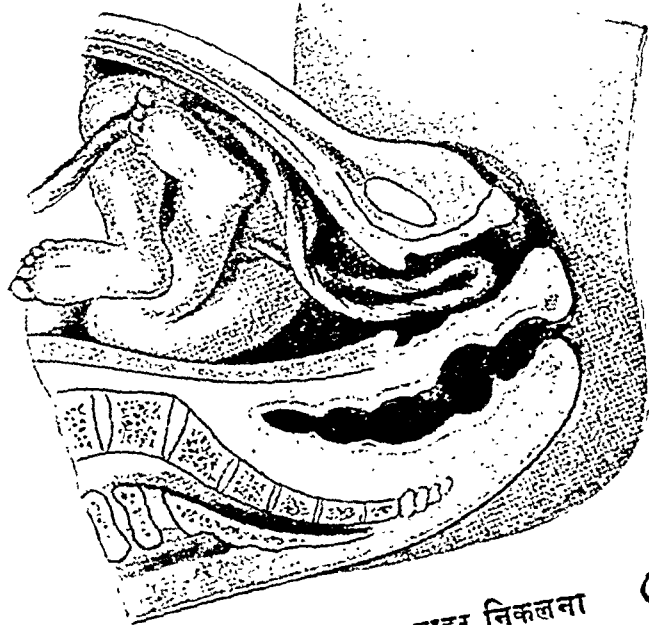
चित्र १६— नाल का बाहर निकलना (पृष्ठ २२०)
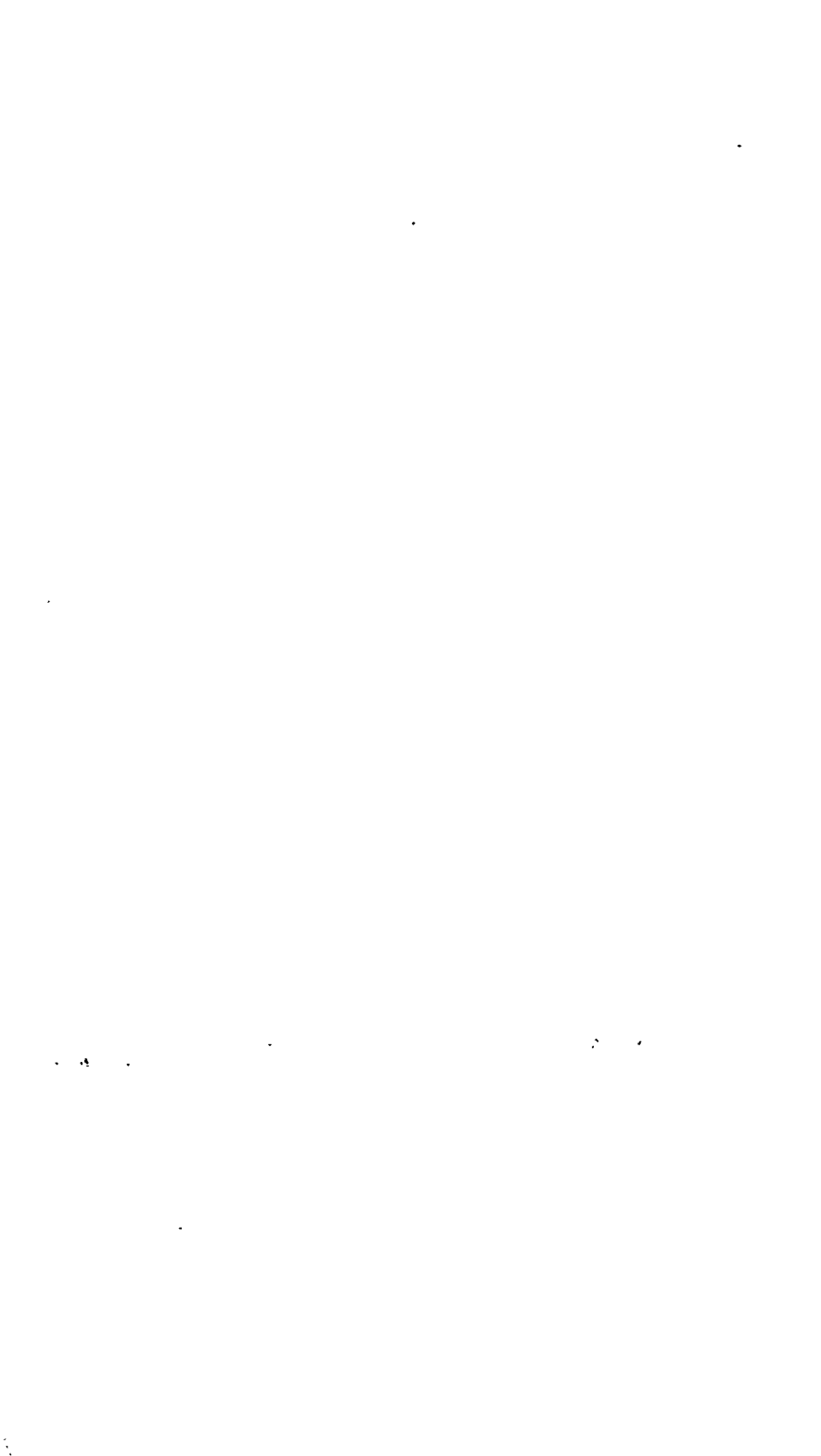
बढ़ जायगा, और नाल पर घट जायगा। इसके लिये प्रसूता स्त्री को कुर्सी उलटी करके (बिस्तर के पार्श्व में) उस पर गद्दे रख देने चाहिए। फिर जननी का सिर और स्कंध बिस्तर पर रखकर उसके धड़ को कुर्सी पर रक्खे, गद्दे पर रखकर पाँव कुर्सी के सबसे ऊँचे भाग पर रखने चाहिए। इसके पश्चात् शरीर ढलाव में रहे। शलभासन या पश्चिमोत्तानासन भी उत्तम है।

यदि जननी इस प्रकार न लेट सके, तो उसे 'नीचैस्ट' अवस्था में लेटाना चाहिए। पलंग पर पेट के बल लेटकर, सिर कंधे पर रखकर पाँव को पलंग पर रखते हुए बदन को ऊँचा उठावे। प्रकोष्ठ और घुटने पलंग पर लगे रहने चाहिए। इस स्थिति में देर तक रहना कठिन है।

यदि दो विधियाँ असफल हों, तो जिस दिशा में (दक्षिण पार्श्व में हो, तो) नाल निकले, उसी दिशा (दक्षिण पार्श्व) में ही लेटाना चाहिए। इस प्रकार गर्भ-दर्शन दूसरी ओर से ढलकर जाना संभव है। प्रसूता को कभी न तो खाँसना चाहिए, और न ज़ोर करना चाहिए। जब चिकित्सक आ जाय, तो निम्न-लिखित तीन प्रकार से चिकित्सा की जा सकती है। धात्री को अस्थिच्छेद का सब सामान तैयार रखना चाहिए।

(१) रिपोज़ीशन ऑफ् दी कॉर्ड (नाल को पीछे धकेलना)—इसके लिये धात्री को चाहिए कि वह 'रोबर्टसंस फ्युनीस रीपोज़ीटर' तैयार रक्खे। यदि यह न हो, तो पुरुषोपयोगी 'गम एलास्टीक कैथेटर' लेकर उसके छेद के सामने छेद करके, उसमें से डोरी (स्वच्छ) प्रवेश करके नाल में बाँधकर पीछे धकेल देते हैं।

(२) 'पौडलिक वर्शन' (चरण भ्रमण नितंबोदय कर देना)—इससे नाल पर दबाव कम आता है, या आता नहीं।

(३) शिशु शीघ्र उत्पन्न करा देना चाहिए। इसके लिये 'फॉर-

सिप्स' (प्रसव का चिमटा) का उपयोग कर सकते हैं। पाँव पहले हों, तो पाँव खींच लेना चाहिए। सिर को 'फॉरसिप्स' से निकालना चाहिए। यदि नाल में स्पंद न हो, हृदय-शब्द सुनाई न दे, तो समझना चाहिए कि शिशु मर गया है। फिर शीघ्र प्रसूति समाप्त करने से कोई लाभ नहीं। यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए।
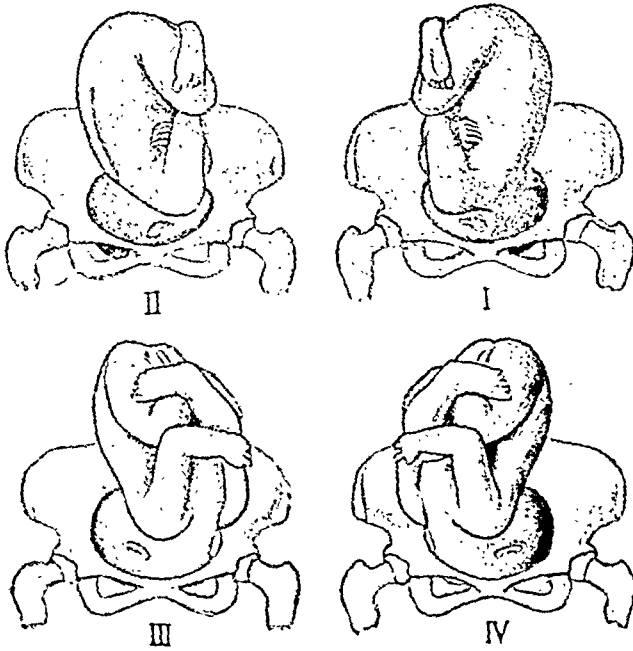
चित्र १०—शिरोदय के भिन्न-भिन्न रूप (पृष्ठ १२२)

अट्ठाईसवाँ प्रकरण

कठिन प्रसूति

कठिन प्रसूति के निम्न-लिखित कारण हैं—

माता से संबंधित—

(१) वस्ति का बेडौलपन ।

(२) रोग—(गर्भाशय, योनि-मार्ग तथा बाह्य छिपे भागों, हिव-प्रणाली एवं वस्ति-संबंधी) ।

(३) किसी भी भाग के जड़ या निर्बल होने से (गर्भाशय-मुख के और योनि-मार्ग के)

(४) गर्भाशय और योनि-मार्ग में प्राकृतिक त्रुटि ।

(५) गर्भाशय की अशुद्ध स्थिति ।

शिशु से संबंधित—

(१) असाधारण दर्शन, स्थिति या भिन्न-भिन्न भागों का एक दूसरे के साथ असाधारण संबंध ।

(२) असाधारण क़द, (संपूर्ण गर्भ का या स्कंध का) ।

(३) राक्षसी गर्भ ।

(४) गर्भ की प्राकृतिक रचना में त्रुटि या अर्बुद (ग्रंथि) ।

माता से संबंधित

(१) बेडौल वस्ति—इसका संपूर्ण वर्णन पहले किया जा चुका है ।

(२) रोग (गर्भाशय-विकार)—इनमें से जो प्रसूति के समय उत्पन्न

होता है, वह 'फाई ब्रौंइस' कैंसर अर्बुद है, जो नीचे लिखे प्रकार से कठिनता उत्पन्न करता है—

(१) गर्भाशय को निर्बल करता है, या पूर्ण रूप से संकुचित नहीं होने देता।

(२) गर्भ-दर्शन में नीचे आते हुए रोकता है।

(३) बच्चों में अशुद्ध दर्शन उत्पन्न कर देता है।

परीक्षा—'प्युबीस' पर हुआ अर्बुद पेट की परीक्षा से ज्ञात हो जाता है। गर्भाशय की पृष्ठ खुरदरी मालूम होती है। गर्भ और गर्भाशय के बीच में एक कठोर भाग प्रतीत होता और दूसरे स्थान में सुगमता से छुआ जा सकता है। गर्भाशय के निचले भाग का अर्बुद योनि-परीक्षा से ज्ञात हो सकता है। कई बार ग्रीवा में एक बड़ा मस्सा (कंद) दिखाई देता है। यदि संकुचित होते हुए गर्भाशय को देखें, तो एक भाग संकुचित रहता है, और एक स्थिर। जो भाग संकुचित होता है, उसमें शिशु है, और जो स्थिर है, उसमें अर्बुद है।

उपाय—बहुत उपद्रव-युक्त है। धात्री को चाहिए कि तत्क्षण चिकित्सक को बुलावे।

योनि (और) बाह्य भागों के रोग—इसमें या तो योनि के ऊपर रक्त का चक्का बन जाता है, या बाह्य अंगों में शोथ होता है। कई बार योनि और बाहर के अवयवों में अर्बुद (कंद) भी हो जाते हैं, परंतु प्रायः ये इतने बड़े नहीं होते, जिससे प्रसूति कठिन हो जाय। यदि बहुत बड़े हों, तो शिशु पेट चीरकर ('सीजीरीयन सैक्सन' से) बाहर निकालना पड़ता है*।

डिंब-प्रणाली में अर्बुद—जब तक अर्बुद बहुत बड़ा न हो,

* देखिए, योनि-रोग—चरक, सुश्रुत, माधव-निदान में।

प्रसूति में बाधक नहीं होता। कई बार वस्ति में स्थिर (पकड़ा-चिपका) हो जाता है, जिससे गर्भाशय के साथ हिलता प्रतीत होता है।

वस्ति के रोग—कई बार वस्ति की अस्थियों के रोग बाधक होते हैं। उनके स्थान और आकार के कारण थोड़ी या बहुत बाधा होती है। योनि-मार्ग से इनकी परीक्षा की जा सकती है। ऐसी अवस्था में चिकित्सक को बुलाना चाहिए। ये रोग गर्भाशय प्रतीत नहीं होते।

शिशु के उत्पन्न होनेवाले मार्गों का जड़ होना या बंद हो जाना—

ग्रीवा का जड़ होना या बंद होना—जड़ होने का अभिप्राय यह है कि नोक संकुचित होकर छोटी हो जाती है, जो खुल नहीं सकती। बंद होने का अर्थ नाश होना है, जिससे शिशु को बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिलता।

कारण—गर्भाधान के समय गर्भाशय-मुख खुला होना चाहिए। ग्रीवा का बहिर्मुख बड़ी आयु में प्रथमावस्था की अपेक्षा स्नायुओं की कठोरता के कारण कई बार जड़ हो जाता है, और मुख के ऊपर शोथ आ जाता है, जिससे दोनो ओष्ठ मिल जाते हैं। चिरकाल तक यदि ग्रीवा योनि-मार्ग से बाहर रहे, तो वह मुख सर्वथा बंद हो जाता है। कई बार ग्रीवा-मुख अर्बुद के कारण बंद हो जाता है।

परीक्षा-विधि—साधारणतः ग्रीवा में एक उँगली चली जाती है। परंतु जड़ होने पर नहीं जा सकती। यदि तीव्र आकुंचनों से भी ग्रीवा न खुले, तो जड़ हो गई, ऐसा समझना चाहिए। ग्रीवा के जितने भाग में दर्द होता है, उतने भाग के स्नायु गर्भ धारण न किए हुए ग्रीवा के समान कठोर होते हैं। उनका आकार भी न धारण किए हुए ग्रीवा के समान होता है।

उपाय—कारणानुसार चिकित्सा करनी चाहिए। यदि ग्रीवा का

मुख मिल गया हो, तो उँगली द्वारा खोल सकते हैं। यदि स्नायुओं में परिवर्तन हो, तो जननी को गरम पानी के टब में बिठाना और योनि-मार्ग में गरम पिचकारी देना चाहिए। यदि इससे लाभ न हो, तो अस्थिच्छेदन करना चाहिए। चिकित्सक को बुलाना चाहिए ॐ।

योनि-मार्ग और बाहर के गुप्त भागों का बंद हो जाना—इसके कारणों में प्राकृतिक रचना में त्रुटि, इन भागों का ज़ख़्मी होना है। आँख से रोग देखा जा सकता है। चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

(४) गर्भाशय या योनि-मार्ग की रचना में यदि कोई स्वाभाविक त्रुटि हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

(५) गर्भाशय का असाधारण स्थिति में होना—परीक्षा से पता विशेष रूप से लग सकता है। इसके लिये चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

गर्भ-संबंधी कारण

असाधारण दर्शन-स्थिति और गर्भ की गर्भावस्था में असाधारण अवस्था—

दर्शन—शिरोदय और नितंबोदय की अपेक्षा सबमें कुछ-न-कुछ कठिनता होती है।

स्थिति—शिरोदय में 'पश्चादस्थि' के पीछे फिरने से प्रसूति में कठिनता हो जाती है। नितंबोदय में 'पश्चादस्थि' पीछे फिरकर पिछले खड्ड में फँस जाती और कठिनता उत्पन्न करती है। चेहरे के दर्शन में चिबुक पीछे फँस जाती है। ललाट-दर्शन में चेहरा पीछे घूम जाता है। इससे प्रसूति कठिन हो जाती है।

शिशु की गर्भाशय में स्थिति—कई स्थितियों में हाथ-पाँव का स्थान बदल जाता है, जिससे प्रसूति कठिन हो जाती है। यह परिवर्तन निम्न-लिखित है—

ॐ मूषिकादि तेल या बलातैल की वस्ति या पिचु बहुत उत्तम है।

चित्र १७—सिर के पार्श्व में हाथ (पृष्ठ २२७)
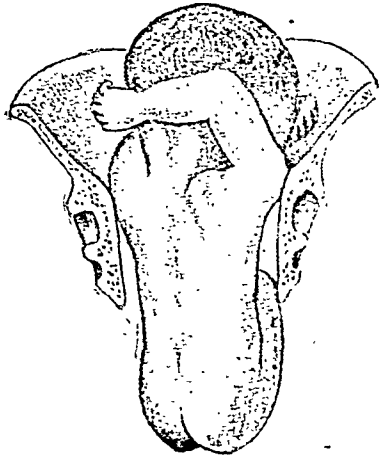
चित्र १८—न्यूकल पोज़ीशन (पृष्ठ २२७)

(क) सिर के पार्श्व में शिशु के हाथ हों या नीचे उतर आवें।
(ख) 'न्यूकल पोज़ीशन' हाथ पीछे पड़े हों।
(ग) हाथ और पाँव नीचे सरके हुए हों।
(घ) एक या दोनो हाथ नीचे आ जायँ।
(ङ) एक एड़ी अथवा पाँव नीचे आ जाय।

प्रथमावस्था—यह अवस्था प्रायः मृत शिशुओं में मिलती है। मुख्यतः यदि सिर और वस्ति में अनियमित अनुपात हो या चपटी वस्ति में बहुत गर्भ-जल हो, जिससे गर्भ-जल एक साथ बह जाय, तब यह अवस्था होती है। या वस्ति बड़ी हो और सिर छोटा हो, तो यह अवस्था होती है।

परीक्षा—योनि-मार्ग द्वारा उतरते हुए अवयव की परीक्षा हो सकती है।

उपाय—यदि वस्ति में सिर न स्थिर हुआ हो, तो जिस बाज़ू का हाथ बाहर आवे, उससे विपरीत पार्श्व में जननी को लेटा देना चाहिए, जिससे ढलवान में परिवर्तन होने से हाथ अंदर खिंच जायँ। यदि ऐसा न हो, तो चिकित्सक को बुलाकर हाथ पीछे ढलवा देना चाहिए।

द्वितीयावस्था (सिर के पीछे हाथ)—यह शिरोदय या नितंबोदय में होता है। नितंबोदय में छाती को घुमाते समय हाथ सिर के पीछे आ जाता है।

परीक्षा—जब तक प्रसूति में बाधा न हो, और शिशु बाहर न आवे, पहचान नहीं सकते। जब मुश्किल पड़े, तब उँगलियों को सिर के ऊपर ले जाने से गर्दन के पीछे पड़ा मालूम होता है। नितंबोदय में यह तब मालूम पड़ता है, जब शिशु का हाथ नीचे लाना पड़ता है।

उपाय—यदि शिरोदय में यह अवस्था हो, तो तुरंत चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

तृतीयावस्था—तिर्यक् उदयन में हाथ और पाँव प्रायः साथ आ जाते हैं। उस समय की चिकित्सा करनी चाहिए।

चतुर्थावस्था (हाथ या बाज़ू नीचे आवें)—तिर्यक् उदयन में प्रायः होता है। स्कंधोदय में यदि चिकित्सक की सहायता न मिले, तो यह अवस्था अवश्य हो जाती है।

पंचमावस्था—यह केवल अपूर्ण नितंबोदय में होती है।

शिशु का असाधारण क़द—शिशु का या तो अपना क़द बढ़ जाता है, या केवल स्कंध बढ़ जाते हैं।

(क) शिशु का बहुत बड़ा क़द—यदि वस्ति का क़द साधारण हो, तो कहीं भी बाधा नहीं होती। परंतु प्रसूति लंबी हो जाती है।

परीक्षा—शिशु-जन्म से पूर्व परीक्षा नहीं कर सकते। पेट के ऊपर की परीक्षा से संदेह हो सकता है, पर निश्चय नहीं होता।

चिकित्सा—प्रकृति के ऊपर रख देना चाहिए। यदि केस लंबा हो, तो चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

(ख) स्कंध का बड़ा होना—जब कंधे बहुत बड़े हों, और सिर बड़ा हो या न हो, तो भी प्रसूति में बाधा पड़ती है।

शिशु के शरीर की अशुद्ध रचना और रोग हो, तो प्रसूति में बाधा पड़ती है। निम्न-लिखित साधारण रीति है—

(१) हाइड्रो कैफेलिस—शिशु के सिर में पानी की अधिक मात्रा। यह शिशु के सिर के खड्ढे में भरा होता है।

(२) हाइड्रो मेनीनगोसिल—प्रथमावस्था (हाइड्रो कैफेलिस) में जमा पानी एक गड्ढे से बाहर आकर सिर के ऊपर रोग उत्पन्न करता है। कई बार यह नारियल के समान बड़ा हो जाता है।

(३) हाइड्रो ऐन कैफेलोसील—खोपड़ी के अंदर बहुत पानी रहने से होता है। प्रारंभ में मस्तिष्क के पक्ष थोड़े बाहर आते हैं, और
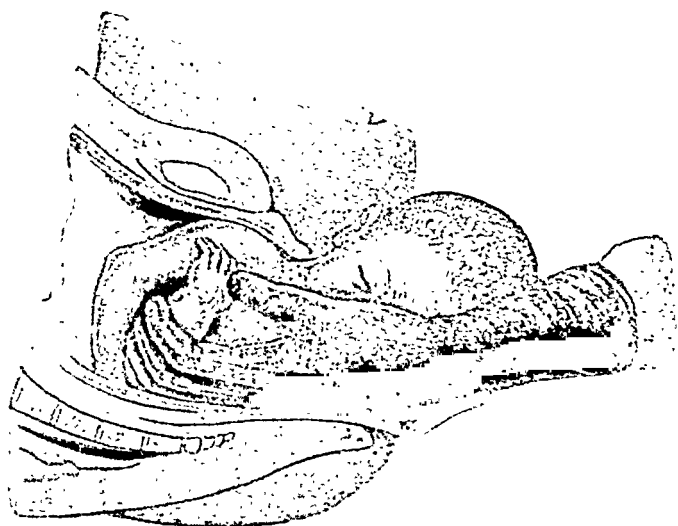
चित्र १६—फँसे हुए स्कंध को वाहर निकालने की विधि (पृष्ठ २२८)

धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं। इसमें और हाइड्रो मैनीनगोसिल में यह अंतर है कि यह कठोर होता है, इसके ऊपर हाथ रखने से मस्तिष्क का स्पंदन मालूम होता है।

(४) सिस्टीक हाई ग्रोमा ऑफ़ दी कॉर्ड—यह शिशु की ग्रीवा में से उत्पन्न होता है। यह या तो पीछे होता है या आगे। कई बार छाती तक आ जाता है। बाँसुरी के समान होता है।

(५) सिस्टीक गौयटर—जन्म से कई बार 'थाई रोयड' (निकंठ कंठ-ग्रंथि) बढ़ी होती है।

(६) हाइड्रो थोरैक्स (छाती में पानी)—यह प्रायः फुफ्फुस के ऊपर के आवरण में संचित होता है।

(७) कई बार यकृत, तिल्ली और वृक्क के रोग इतने अधिक होते हैं कि प्रसूति में बाधा उत्पन्न करते हैं।

(८) स्पाइन बाइ फर्राडिया—इसमें 'सैरी ब्रो स्पाइनल फ्युड' (सिर और मेरुदंड का पानी) जम जाता है। यह मेरुदंड पर होता है, कई बार कसेरुओं में से निकलता है।

(९) हाईड्रो पैरीटोनियम—पैरीटोनियम में पानी भर जाना।

(१०) 'हाई पर डिस्टैंटैशन ऑफ़ दी ब्लाडर' मूत्राशय बहुत भरकर तन जाता है। यह तब होता है, जब मार्ग बंद हो जाता है।

परीक्षा—कई बार पेट के ऊपर परीक्षा करने से या योनि-मार्ग की परीक्षा करने से ज्ञान हो जाता है। गर्भाशय में गर्भ का सिर पानी से भरा हो, तो योनि-मार्ग से भी पता लग जाता है।

राक्षसी गर्भ

निम्न-लिखित प्रकार के दो मुख्य हैं—

(क) 'अनेन सैफलीक' राक्षस—इसमें सिर के अंदर

मस्तिष्क नहीं होता। ग्रीवा बहुत छोटी होती है। स्कंध साधारण की अपेक्षा चौड़े होते हैं।

(ख) 'वेवड़ा' राक्षस—दोनो शिशु आपस में जुड़े हों, परंतु अलग न हो सकें।

पेट-परीक्षा से वेवड़ा राक्षस कहे जा सकते हैं। जब तक प्रसूति में बाधा न हो, पहचाने नहीं जा सकते।

वेवड़ा राक्षस—एक ही जरायु में दो शिशु जुड़े होते हैं। ये आपस में पृथक् न हों, तो उसे वेवड़ा राक्षसी गर्भ कहते हैं। इसके दो भाग हैं। एक में गर्भ के एक या दूसरे किनारे आपस में जुड़े होते हैं, और दूसरे में कहीं और से जुड़ा होता है।

उदर-परीक्षा से वेवड़ा राक्षस जाने जा सकते हैं। जब तक राक्षसी गर्भ प्रसूति में बाधा न दे, तब तक पूर्ण रूप से पहचान नहीं सकते। इस अवस्था में सदा चिकित्सक को बुलाना चाहिए।

उनतीसवाँ प्रकरण

प्रसूति के पीछे होनेवाला रक्त-स्राव

शिशु के जन्म के पीछे होनेवाले रक्त-स्राव को 'पोस्टमार्टम हैमरेज़' का नाम दिया गया है। अवस्था-भेद से यह प्राइमरी (प्राथमिक) और सैकेंडरी (द्वितीय) भेद से दो प्रकार का है।

प्राइमरी पोस्टमार्टम हैमरेज (प्राथमिक)—प्रसूति के पीछे (अव्यवहित रूप में) होनेवाला रक्त-स्राव।

सैकेंडरी पोस्टमार्टम हैमरेज (द्वितीय)—पीछे से प्रसूति के पीछे होनेवाला रक्त-स्राव।

प्राथमिक रक्त-स्राव—शिशु-जन्म के पीछे ६ घंटे में होनेवाले रक्त-स्राव को यह नाम दिया गया है। यह दो प्रकार का है—एक ट्रौमेटिक (आघातजन्य) और दूसरा एटौनिक (गर्भाशय के ढीला पड़ने से)।

आघातजन्य—शिशु के मार्ग में कहीं भी फट जाने से बहनेवाले रक्त को यह नाम दे सकते हैं।

साधारणतः फटने से रक्त-स्राव नहीं होता। परंतु ग्रीवा और योनि-लिंग के आस-पास बहुत रक्त-वाहिनियाँ होती हैं। वहाँ यदि चीर आ जाय, तो बहुत रक्त-स्राव होता है।

परीक्षा-विधि—इस रक्त-स्राव के कारण गर्भाशय ढीला पड़ जाता है। गर्भाशय संकुचित नहीं होता। यदि गर्भाशय पूर्ण रूप में संकुचित हो रहा है, तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह रक्त-स्राव चीर के कारण है। कई बार जब तक गर्भाशय को पिचकारी से साफ़ नहीं करते, तब तक परीक्षा नहीं होती।

चिकित्सा—चिकित्सक को बुलाकर फटे हुए स्थानों को टाँके द्वारा जोड़ देना चाहिए। यदि रक्त-स्राव बंद न हो, तो धात्री को चाहिए कि योनि-मार्ग में रुई या 'आयडोफ़ार्म गॉज़' का डाट (पिचु) भर देना चाहिए। और इन वस्तुओं की मोटी गद्दी बाहर के अवयवों पर रखकर पेट पर तंग पट्टी बाँध देनी चाहिए, और सीवन पर अँगरेज़ी के 'टी' (T) अक्षर की पट्टी तानकर बाँध देनी चाहिए, जिससे गर्भाशय पेट की पट्टी और सीवन की T पट्टी के मध्य में आ जाय।

एटॉनिक हैमेरेज—इसका कारण यह है कि जो गर्भाशय संकुचित हो, और उस अवस्था में रहना व्यर्थ हो जाय, तो रक्त-स्राव होता है। यह दृश्य और अदृश्य भेद से दो प्रकार का है।

कारण—गर्भाशय के ढीला होने के कारण होनेवाले रक्त-स्राव के कारणों के विषय में कहने से पूर्व कमल के बाहर आने पर क्यों रक्त-स्राव नहीं होता, इसका समझना आवश्यक है। कमल के छुटने पर और गर्भाशय के संकुचित होने से मांस के रेशे भी संकुचित होकर रक्त-वाहिनियों के चारो ओर जाल-सा बना देते हैं, जिससे वाहिनियाँ पकड़ी जाती हैं, और उनके मुखों के बंद होने से रक्त-स्राव नहीं होता।

यदि किसी कारण से गर्भाशय संकुचित न हो, या मांस के रेशे जाल न बनावें, तो रक्त-वाहिनियों के मुख खुले रहने से रक्त-स्राव होता है। गर्भाशय के ढीला रहने के ये कारण हैं—

(१) गर्भावस्था की तृतीयावस्था में कमल का टुकड़ा गर्भ-पटल या रक्त के चक्के का अंदर रह जाना।

(२) भरा हुआ मूत्राशय।

(३) गर्भाशय की अचेतनता के कारण या निर्बल आकुंचनों के कारण।

(४) 'मैट्रायटिस' गर्भाशय के तंतुओं का शोथ।

(५) गर्भाशय का अतिशय खिंचाव—जिसका कारण अतिशय जरायु-जल या बहुगर्भ है।

(६) विलंब प्रसव—अतिशय लंबी प्रसूति।

(७) सहसा शिशु का एकदम बाहर आना।

(८) प्रारंभ में रक्त-स्राव—जिससे प्रसूता निर्बल हो जाय।

(९) निर्बल करनेवाला कोई भी रोग।

(१०) प्लैसेंटा प्रीविया।

चिकित्सा—इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि सब चीज़ें तैयार रक्खी जायँ। चिकित्सा छोटे और सरल उपायों से प्रारंभ करके पीछे से धीरे-धीरे बड़े-बड़े साधनों से करनी चाहिए। कई बार धात्री को स्वयं कमल को निकालना या योनि-मार्ग में पिचु भर देना पड़ता है।

निम्न-लिखित उपाय क्रम से व्यवहार में लाने चाहिए। एक से लाभ न हो, तो दूसरा प्रयोग करना चाहिए—

(१) मूत्राशय को शलाका द्वारा या स्वयं ख़ाली करना चाहिए।

(२) कमल गर्भाशय में है या योनि-मार्ग में, इसकी परीक्षा करनी चाहिए। यदि गर्भाशय में हो, तो गर्भाशय को संकुचित करने का यत्न करना। यदि अब भी कमल न आवे, और रक्त-स्राव हो या कमल योनि-मार्ग में हो, तो—

(३) 'क्रडीन' की रीति से निकालें। यदि इसमें भी सफल न हो, तो बाह्य अंगों को साफ़ करके, मूत्राशय ख़ाली करके योनि-मार्ग में १०० से १२०° डिग्री के गरम पानी में लाईजोल मिलाकर पिच-कारी मारें, एवं हाथ डालकर कमल निकाल लेना चाहिए।

(४) मलकर गर्भाशय संकुचित करना या अरगट देना चाहिए। अति रक्त-स्राव में अरगट का इंजेक्शन देना चाहिए।

(५) जननी के बाह्य अंगों को साफ़ करके योनि में लाईजोल मिश्रित गरम पानी की पिचकारी देनी चाहिए।

(६) यदि चिकित्सक न मिले, तो उपर्युक्त गरम पानी से गर्भाशय में पिचकारी दे।

(७) एक हाथ की उँगलियों को योनि-मार्ग में डालकर ग्रीवा तक पहुँचावे, और दूसरे हाथ (जो पेड़ू में हो) से गर्भाशय को इस प्रकार ज़ोर से दबाना चाहिए, जिससे गर्भाशय का शिखर बीच में आ जाय। यदि रक्त का चक्का हो, तो उसे निकालकर गर्भाशय को पिचकारी से धो देना चाहिए।

(८) योनि-मार्ग में हाथ डालकर यदि वहाँ कमल का टुकड़ा, गर्भ-पटल या रक्त की बँधी गाँठ हो, तो उसे निकालकर पिचकारी से धो देना चाहिए।

(९) बाई मैन्युल कंप्रैसन ऑफ़् दी यूटरस (दोनो हाथों से गर्भाशय को दबाने की विधि)—धात्री को चाहिए कि वह अपने दाहने हाथ को योनि-मार्ग में डालकर उसकी दो उँगली ग्रीवा के पीछे डाले। इनसे ग्रीवा को आगे दबाओ, जिससे संकुचन ऊपर को जायँ। फिर जितना संभव हो, गर्भाशय-शिखर को इस हाथ पर दबाओ। इसके लिये धात्री को चाहिए कि अपना बायाँ हाथ स्वच्छ करके, उसकी मुट्ठी बंद करके योनि-मार्ग के अंदर गर्भाशय के सामने पहुँचावे, और दाहने हाथ से पेड़ू के ऊपर गर्भाशय को बाएँ हाथ पर दबावे। इससे रक्त बंद हो जाता है। यह विधि चिरकाल तक रखनी चाहिए। यदि धात्री का हाथ थक जाय, तो दूसरी की सहायता ले ले।

(१०) 'एओर्टो' (महाधमनी पर दबाव)—जननी के ऊपर से 'डिसैंडिंग एओर्टो' पर दबाव डालना चाहिए।

(११) खाट की पाँयत ऊँची कर देनी चाहिए, या कुर्सी पर

लेटावें, जिससे पाँव की ओर रक्त कम जाय। यह विधि यदि 'एओटी' के ऊपर दबाव की रीति के साथ व्यवहार करें, तो उत्तम है।

(१२) योनि-मार्ग में स्वच्छ उबाली रुई या 'आयडोफ़ार्म गॉज़' का पिचु भरकर पेट पर 'T' के आकार की पट्टी बाँध दें। यह उपयोग भयानक है, अतः चिकित्सक की सहायता आवश्यक है। यदि रक्त-स्राव थोड़ा ही हो, तो पिचु भर देना चाहिए। यदि विधि ठीक तरह न की जाय, तो सफलता नहीं मिलती।

(१३) गर्भाशय पर बाह्य डाट इस प्रकार मार सकते हैं—एक चौड़ी पट्टी पेट पर दृढ़ता से बाँध दे, जिससे वह हिले नहीं। पट्टी 'ट्रोकंटर' के नीचे से छाती के नीचे तक पहुँचानी चाहिए। गर्भाशय का शिखर डाट के नीचे रहना चाहिए। इस डाट के लिये रूमाल, तौलिए आदि से दबाव देना चाहिए।

अदृश्य रक्त-स्राव—इसकी परीक्षा गर्भाशय के बड़े होने से तथा रक्त-स्राव से की जा सकती है। इसके लिये गर्भाशय पर बाहर से दबाव देना और उसे ख़ाली करना चाहिए। इनके असफल होने पर उपर्युक्त उपाय करने चाहिए।

सैकंडरी पोस्टमार्टम हैमरेज़ (द्वितीय रक्त-स्राव)—शिशु-जन्म के ६ घंटे पीछे होनेवाला रक्त-स्राव 'द्वितीय रक्त-स्राव' कहलाता है।

कारण—रक्त-वाहिनियाँ प्रथम बंद होने पर फिर खुल जाती हैं। इसका मुख्य कारण गर्भाशय में कोई सड़ाँद होना है। इसके अतिरिक्त कमल का भाग, गर्भ-पटल का भाग या गर्भाशय का उलटा होना, मलबंध या गर्भाशय से अतिशय रक्त-स्राव होने पर या एकदम रक्त का वेग बढ़ने से रक्त-स्राव होता है।

चिकित्सा—यदि रक्त-स्राव थोड़ा हो, तो 'अरगट' देना चाहिए। गर्भाशय के शिखर पर दबाव देकर रक्त का थक्का निकाल देना चाहिए। यदि इससे स्राव न रुके, तो गर्भाशय और योनि-मार्ग में

गरम पानी की वस्ति देनी चाहिए। अंत में कारण ढूँढ़कर चिकित्सा करनी चाहिए।

रक्त-स्राव के पीछे शीत (कॉलैप्स) अवस्था की चिकित्सा—

इसका कारण रक्त की कमी नहीं, अपितु रक्त-वाहिनियों का रक्त-स्राव के कारण बड़ी हो जाना है। उनको जितना रक्त एक क्षण में मिलना चाहिए, उतना नहीं मिलता। इसका कारण हृदय या मस्तिष्क की अशक्ति है। परंतु सत्य रूप में हृदय के धीरे होने से जननी शनैः शनैः निर्बल हो जाती है। अतः चिकित्सा में तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) हृदय को शक्ति देनी चाहिए।

(२) यथासंभव रक्त शरीर के आवश्यक भाग—हृदय और मस्तिष्क—को देना चाहिए *।

(३) रक्त-वाहिनी में प्रवाही की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। मद्य, ब्रांडी मुख द्वारा देनी चाहिए। हृदय पर गरम सेक करना चाहिए। पाँव को ऊँचा करके मस्तिष्क में रक्त की मात्रा बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त हाथ और पाँव पर पट्टी बाँधकर रक्त की मात्रा और भी बढ़ा सकते हैं। मकरध्वज विशेषतः षड्गुण बलि जरित चंद्रोदय भी उत्तम है †।

संभव हो, तो जननी को मुख या गुदा से नमकीन पानी देकर

---

* प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च।
यदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते। (चरक)
हृदयं चेतनास्थानमुक्तं सुश्रुतदेहिनाम्।

† पश्चिमोत्तानासन भी उत्तम है। देखिए, 'आसन' पुस्तक स्वाध्याय-मंडल से प्राप्य।

प्रवाही की मात्रा बढ़ा सकते हैं। पानी का ताप ६८° फ़ारनाइट और १ पाइंट में ६० ग्रेन नमक होना चाहिए।

उपद्रव—रक्त-स्राव के कारण हृदय का बंद होना, 'टलमोनरी एंबोलस' पाँव की नसों में प्रवाही की कमी के कारण गाँठ पड़ना या अन्य संक्रमण विष या संक्रामक रोग हो जाता है।

तीसवाँ प्रकरण

शिशु-जन्म के समय होनेवाले आघात

गर्भाशय का उलटा होना, योनि-मार्ग तथा बाहर के गुप्त भागों में रक्त-ग्रंथि, गर्भाशय का फटना। उसके कारण, लक्षण, चिकित्सा, ग्रीवा और सीवन का फटना।

इनवर्शन ऑफ् यूटरस (गर्भाशय का उलटा होना)—इसमें गर्भाशय या तो संपूर्ण रूप से उलट जाता है, या उसका कुछ ही भाग उलटता है, जिससे बाहर का भाग अंदर आ जाता है, और शिखर ग्रीवा में से योनि-मार्ग में आ जाता है। कई बार बाह्य भागों के भी बाहर आ जाता है।

कारण—प्रसूति के पीछे पूर्ण रूप से संकुचित न होना। यदि कमल छुटा न हो और आकुंचन जारी हो, तो नाल पकड़कर खींचने से एवं कमल निकालते समय अधिक बल-प्रयोग या अतिशय दबाव।

लक्षण—गर्भाशय के उलट जाने से जननी एकदम बेहोश एवं निर्बल हो जाती है। इस अवस्था में तीव्र रक्त-स्राव होता है, और नहीं भी होता।

परीक्षा—यदि साधारण जन्म के पीछे पेड़ू की दीवार पर अपना हाथ रक्खें, तो गर्भाशय नाभि और बस्ति के तीर बीच में मालूम पड़ता है। परंतु यदि गर्भाशय उलट जाय, तो गर्भाशय योनि-मार्ग में आ जाता है। और साधारण स्थान पर कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। योनि-मार्ग में एक डाट का आकार प्रतीत होता है। यह गोली यदि गर्भाशय के कारण हो, तो उसमें कमल जुड़ा होता है। इससे पूर्ण

रूप से परीक्षा हो सकती है। यदि गर्भाशय का थोड़ा भाग उलटा हो, तो पेड़ू की दीवार पर हाथ रखने से एक गोल और लीस्सा गोलाकार के बदले एक प्याले के आकार का गड्ढा मालूम होता है।

चिकित्सा—यदि गर्भाशय उलट जाय, तो चिकित्सक को तुरंत बुलाना चाहिए। यदि जननी अचेत हो जाय, तो संज्ञा लोप की चिकित्सा करनी चाहिए।

हीमे टोमा ऑफ़ दी वे जाइना और वल्वा (रक्त की गाँठ)—योनि-मार्ग अथवा बाहर के गुप्त भागों के पड़ के नीचे जमे हुए रक्त को यह नाम दिया गया है। यह असाधारण है।

कारण—जब सिर योनि-मार्ग में से उतरता है, तब रक्त-वाहिनियों में से रक्त पीछे नहीं जाता, वहीं रुक जाता है, जिससे रक्त की नसों में दबाव बढ़ जाता है। इस दबाव के कारण कई बार नस फट जाती है।

लक्षण—बाह्य अंगों पर शोथ दिखाई देता है। दबाने से दब जाता और फिर उभर आता है। इसका रंग नीला होता है, जो शनैः-शनैः बढ़ता जाता है। यह शोथ या तो उत्पत्ति से पूर्व होता है या पीछे। परंतु शिशु के उत्पन्न होने से पूर्व बहुत कम होता है। कई बार गाँठ के कारण जननी के दर्द होता है, जिससे वह बेहोश भी हो जाती है।

कई बार गाँठ के फटने से रक्त-स्राव हो जाता है। कई बार रक्त बाहर बहता नहीं दिखाई पड़ता, परंतु अंदर-ही-अंदर एकत्रित होता जाता है। यदि रक्त की गाँठ छोटी हो, तो रक्त पीछे शरीर में लौट जाता एवं कई बार पूय बन जाता है।

चिकित्सा—जब तक चिकित्सक आवे, गाँठ पर 'आयडोफ़ार्म गॉज़' की गद्दी रखनी चाहिए। उसके ऊपर दबाव रखने से लोहू बहता नहीं है।

रप्चर ऑफ़ दी यूटरस (गर्भाशय का फटना)—प्रसूति के समय

गर्भाशय-भित्ति पर व्रण हो जाता है। इसको गर्भाशय का फटना कहते हैं। यह असाधारण है। प्रायः फटाव गर्भाशय के निचले भाग में होता है। वहाँ से ऊपर शिखर की तरफ़ या नीचे की ओर बढ़ सकता है। यह बात कई बार चपटी वस्ति में हो जाती है, जिसमें गर्भाशय नीचे उतरते समय फँस जाता है। और वहाँ घिसड़ लगने से दीवार में आर-पार छेद हो जाता है, या मांस के रेशों की मृत्यु (निक्रोस या गैंगरीन) हो जाती है। यह दो प्रकार का है। पूर्ण और अपूर्ण। पूर्ण फटाव में स्नायु और ऊपर के पड़ में एक सिरे से दूसरे तक फटाव होता है।

कारण—संकुचित वस्ति, असाधारण दर्शन, शिशु के सिर में पानी भरना या अन्य वस्ति के रोग हैं। कई बार 'सीज़रीयन सैक्शन' पेट चीरकर बच्चा निकालते समय जब जननी चरबीवाली या निर्बल हो, तब, या व्रण में पूय पड़ने से यदि न भरे, तब होता है। जन्म के समय यदि कोई चीज़ हरकत करे, तो डाट सदा गर्भाशय के निचले भाग में रहता है। यदि चिरकाल तक लंबी प्रसूति का दबाव मांस के रेशों पर पड़े, तो पीछे होनेवाले परिवर्तनों के कारण गर्भाशय का शिखर मोटा और निचला भाग पतला हो जाता है, इसको याद करें, तो चिराव आने का कारण सरल ही समझ में आ जाता है।

लक्षण—(१) थ्रेटंड रप्चर, (२) सडन रप्चर और (३) अेज्युअल रप्चर।

(१) थ्रेटंड रप्चर—ताप १०१° फ़० से ऊपर, नाड़ी-संख्या तेज़ ११० तक, गर्भाशय में संकोच, रीट्रैक्सन रींग प्युबीस से १½" ऊपर, एक या दोनों 'रौन्ड लिगमैंटों' का पेट पर से दिखाई देना, तनाव, संक्षेप से सब लक्षण चिरकालीन दीर्घ प्रसव के होते हैं। लक्षणों को शीघ्र पहचानना चाहिए।

(२) सडन रप्चर—सहसा फटने से जननी को फटने का अनुभव होता है। प्रसूति का दुःख बंद हो जाता है। यदि गर्भ स्थिर न हुआ हो, तो ग्रीवा से दूर हो जाता है। उदासी, अचेतनता, तेज़ नाड़ी, कौलेप्स, तीव्र रक्त-स्राव बड़ी मात्रा में होता है। पेड़ू पर अत्यंत दर्द होता है।

(३) ग्रैजुअल रप्चर—गर्भाशय फटने की यह विधि साधारण है। कमल के अंदर रहने पर जब हाथ अंदर डालते हैं, तब पहचान हो जाती है। यदि फटाव बीच में अधिक हो, तो शिशु वहाँ से निकलकर आँतों के बीच में आ जाता है। यदि रक्त-स्राव अधिक हो, तो जननी अचेत हो जाती है।

सहसा या धीरे-धीरे फटने में रक्त-स्राव अंदर होता है। रक्त पेट की गुहा में बहता है। योनि-मार्ग से बाहर नहीं आता। रक्त-स्राव के लक्षण उपस्थित होते हैं।

चिकित्सा—यह दो प्रकार की है—(१) अवरोध करना, (२) अच्छा करना।

अवरोध की क्रिया—शिशु के प्रसव के समय की सब बाधाओं को यथासंभव दूर करना। और गर्भ को यथासंभव शीघ्र बाहर निकालना चाहिए। कई बार ग्रीवा का अग्रिम ओष्ठ सिर के नीचे उतर आता है। वह शिशु और विटप के बीच में दब जाता है। यदि यह देर तक रहे, तो दबकर फट जाता है। अतः सिर को ऊपर धकेल देना चाहिए। जब तक आकुंचन न आवे, नीचे नहीं आने देना चाहिए।

अच्छा करना—चिकित्सा रक्त-स्राव की मात्रा तथा गर्भाशय के फटने के स्थान पर निर्भर है। जितनी जल्दी चिकित्सा हो सके, उतना उत्तम है। जननी को चेतन तथा सशक्त बनाए रखने के लिये औषध देते रहना चाहिए।

गर्भाशय-भित्ति पर व्रण हो जाता है। इसको गर्भाशय का फटना कहते हैं। यह असाधारण है। प्रायः फटाव गर्भाशय के निचले भाग में होता है। वहाँ से ऊपर शिखर की तरफ़ या नीचे की ओर बढ़ सकता है। यह बात कई बार चपटी वस्ति में हो जाती है, जिसमें गर्भाशय नीचे उतरते समय फँस जाता है। और वहाँ घिसड़ लगने से दीवार में आर-पार छेद हो जाता है, या मांस के रेशों की मृत्यु (निक्रोस या गैंगरीन) हो जाती है। यह दो प्रकार का है। पूर्ण और अपूर्ण। पूर्ण फटाव में स्नायु और ऊपर के पड़ में एक सिरे से दूसरे तक फटाव होता है।

कारण—संकुचित वस्ति, असाधारण दर्शन, शिशु के सिर में पानी भरना या अन्य वस्ति के रोग हैं। कई बार 'सीज़रीयन सैक्शन' पेट चीरकर बच्चा निकालते समय जब जननी चरबीवाली या निर्बल हो, तब, या व्रण में पूय पड़ने से यदि न भरे, तब होता है। जन्म के समय यदि कोई चीज़ हरकत करे, तो डाट सदा गर्भाशय के निचले भाग में रहता है। यदि चिरकाल तक लंबी प्रसूति का दबाव मांस के रेशों पर पड़े, तो पीछे होनेवाले परिवर्तनों के कारण गर्भाशय का शिखर मोटा और निचला भाग पतला हो जाता है, इसको याद करें, तो चिराव आने का कारण सरल ही समझ में आ जाता है।

लक्षण—(१) थ्रूटेंड रप्चर, (२) सडन रप्चर और (३) अेज्युअल रप्चर।

(१) थ्रूटेंड रप्चर—ताप १०१° फ़० से ऊपर, नाड़ी-संख्या तेज़ ११० तक, गर्भाशय में संकोच, रीट्रैक्सन रींग प्युबीस से १½" ऊपर, एक या दोनो 'रौन्ड लिगमैंटों' का पेट पर से दिखाई देना, तनाव, संक्षेप से सब लक्षण चिरकालीन दीर्घ प्रसव के होते हैं। लक्षणों को शीघ्र पहचानना चाहिए।

(२) सडन रप्चर—सहसा फटने से जननी को फटने का अनुभव होता है। प्रसूति का दुःख बंद हो जाता है। यदि गर्भ स्थिर न हुआ हो, तो ग्रीवा से दूर हो जाता है। उदासी, अचेतनता, तेज़ नाड़ी, कोलेप्स, तीव्र रक्त-स्राव बड़ी मात्रा में होता है। पेडू पर अत्यंत दर्द होता है।

(३) ग्रेजुअल रप्चर—गर्भाशय फटने की यह विधि साधारण है। कमल के अंदर रहने पर जब हाथ अंदर डालते हैं, तब पहचान हो जाती है। यदि फटाव बीच में अधिक हो, तो शिशु वहाँ से निकलकर आँतों के बीच में आ जाता है। यदि रक्त-स्राव अधिक हो, तो जननी अचेत हो जाती है।

सहसा या धीरे-धीरे फटने में रक्त-स्राव अंदर होता है। रक्त पेट की गुहा में बहता है। योनि-मार्ग से बाहर नहीं आता। रक्त-स्राव के लक्षण उपस्थित होते हैं।

चिकित्सा—यह दो प्रकार की है—(१) अवरोध करना, (२) अच्छा करना।

अवरोध की क्रिया—शिशु के प्रसव के समय की सब बाधाओं को यथासंभव दूर करना। और गर्भ को यथासंभव शीघ्र बाहर निकालना चाहिए। कई बार ग्रीवा का अग्रिम ओष्ठ सिर के नीचे उतर आता है। वह शिशु और विटप के बीच में दब जाता है। यदि यह देर तक रहे, तो दबकर फट जाता है। अतः सिर को ऊपर धकेल देना चाहिए। जब तक आकुंचन न आवे, नीचे नहीं आने देना चाहिए।

अच्छा करना—चिकित्सा रक्त-स्राव की मात्रा तथा गर्भाशय के फटने के स्थान पर निर्भर है। जितनी जल्दी चिकित्सा हो सके, उतना उत्तम है। जननी को चेतन तथा सशक्त बनाए रखने के लिये औषध देते रहना चाहिए।

'लैसेरेशन ऑफ़् दी सर्वीक्स'—प्रसूति के समय बार-बार चीरा आने से यह अवस्था होती है। परंतु जब तक रक्त नहीं आता, मालूम कठिनता से ही होती है। चीरे के स्थान पर प्रसूति के समय हाथ रख देना चाहिए।

लैसेरेशन ऑफ़् दी पैरेनीयम—प्रसूति के उपद्रवों में यह एक मुख्य उपद्रव है। यह फटाव दो प्रकार का होता है—(१) एक खिंचाव गुदा और योनि के बीच से आरंभ होकर गुदा के अंदर तक जाता है। इसको पूर्ण फटाव या 'कंप्लीट रप्चर' कहते हैं, और (२) यदि गुदा के अंदर तक न जाय, बीच में ही रह जाय, तो इसे 'इनकंप्लीट या अपूर्ण रप्चर' कहते हैं।

चिकित्सा—जहाँ तक संभव हो, शीघ्र ही 'टाँका' मार देना चाहिए। इस प्रकार करने से 'प्युरी परल अलसर' होने एवं गर्भाशय नीचे आने से रुक जाता है।

सीवन पर यदि गहरा चीरा आ जाय, तो 'लैवटेर एनाई' मांस-पेशी तक लंबा होता है। यह स्नायु वस्ति और पेट के भागों को सहायता देती है। यदि वह टूट जाय, तो योनि और गर्भाशय का नीचे उतरना संभव है। तुरंत चिकित्सक को बुलाकर सिलवा देना चाहिए। फटाव को छिपाना नहीं चाहिए।

इकतीसवाँ प्रकरण

'सैप्रीमीय' और 'सैप्टीक इन्फैक्शन'

(सूतिकाज्वर और संक्रमण)

मिथ्याचारात् सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते;
सकृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदत्ययतर्पणात् ।

धन्वभूमिजातां सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् । पिपल्यादिकषायानुपानं स्नेह नित्या च स्यात् । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा । बलवतीमबलां यवागू पाययेत् । प्रायश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिसिञ्चेत् । क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत् ।

तस्मात् तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा;
परीक्ष्योपचरेद् एवं नेयमत्ययमाप्नुयात् ।

प्रथम प्रकरण में जिन 'माईको' और 'गेनीज़्म' या कीटाणुओं का वर्णन किया गया है, उनका दो प्रकार से विभाग किया गया है—(१) सेप्रोफीटिक और गेनीज़्म, जो मरे हुए पदार्थों पर विष या संक्रमण उत्पन्न करते हैं । (२) 'सैप्टिक और गेनीज़्म', जो जीवित वस्तुओं पर आक्रमण करके शोथ या पूय उत्पन्न करते हैं । इन दोनों के संक्रमण को 'सैप्टिक इन्फैक्शन' संक्रमण कहते हैं ।

सैप्रीमीया—इसका कारण एक प्रकार का विष है, जो मृत तंतुओं से उत्पन्न होता है । प्रसूति की तृतीयावस्था में या शिशु के उत्पन्न होने पर यदि गर्भाशय में वायु भर जाय, तो वायु समेत मृत तंतुओं पर जीनेवाले जंतु अंदर प्रविष्ट हो जाते हैं । वहाँ या तो रक्त की गाँठ होती है, या कमल का टुकड़ा, जिस पर जीवाणु

बैठते हैं। रासायनिक परिवर्तन होने से विष उत्पन्न होता है, जो यदि शरीर से न निकाला जाय, तो शरीर में फैलकर विष उत्पन्न करता है।

कारण—मुख्य रूप से तीन होते हैं, यथा—

(१) विष के प्रविष्ट होने के कारण—हाथ और हथियार के मैले होने से या अन्य अस्वच्छता से या चिरकाल तक भागों के दबे रहने से।

(२) विष को उत्पन्न करनेवाले जंतु।

(३) मृत मांस या रक्त की गाँठ अथवा कमल का टुकड़ा अंदर रहे।

प्रथम दो कारण प्रायः होते हैं। तृतीय कारण हो, तो विष उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—यह विष दो प्रकार से नुक़सान करता है—(१) रोगी के शरीर पर से, (२) जिस स्थान पर लगा हो, वहाँ से। शिशु के उत्पन्न होने पर तीसरे या चौथे दिन विष का प्रभाव दिखाई पड़ता है। ये लक्षण धीरे-धीरे होते हैं। ज्वर १०१ से १०२° फ़० तक होता है। नाड़ी ६० से १२० होती है। यदि उचित चिकित्सा की जाय, तो लक्षण छिप जाते हैं, अन्यथा ज्वर बढ़ जाता है। मुख्य लक्षण यह है कि जन्म देने के पीछे रक्त की अवस्था साधारण नहीं होती। पानी और रक्त के मिलने से प्रवाही दुर्गंध-युक्त होता है। कई बार झागवाला होता है। साधारण और असाधारण रक्त की पहचान गद्दी पर पड़े धब्बे के निशान से हो सकती है।

संक्रमण विष के साथ 'प्युरे परल अलसर' दिखाई देता है। इसकी भूमि भूरी, विष-युक्त तथा किनारे सूजे होते हैं। प्रवाही मात्रा में अधिक और दुर्गंध-युक्त होता है। ज्वर आता है।

चिकित्सा—प्रसूति की तृतीयावस्था में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। बिस्तर के सिरवाले भाग को ऊँचा कर देना चाहिए, जिससे प्रवाही सुगमता से बह सके। यदि जननी की अवस्था अच्छी हो, तो एक-दो दिन तक बिस्तर पर लेटाए रखना चाहिए। एक विरेचन दे देना उत्तम है। मूत्र घुटनों के बल बैठकर करवाना चाहिए। यदि ज्वर न उतरे, तो योनि-मार्ग को लाईजोल या क्रोओलीन के (२२० में १ भाग) घोल से धोना चाहिए। यदि इससे भी ज्वर न उतरे, तो संक्रमण गर्भाशय तक ही गया, ऐसा जानना चाहिए।

भोजन सुपच देना चाहिए। आवश्यकता हो, तो मद्य दे। अरगट के देने से विष का संचार कम होता है। प्रातः-सायं दो ड्राम दवा पानी में देनी चाहिए।

'प्युरे परल अलसर' हो, तो उसको भले प्रकार ध फ़ार्म' लगाना चाहिए। जब तक संक्रमण योनि-मार्ग या गर्भाशय में न पहुँचे, वस्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। कई बार इससे संक्रमण गर्भाशय तक पहुँच जाता है। पिचकारी से उत्तम उपाय है बिस्तर का सिर ऊँचा कर देना, जिससे प्रवाही बह जाय।

पूर्वकथन—यदि चिकित्सा न की जाय, तो जननी मर जाती है।

'सैप्टीक इन्फ़ैक्शन' (रक्त में विष का संचरित होना)—जब पूय बनानेवाले शरीर पर आक्रमण कर देते हैं, तो उसे 'सैप्टीक इन्फ़ैक्शन' कहते हैं*। पहले चिकित्सालयों में तथा वर्तमान काल में घरों में प्रायः इसके कारण मृत्युएँ होती हैं। इसके कई रूप हैं। संक्रमण योनि-मार्ग या गर्भाशय से प्रविष्ट होता है।

कारण—प्राचीन काल में इस रोग का कोई निश्चित कारण

---

* देखिए, लेखक का 'रोग-विज्ञान'।

ज्ञात नहीं था। लोगों का विचार था कि इससे बचना असंभव है। परंतु वियना के चिकित्सालय में चिकित्सा करनेवाले 'सेमेलवीस' ने सबसे पूर्व संक्रमण की ओर ध्यान खींचा। पीछे से यह बात निश्चित हो गई कि इसका कारण संक्रमण विष ही है।

विष योनि-मार्ग तथा गर्भाशय से प्रवेश करके थोड़े उपद्रव से लेकर मृत्यु तक उत्पन्न कर देता है। विष शनैः-शनैः स्त्री की डिंब-प्रणालियों में फैलने के साथ 'पैरीटोनियम' आंत्र, वस्ति में फैल सकता है।

विष के दो स्वरूप होते हैं, यथा—

(१) एक स्थानिक भाग में ही संक्रमण परिमित रहे (लोकल सैप्टीक इन्फ्रैक्शन)।

(२) संक्रमण संपूर्ण शरीर में रक्त के द्वारा व्याप्त हो जाय (जनरल सैप्टीक इन्फ्रैक्शन)।

स्थानिक संक्रमण—इसमें संक्रमण गर्भाशय, कमल, ग्रीवा या योनि में फटे चीरे से होता है। यह आस-पास फैलकर शांत हो जाता है या 'जनरल पैरीटोनियाल कैवटी' तक पहुँचता है।

यदि कमल के स्थान पर संक्रमण हो, तो शीघ्र ही सारे गर्भाशय में फैल जाता है। गर्भाशय की अंतःभित्ति सूज जाती है।

यदि शोथ गर्भाशय या योनि-मार्ग तक ही सीमित रहे, तो वह पुराना हो जाता, और देर तक रहता है। अथवा गर्भाशय-भित्ति से आगे, अंदर की ओर बढ़ता है। इसके कारण गर्भाशय-डिंब-प्रणाली की स्थान-च्युति भी हो जाती है। वस्ति-गुहा, डिंब-प्रणाली में पूय भर जाता है। कई बार 'पाईमीया' भी हो जाता है।

लक्षण—शोथ की मुख्य निशानी ज्वर है। जो १०४° फ़० तक होता है। नाड़ी ११० से १२० तक, शीत, कंप, बेचैनी होती है। गर्भाशय के प्रवाही का रंग बदला, पूय, सैप्रेमीया रोग होता है।

प्रवाही की दुर्गंध तथा उसमें मृत मांस के टुकड़े होते हैं। गर्भाशय बड़ा और नरम रहता है। छूने से दर्द होता है।

चिकित्सा—पिचकारी से पूर्ण साफ़ करके 'आयडोफ़ार्म गॉज़' भरना चाहिए। यदि तीव्र वेदना हो, तो नींद के लिये 'मौरफ़ीया' देना चाहिए। मलबंध न हो, ऐसा यत्न करना चाहिए। पुष्टि-कारक भोजन देना चाहिए। योनि-मार्ग और गर्भाशय बार-बार साफ़ करना चाहिए। पेडू में पूय हो, तो पेट चाक करके पूय निकाल देनी चाहिए। कोई गूमड़ी हो, तो फाड़ देनी चाहिए।

जनरल सैप्टीक इन्फ़ेक्शन—विष के रक्त में जाने से यह संक्रमण होता है। विष-जंतु या तो रक्त-शिराओं से शरीर में व्याप्त होते हैं, या लसीका-वाहिनियों के द्वारा। अतः इसके दो विभाग हैं। यथा—

(१) लसीका-वाहिनियों द्वारा संक्रमण—विष 'लिम्फ़ैटिक' द्वारा रक्त में पहुँचता है।

लक्षण—रोग होने के २४ घंटे पीछे ये लक्षण होते हैं—ताप १०३° से १०४°; नाड़ी १२० से १४० तक, कँपकँपी, शीत, स्वेद, स्राव और दूध सर्वथा बंद हो जाता है। निद्रा-नाश, चेहरा पीला, जननी उदास निर्बल और निराश होती है। कई बार शोथ पीठ के ऊपर के पड़ पर हो जाता है। रोग के आरंभ होने पर एक सप्ताह तक जननी जीवित रहती है। कई बार ताप उतरता ही नहीं, अपितु १०६ से १०७ हो जाता है। अंत में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—योनि-मार्ग और गर्भाशय को पिचकारी द्वारा साफ़ करना चाहिए। 'सीरम' की पिचकारी देने से भी लाभ देखा गया है। शक्ति के लिये २४ घंटे में १६० से २० औंस तक मद्य देना चाहिए।

(२) वीनस सैप्टीस—रक्त-वाहिनियों द्वारा विष शरीर में जाता है। इसको 'पाइमीया' भी कहते हैं। प्रथम जंतु नसों में घर

बनाकर पूय उत्पन्न करते हैं। नस के फटने पर विष सर्वत्र फैल जाता है।

लक्षण—जन्म देने के १० दिन पीछे रक्त में पूय दिखाई देता है। प्रथम लक्षण ताप का बढ़ना है, जो १०४ से १०६° तक होता है। नाड़ी ११० से १२० तक होती है। थोड़े घंटे में ज्वर उतर जाता और शरीर स्वस्थ हो जाता है। परंतु १२ या २४ घंटे में फिर कँपकँपी हो आती है। परंतु फिर ताप कभी-कभी नहीं उतरता। ताप १०४ से १०६° होता है।

रोग के लक्षण दिखाई देने के तीन से सात दिन में शरीर के भिन्न-भिन्न भागों पर विद्रधि हो जाती है। निमोनिया, पैरीटोनाईटिस, हार्ट-डिज़ीज़ (हृद्रोग) तथा मस्तिष्क पर प्रभाव होने से मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—पुष्टिकारक भोजन देना चाहिए। 'स्ट्रैप्टो कोकस' जंतुओं को मारने के लिये 'सीरम' देना चाहिए। 'ओटो जैनिक वैक्ट्रीन' भी उत्तम है। विद्रधि को फाड़ देना चाहिए। चिकित्सक को बुलाना उत्तम है।

बत्तीसवाँ प्रकरण

सूतिकावस्था के रोग

(मूत्राशय का शोथ, रक्त-ग्रंथि से फुप्फुस-धमनी का अवरोध, स्तन-शोथ, उसके भेद, श्लीपद-सूतिकाजन्य उन्माद)

वायुः प्रकुपिता कुर्यात् संवाध्य रुधिरं च्युतम् ;
सूतायां हृच्छिरोवस्ति शूलं मकल्ल संज्ञितम् ।
अंगमर्दो ज्वरं कम्पः पिपासा गुरुगात्रता ;
शोफः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ।

मकल्लः प्रशममुपैति सूतिकानां पीतेन क्वथितजलोपयोजितेन ;
अभ्युद्यन्नवेयवशूकसंभवेन क्षारेण (यवक्षारेण) ध्रुवमथवाघृतान्वितेन ।

(गदानिग्रह)

सिस्टायटिस (मूत्राशय का शोथ)—यह गर्भावस्था तथा प्रसूति की अवस्था में होता है। जब यह बहुत बढ़ जाय, तब यह शोथ मूत्र-छेद के मार्ग से या मूत्राशय से वृक्क की ओर आगे-आगे को ओर बढ़ता जाता और भयानक हो जाता है।

कारण—कई बार यह सूतिका से पूर्व आरंभ होता है, और कई बार मूत्राशय में संक्रमण पहुँचने से होता है। प्रायः शलाका डालते समय संक्रमण फैलता जाता है। बाह्य अवयवों को साफ़ न करने से भी संक्रमण होता है।

लक्षण—प्रारंभ में क्षण-क्षण में मूत्र की इच्छा होती है, जिसके साथ दुःख होता है। एक या दो दिन तक पूय के कारण मूत्र में जलन होती है। प्रायः ज्वर होता है, नाड़ी की गति बढ़ जाती है।

संक्रमण या तो मूत्राशय तक सीमित रहता है, या वृक्क तक पहुँचकर उसको सुजा देता है। संक्रमण मूत्र-मार्ग, योनि-मार्ग और गर्भाशय तक पहुँच जाता और भयानक शोथ लाता है।

चिकित्सा—'बोरिक लोशन'-जैसे निर्बल जंतु-नाशक घोलों (कांटेस्ट फ़्लुड) से मूत्राशय को धो देना चाहिए। यदि प्रसूति के समय शोथ हो जाय, तो अच्छा करने का यत्न करना चाहिए। कारण, संक्रमण लगने का भय होता है।

पलमोनरी एमबोलस—शिशु-जन्म के पीछे कई बार गर्भाशय में या उसके समीप रक्त की गाँठ बँध जाती है। उसमें से कोई भाग टूटकर बहते हुए रक्त में मिलकर हृदय में चला जाता है। वहाँ से फुफ्फुस में जाकर अटक जाता है, जिससे रक्त-प्रणाली का मुख बंद होने से मार्ग रुक जाता है। यदि गाँठ बड़ी हो, तो बड़ी नस को रोक देता है, जिससे फुफ्फुस के बड़े भाग को रक्त नहीं मिलता।

कारण—प्रायः गर्भाशय के पूर्ण रूप से संकुचित न होने से ऐसा होता है। गर्भाशय की नसें संकुचित होने के स्थान पर बड़ी गाँठ और रक्त से भर जाती हैं।

लक्षण—इसके लक्षणों में बड़ा भेद है। जननी को श्वास-काठिन्य इतना हो जाता है कि ओषजन रक्त में मिलती नहीं है। हृदय ज़ोर से धड़कता है, निर्बल हो जाता है। साँस हिचकी के रूप में आती है। यदि रक्त की बड़ी प्रणाली में गाँठ हो, तो जननी थोड़ी देर में मर जाती है। यदि गाँठ छोटी हो, तो मृत्यु धीरे-धीरे होती है।

चिकित्सा—जननी की पीठ के पीछे सहारा रखकर उसे बैठा देना चाहिए। अथवा 'बैरागन' द्वारा सहारा देना चाहिए, जिससे श्वास सुगमता चल सके। 'सैलवोलेटाइल' बरांडी, मकरध्वज आदि उत्तेजक दवा देनी चाहिए।

मैस्टायटीस (स्तन-शोथ)—स्तन के अंदर दो मुख्य वस्तुएँ हैं। एक स्तन्य-ग्रंथि और दूसरी स्तन्य-प्रणाली। इनसे मिलकर छाती का एक भाग बनता है, जिसे 'पैरेन काइमा' कहते हैं। दूसरा भाग वह है, जो ग्रंथि और प्रणालियों के बीच के स्नायु हैं। इसको 'इंटरस्टियल टिसू' कहते हैं। यदि शोथ प्रथम भाग में हो, तो उसे 'पैरेंक काई मैटस मैस्ट्रायटिस' कहते हैं। और दूसरे में शोथ हो, तो उसे 'इंटरस्टियल मैस्टायटिस' कहते हैं।

कारण—कई बार दुग्ध-प्रणाली में सूक्ष्म जंतुओं के प्रविष्ट होने से या चूचुक पर दूध के सूख जाने से सूक्ष्म जंतु शोथ उत्पन्न कर देते हैं। यदि धात्री चूचुकों को साधारण आकार में लाने के लिये उँगलियों को स्पर्श करे, तो सूक्ष्म जंतु प्रविष्ट होते हैं। दुग्ध-ग्रंथियों का शोथ स्नायुओं तक फैल जाता है, या चीरे के कारण सीधे तंतु में आ जाते हैं। शिशु के मुँह आने पर दूध पिलाते समय संक्रमण लग जाता है।

लक्षण—स्तन्य-ग्रंथि और दुग्ध-प्रणाली का शोथ प्रथम लक्षण है। इस शोथ का आकार त्रिकोण होता है। नोक चूचुक पर होती है। प्रथम रोग एक प्रणाली में होता है, वहाँ से दूसरी समीपवर्ती नालियों में फैलता है। अतः दूर फैलते समय चौड़ाई फैलती जाती है। स्वस्थ और अस्वस्थ भाग स्पष्ट दिखाई देते हैं। प्रायः शोथ शनैः-शनैः शांत हो जाता है। यदि शोथ शांत न हो, तो आगे की ओर बढ़ता जाता है। और तंदुरुस्ती पर भी प्रभाव पड़ता है। ताप बढ़ जाता है। नाड़ी की गति बढ़ जाती है।

चिकित्सा—चूचुक में चीरा न फटे, इसलिये सदा साफ़ रखना चाहिए। शिशु को दूध पिलाने से पूर्व या पश्चात् स्तनों को साफ़ रखना चाहिए। यदि चूचुक न फटें, तो तुरंत 'कंपाउंड टिंचर और बैनजोयन' लगा देनी चाहिए। यदि जननी दूध न पिलावे, तो स्तनों

में से दूध निकालने का यत्न करना चाहिए । फटे स्तनों पर प्रतिदिन 'लैनोलीन' या 'हैजेलीन क्रीम' लगा देनी चाहिए । शिशु को पिलाने से पूर्व और पश्चात् 'बोरिक ग्लैसरीन' से धो देना चाहिए। जब स्तन न पिलावे, तब 'एसिड टैनिक ग्लैसरीन' लगानी चाहिए। यदि इससे आराम न हो, तो सिलवर नाईट्रेट का घोल लगाना चाहिए। फिर 'नीपल शील्ड' लगा देनी चाहिए।

जब शोथ 'इंटरस्टीसीयल' हो, तो छाती पर पोस्त के डोडों से सेंक करना चाहिए। और सेंक का वस्त्र दबाकर छाती पर बाँध देना चाहिए। फिर कसकर पट्टी बाँध देनी चाहिए । पट्टी बाँधने से पूर्व 'बैलेडोना ग्लैसरीन' का लेप कर देना चाहिए। 'विलायती नमक' का विरेचन दे देना चाहिए। विद्रधि हो, तो सेंक करना चाहिए। यदि पक जाय, तो चीरा दिलवा देना चाहिए।

'फ्लैगमेस्या आल्बा डोलनस' (श्लीपद)—'पाँव की एक या अधिक नसों में रक्त की गाँठ होने या पाँव की जल-वाहिनी शिराओं में कोई चीज़ रुक जाने से यह रोग उत्पन्न होता है।

कारण—किसी भी कारण से हृदय की गति धीमी होने से पाँव को रक्त नहीं मिलता। वे सूज जाते हैं। प्रसूति के पीछे पाँव की नसों में रक्त की कमी होना स्वाभाविक है। कारण, बढ़ा हुआ गर्भाशय वस्ति की नसों पर दबाव डालता है, जिससे रक्त पाँव तक नहीं आता। कई बार लसीका-प्रणालियों का विष इसका कारण होता है। इसके कारण पाँव की एक या अधिक नसों में पाँव सूजता है। नसों में रक्त-ग्रंथि पड़ जाती है।

लक्षण—शिशु-जन्म के दूसरे या तीसरे सप्ताह पीछे लक्षण स्पष्ट होते हैं । पाँव पर धीरे-धीरे हाथ फेरने से नसों में पड़ी गाँठ का पता चल जाता है। जाँव की यदि किसी बड़ी नस में गाँठ अटक जाय, तो उससे नीचे का भाग सूज जाता और हाथ फेरने से

दुखता है। यदि उस भाग पर हाथ से दबावें, तो एक मिनट तक वहाँ गड्ढा रहता है। इस गड्ढे को 'पिटींग' कहते हैं। यदि पाँव की शिरा पर प्रभाव होने से शोथ हुआ हो, तो वह कठिन होता है, तथा हाथ से दबाने पर गड्ढा नहीं पड़ता। चमड़ी श्वेत और चिक्कण हो जाती है। पाँव में प्रवाही बड़ी मात्रा में भरा होता है। यदि नसों में विष का प्रभाव हो, तो दुःख बहुत अधिक होता है। ज्वर १०१ से १०० तक रहता है। नाड़ी-संख्या बढ़ जाती है।

चिकित्सा—जननी को लेटाए रखना चाहिए। एक विरेचन देकर आँतों को साफ़ कर देना चाहिए। पोषक भोजन, मद्य, आयरन (लोहा), स्ट्रिकनीन देनी चाहिए। ठंडा और शीघ्र सूखनेवाला लोशन लगाना चाहिए *। दुःखित भाग पर तकिए से सहारा देकर ऊँचा कर देना चाहिए। और रुई लपेट देनी चाहिए। नस पर किसी प्रकार का दबाव नहीं आने देना चाहिए, जिससे ग्रंथि टूटकर अधिक हानि न करे। कई बार तो धात्री पाँव का एक साल तक उपयोग नहीं कर सकती। चिकित्सक को बुलाना आवश्यक है।

प्युरेपरल इंसैनेटी—शिशु को दूध पिलाते समय या सूतिका के समय एक प्रकार का पागलपन हो जाता है। कई बार यह कुछ ही दिनों तक रहता है, और कई बार मृत्यु तक रहता है।

यह उन्माद दो प्रकार का है—(१) मैलनकोलिया (अतिशय उदासी), (२) मेनीया (सनकी)।

कारण—अतिशय पानात्यय (मद्यपान), चिंता, प्रसूतकालीन संक्रमण से यह होता है।

---

* आयोनिया क्लोराईड (नौसादर) एक ड्राम
या मद्य ४ ड्राम
सिरका (विंजार) पानी १ औंस

लक्षण (मैलनकोलिया में)—रोगिणी अतिशय उदास, निराशावादिनी, विना कारण रुदन करती है। यदि विना कारण के वह क्रोधित हो, तो संभव है, वह उदासी या सूतिका विष के प्रभाव से या दोनो से ही प्रभावित हो। निद्रा नहीं आती। भिन्न-भिन्न प्रकार के बुरे ख़याल मन में आते हैं।

मेनिया—जननी की प्रगति का विशेष ध्यान रखना चाहिए। कोई नरम और कोई क्रोधालु हो जाती हैं। आकाशी विचार बनाती है। जन्म-कष्ट के कारण उदासी होती है। कई बार देर तक शिशु को दूध पिलाने से भी होता है। जन्म देने के १२ दिन पीछे इसके लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—शिशु की भाँति समझकर जननी की चिकित्सा करनी चाहिए। भोजन, मल-त्याग और मूत्र का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि बराबर मूत्र न आवे, तो आठ-आठ घंटे बाद शलाका से मूत्र निकाल देना चाहिए। रोगिणी को कभी अकेला नहीं छोड़ना चाहिए। आत्मघात या चोट से सदा बचाना चाहिए। शिशु को उससे दूर रखना चाहिए। कहीं शिशु को आघात न पहुँचा सके। जननी को पूर्ण पुष्टिकारक भोजन देना चाहिए। यदि वह स्वयं न ले, तो मुँह में नली डालकर देना चाहिए *।

---

* साधारणतः सब प्रसव के बाद तैल का पिचु योनि में रक्खा जाता है। यह तैल प्रायः कटु होता है। परंतु भगवान् धन्वंतरि एवं चरकाचार्य ने तैल की उत्तर वस्ति (बला तैल विशेष रूप से) कही है। तैल के निम्न-लिखित गुण होते हैं—

तैल-वस्ति देने से योनि में जीवाणु अपना संक्रमण नहीं फैला सकते। कारण—

पूर्वकथन—१०० रोगियों में ९० छ मास में स्वस्थ होते हैं। परंतु दूसरी प्रसूति में फिर भी आक्रमण होने का भय है ।

---

१. तैल चिकना होने से उनकी गति में बाधक होता है। अतः उनको भोजन नहीं मिल सकता।

२. गति न हो सकने के कारण वह अपना संक्रमण दूर तक नहीं पहुँचा सकते।

३. बाहर से भोजन-वायु न मिलने के कारण वे मर जाते हैं। जिस प्रकार फुप्फुस में यक्ष्मा का कृमि, चारों ओर कैलसियम की दीवाल के बन जाने से, भोजन न मिलने से, वहीं कैद होकर मर जाता है।

४. तैल में (विशेषतः सरसों के तैल में) सब कृमि मर जाते हैं, अतः सुश्रुत के व्रणागार अध्याय में सरसों का धुआँ करने का विधान है।

तैलप्रस्थं गवां मूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ;

......पिचुं दद्यात सर्वदा धारयेच्च तम् । (गदनिग्रह)

एरंडतैलेन परिप्लुता स्यात्कार्पासिपिण्डो यदि योनिमध्ये।

तैंतीसवाँ प्रकरण

'औब्स्ट्रैक्लोकल ऑपरेशन' (अस्थि-छेदन)

(पूर्वप्रसव, फौरसैप्स का उपयोग, वर्शन, शिशु को घुमाकर निकालना, क्रेनी ओटोमी, शिरच्छेदन, एंब्री ओटोमी, सीजीरीयन सैक्सन, हिस्टैरक्टमी, सींफसी ओटोमी, प्युबी ओटोमी, धात्री-कर्तव्य)

"नातः कष्टतमसस्ति यथा मूढगर्भा शल्योद्धरम् । अत्र हि योनी-यकृत्त प्लीहान्च विवरगर्भाशयानां मध्ये कर्म कर्त्तव्यम् । स्पर्शेन उत्कर्षणापकर्षणस्थानाऽपवर्त्तनोत्कर्त्तनभेदनछेदनपीडनऋजुकरणदारणानि चैकहस्तेन । गर्भ गार्भिणीं वा हिंसता तस्मादधिपतिमापृच्छय परं च यत्नमास्थायोपक्रमेत् ।"

जीवतेतु गर्भे सूतिकागर्भनिहरणे प्रयतेत । निर्हतुमशक्ये च्यवनान्मंत्रानुपश्रृणुयात् ।

> सचेतनं च शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् ;
> दार्यमाणे हि जननीमात्मानं चैव घातयेत् ।

ततः म्रियमाश्वाश्वमण्डलाग्रेणांगुलीशस्त्रेण वा शिरो विदार्य शिरः कपालान्याहृत्य शंकुना गृहीत्वोरसि कक्षायां वापहरेद् अभिन्ने शिरसि चाक्षिकूटे गण्डे वा । असप्रसक्तस्यांसदेशे बाहूं छित्वा दृतिमिवाततं वातपूर्णोदरं वा विदार्य निरस्यान्त्राणि शिथिलीभूतमाहरेत् । जघनसक्तस्य जघनकपालानीति ।

> यद्यदंग हि गर्भस्य तस्या सजति सद्भिषक् ;
> सम्यग् विनिर्हरेत् छित्वा रक्षेन्नारीं च यत्नतः ।

नापेक्षेत्तं मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः ;
स ह्याशु जननीं हंति निरुच्छ्वासं पशुं यथा ।

प्रसूति-अवस्था में कई वार अस्थि-छेदन करना पड़ता है । यह कार्य धात्री का नहीं, अपितु एक सुयोग्य चिकित्सक का है । परंतु धात्री के लिये यह आवश्यक है कि वह अस्थि-छेदन की अवस्थाओं से पूर्ण परिचित हो, जिससे समय पर काम आ सके, एवं सहायता दे सके ।

इंडैक्शन ऑफ् प्रीमेच्युर लेबर (पूर्वप्रसव)—कई वार शिशु समय से पूर्व ही प्रसवित हो जाते हैं । या प्रसव कराने की आवश्यकता होती है । शिशु को जीवन-रक्षा के लिये कई वार अस्थि-छेदन करना पड़ता है । परंतु यदि प्रसूति के ३० सप्ताह पूर्व शिशु की रक्षा के लिये अस्थि-छेदन किया जाय, तो व्यर्थ है ।

कारण—निम्न-लिखित कारणों में से यदि कोई भी कारण हो, तो प्रसव समय से पूर्व करवाना चाहिए—

१. संकुचित वस्ति के कई दर्शनों में ।

२. पूर्ण उदयन में जब कि प्रथम प्रसव में पूर्ण समय से पूर्व शिशु मर गया हो । जब तक मृत्यु का कारण 'सिफलिस' न हो ।

३. शिशु के उदयन से पूर्व यदि रक्त-स्राव हो ।

४. गर्भ-जल की मात्रा अधिक होने से जब गर्भाशय बड़ा हो जाय । हृदय पर दबाव पड़ने से अशुभ लक्षण हों ।

५. गर्भावस्था के रोग यथा तीव्र वमन, फुप्फुस और वृक्क के रोग एवं आक्षेपों में ।

विधि—पूर्व प्रसव की कई विधियाँ हैं; परंतु निम्न-लिखित उत्तम हैं—

१. शिशु को उलटकर नितंबों को नीचे लाकर गर्भ-पटल (आवरण-कलाओं) को फाड़ देना ।

२. योनि-मार्ग में पिचु रखने (पग्ग करने) से।

३. गर्भाशय में शलाका (कैथेटर) डालने से।

४. उँगलियों या अन्य धातु-निर्मित 'डायलेटर्स' से ग्रीवा का मुख चौड़ा करना।

वर्शन—कमल-दर्शन में शिशु को घुमाकर नितंब को नीचे लाकर तुरंत आवरण-कलाओं को तोड़ने की विधि प्रयोग करनी चाहिए। इस प्रकार करने से रक्त-स्राव रुक जाता और शिशु उत्पन्न हो जाता है।

योनि-मार्ग में पिचु भरना—अतिशय रक्त-स्राव में यह विधि व्यवहार करनी चाहिए। कमल-दर्शन में प्रथम विधि से ही सफलता मिल जाती है। रक्त-स्राव रुक जाता और प्रसूति आरंभ हो जाती है।

गर्भाशय में शलाका-प्रवेश—संकुचित वस्ति में यह विधि सर्वोत्तम है। यह विधि सबसे सरल है, परंतु इससे शीघ्र संक्रमण पहुँचने का भी भय है। अतः इसकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिये क्रमशः उत्तरोत्तर बड़े नंबर की (प्रथम १ नंबर फिर २, ३, ४ आदि) शलाका (गम एलास्टीक बुजी) प्रविष्ट करनी चाहिए। इस प्रकार करने से प्रसव या तो थोड़ी देर में हो जाता है, या कई दिनों तक भी नहीं होता। यदि जननी प्रसूति के तीव्र लक्षण बतावे, तो शलाका निकाल लेनी चाहिए। अथवा २४ घंटे तक रखने पर भी यदि परिणाम न दिखाई दे, तब निकाल लेनी चाहिए। यदि प्रसूति आरंभ न हुई हो, तो योनि-मार्ग डूश द्वारा साफ़ करके फिर शलाका प्रवेश करें। यदि इस प्रकार दो या तीन बार करने से भी सफलता न मिले, तो अन्य उपाय बरतना चाहिए। व्यवहार में लाने से पूर्व शलाकों को दस मिनट तक उबालकर 'कोरोसिव सबलीमेट' ($\frac{१}{५००}$) के घोल में कम-से-कम तीन घंटा रखना चाहिए।

ग्रीवा के मुख को फैलाना—कई बार जब गर्भाशय तुरंत खाली करना होता है, तब अप्राकृतिक उपायों से ग्रीवा का मुख चौड़ा करते हैं। यह क्रिया हाथ 'हायड्रैस्टीक डायलेटर्स' अथवा इसी क्रिया के लिये विशेष रूप से बनाए गए औज़ारों (डायलेटर्स) से की जाती है। फिर या तो चीमटे (गर्भ-शंकु) द्वारा अथवा 'पोडेलिक वर्शन' की क्रिया से शिशु को तुरंत बाहर कर लेते हैं।

'फ़ोरसिप्स' प्रसव-चीमटा (गर्भ-शंकु) का उपयोग—इसके द्वारा शिशु को पकड़कर बाहर खींचा जाता है।

चिमटा उपयोग करने के लक्षण—माता और शिशु-संबंधी कारणों से लक्षण दो भागों में बाँटे गए हैं—

माता-संबंधी

१. आकुंचनों के कारण भ्रूण-हृच्छब्द १६० से ऊपर या १२० से नीचे हो।

२. शिशु की गर्भाशय में तीव्र वेगवती हलचल।

३. शिरोदय में शिशु का मल गर्भ-जल के साथ आवे।

४. नाल बाहर निकल आवे।

शिशु-संबंधी

१. आकस्मिक रक्त-स्राव और कमल-दर्शन हो।

२. माता का तनाव।

३. हृदय, वृक्क या फुप्फुस के तीव्र रोग।

४. बाह्य मार्ग पर रक्त की गाँठ होना।

५. गर्भाशय के फटने का भय हो या प्रसूति की द्वितीयावस्था का अतिशय लंबा होना, जिससे जननी बेहोश हो जाय।

वर्शन (शिशु को घुमाकर बाहर लाना)—इसके दो भाग हैं—

(१) कैफलिक वर्शन (मस्तक-भ्रमण)—शिशु को उलटा करके सिर नीचे लाना।

(२) पोडेलिक वर्शन (चरण-भ्रमण)—शिशु को उलटा करके पाँव नीचे लाना।

मस्तक-भ्रमण—शिशु के तिर्यग् उदयन में या वस्ति के कारण ऐसा करना पड़ता है।

विधि—दोनो हाथ पेड़ू की दीवार पर रखकर गर्भ को फिराने से या एक हाथ पेट पर और दूसरा योनि-मार्ग में रखकर शिशु को घुमाने से यह क्रिया हो सकती है। प्रथम विधि को 'एक्सटर्नल वर्शन' (बाह्य घुमाव) और द्वितीय को 'कंवाइंड' या 'वाईपोलर' कहते हैं।

पोडलिक वर्शन—आवश्यकता (१) सिर के भिन्न-भिन्न उदयनों में यथा चेहरे, ललाट अथवा पैरापटल (पार्श्व) भाग का दर्शन, (२) नाल का नीचे आना, (३) कमल का दर्शन, (४) वस्ति-प्रदेश का बेडौलपन, (५) गर्भाशय में तिर्यक् उदयन।

(१) विधि—यदि पाँव लाने की आवश्यकता (फ़ुटलिंग वर्शन) न हो, तो बाहर से ही दोनो हाथों द्वारा 'एक्सटर्नल वर्शन' कर सकते हैं। (२) बाहर से तथा अंदर से डालकर 'कंवाइंड' वर्शन कर सकते हैं। (३) गर्भाशय में केवल एक हाथ डालकर क्रिया करने को 'इंटर्नल' वर्शन कहते हैं।

प्रथम विधि—उस समय उत्तम है, जब पेट की भित्ति ढीली हो, गर्भ-पटल फटे न हों।

द्वितीय विधि—उस समय उत्तम है, जब उँगलियों के जाने योग्य ग्रीवा का मुख खुला हो।

तृतीय विधि—उस समय उत्तम है, जब ग्रीवा में सारा हाथ जा सके, इतना ग्रीवा का मुख खुला हो।

क्रेनी ओटोमी (सिर-भेदन)—इसमें सिर को तोड़कर शिशु को बाहर किया जाता है।

आवश्यकता—सिर के तोड़ने से शिशु की मृत्यु अवश्यंभावी है। अतः यह तभी करना चाहिए, जब—

(१) शिशु की मृत्यु हो चुकी हो। (२) यदि जननी 'प्युबरोटोमी' या 'सीजॉरेन सैक्सन' (शल्य कर्म) करवाने को तैयार न हो। विशेष रूप से निम्न-लिखित समय आवश्यकता पड़ती है—

(१) यदि शिशु मर गया हो, और बिना सिर फोड़े सिर निकालने में माता के जीवन का संदेह हो, तो—

(२) यदि शिशु जीवित हो, परंतु सिर का क़द छोटे किए बिना यदि नीचे वस्ति में न आ सके, एवं माता शल्य-कर्म अपने ऊपर करवाने को तैयार न हो, तो—

एंब्रीओटोमी—शिशु के शरीर के भागों को काटकर छोटा करना। इसमें निम्न-लिखित भेद हैं—

(१) डीकपीटेशन (सिर-छेदन)—ग्रीवा से काटकर सिर को धड़ से पृथक् करना—इसकी कब आवश्यकता होती है? जब स्कंध-दर्शन में अन्य सब उपाय निष्फल हों या चरण-भ्रमण प्रयोग न हो सके, या इसके करने में भय हो, या युगल प्रसूति में जब प्रथम आनेवाले शिशु का सिर दूसरे में फँसना संभव हो।

(२) एवी सरेशन (छाती-भेदन)—शिशु की छाती या पेट चीरकर बीच के अवयवों को बाहर निकाल लेना।

आवश्यकता—शिशु का क़द जन्म लेते समय बाधक हो, स्कंध-दर्शन में जब हाथ गर्दन को छुटाने के लिये पहुँच न सकता हो, तब करना चाहिए।

(३) कली डोटोमी (अक्षिकास्थि का काटना)—जब स्कंध बाधक हो रहे हों, तब यह प्रयोग करने से चौड़ाई कम कर सकते

हैं। जब स्कंध फँस जायँ, और हाथ को नीचे लाकर शिशु को नीचे खींचकर जन्म न दे सकें, तब इस अस्थि को काट देना चाहिए।

'सीजीरीयन सैक्शन' (पेट चीरकर शिशु निकालना), 'हिस्टरैकटैमी' (अस्थि-छेदन करके गर्भाशय निकालना), 'प्युवी ओटोमी' (प्युवीस का संधि-छेदन), 'सिफसी ओटोमी' (विटप-छेदन) *।

माता का पेट चीरकर, गर्भाशय का छेदन करके शिशु को निकालना, गर्भाशय का सीना और गर्भाशय को पुनः पेट में रख देने को 'सोजीरीयन सैक्शन' कहते हैं।

विटप से दोनों 'इनोमीनेट' को पृथक् करने को 'प्युवी ओटोमी' कहते हैं। इससे वस्ति के व्यास बढ़ जाते हैं। यदि संकोच कम हो, तो शिशु के निकलने के लिये पर्याप्त स्थान मिल जाता है। अतः संकुचित वस्ति में उपयोगी है।

विटप-संधि को जोड़नेवाले अस्थि-बंधनों को काटने से 'ईनोमोनेट' अस्थि के व्यास बढ़ जाते हैं।

इनमें से 'प्युवी ओटोमी' को अधिक पसंद किया जाता है। कारण, वह सरल एवं कम आपदामय है।

धात्री-कर्तव्य

जब अस्थि-छेदन का निश्चय हो जाय, तब कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनको पूर्ण करना धात्री का काम है। वे निम्न-लिखित हैं—

(१) रोगिणी को शल्य-कर्म के लिये तैयार करना—'प्रसूति की तैयारी' के प्रकरण में वर्णित सब बातों का ध्यान रखना चाहिए। मल निकालने के लिये गुदा से वस्ति देनी चाहिए। बाह्य भागों को

* चूँकि धात्री यह कर्म नहीं करती, यह चिकित्सक का कर्तव्य है, अ : यहाँ विस्तार से वर्णन नहीं किया गया।

पूर्ण रीति से धोकर जंतु-रहित करना चाहिए। मूत्राशय को ख़ाली कर देना चाहिए। पहने हुए वस्त्र ख़राब न हों, अतः उनको समेट दे। यदि बेहोश करने की दवा देनी हो, तो कृत्रिम दाँत निकाल देना चाहिए।

(२) हथियारों को तैयार करना—सब शस्त्रों को पानी, साबुन और लाईजोल घोल में ख़ूब भले प्रकार घिसकर पानी में ५ से १० मिनट तक उबालना चाहिए। फिर पानी से निकालकर औज़ार रखने की थाली में हथियारों को रख लें। यदि थाली न हो, तो गहरे पात्र में रखकर पानी में जंतु-नाशक दवा डाल देनी चाहिए। जो शस्त्र शिशु-जन्म के पीछे बरते जाते हैं—यथा सीवन के सीने के लिये सुई आदि—वे पृथक् रखने चाहिए। सुई में प्रथम से ही धागा डाल देना चाहिए। आयडोफ़ार्म गॉज़ सदा शीशी में रहना चाहिए। रबर का दस्ताना सदा उबालकर जंतु-नाशक घोल में रखना चाहिए। शस्त्र ऐसे स्थान पर रखने चाहिए, जहाँ से जननी देख न सके, अन्यथा घबरा जायगी।

(३) ऑपरेशन-रूम—शल्य-कर्म के लिये सब वस्तुएँ सदा ऑपरेशन-रूम में तैयार रहनी चाहिए। चीज़ें पृथक्-पृथक् रहनी चाहिए, जिससे झमेला न पड़े। प्रकाश सीधा रोगिणी के बदन पर पड़ता रहना चाहिए। रोगिणी के बिस्तर के नीचे एक 'लैदर क्लाथ' का टुकड़ा रख देना चाहिए। उसके नीचे पानी के लिये बाल्टी। चिकित्सक के वाम हाथ पर टेबुल या स्टूल पर दबाव बढ़ाने के लिये पानी का पात्र लटका रहना चाहिए। शस्त्र दक्षिण हाथ पर रकाबी में रखना चाहिए। यदि जननी वाम पार्श्व पर लेटी हो, तो शस्त्र वाम हाथ पर रखने चाहिए। पानी का पात्र सामने रखना चाहिए। एक बड़ी चिलमची में हाथ धोने के लिये 'लाईजोल' का घोल एवं सादा पानी या 'कोरोसीव सब्लीमेट' का घोल रखना चाहिए। एक

पात्र १००° फ़० के गरम पानी से भरा और दूसरा ठंडे पानी का रखना चाहिए। पीने की दवाइयाँ ऊपर रखनी चाहिए।

(४) रोगिणी को किस अवस्था में लेटाना चाहिए—रोगिणी को वाम पार्श्व पर या किनारे पर या बिस्तर पर पीठ के बल लेटाना चाहिए, जिससे 'डौर्सल कौसवैड' अवस्था में आ जाय। प्रायः प्रसूति के समय या प्रसव-चिमटे के लिये बिस्तर की किनारी पर सुलाना चाहिए। शेष अवस्थाओं में 'कौसवैड' अवस्था में सुलाना चाहिए। प्रसव-चिमटे के समय वाम पार्श्व पर किनारे पर लेटाकर नितंब को पलंग की किनारी के बाहर खींचकर उसको पेट के ऊपर मोड़ देना चाहिए। उसको इस प्रकार लेटाना चाहिए, जिससे उसका वाम स्कंध और सिर पलंग के बीच में और नितंब पलंग के बाहर रहे। दूसरे शब्दों में 'कौसवैड' अवस्था में सुलाना चाहिए। परंतु भेद इतना है कि पीठ के स्थान पर वह पार्श्व (बाज़ू) पर होती है।

जब सब चीज़ें तैयार हों, और चिकित्सक प्रसव-चिमटे का उपयोग करने लगे, तब धात्री को चाहिए कि वह चिकित्सक के सामने मुँह रखकर, रोगिणी की ओर पीठकर पलंग पर बैठे। और रोगिणी का दक्षिण पाँव पकड़कर जिसमें धात्री का वाम हाथ घुटने के पीछे रहे, और दक्षिण हाथ जंघा के ऊपरी भाग के पीछे रहे, जिससे बाह्य गुप्त भाग और सीवन स्पष्ट दिखाई दे। यदि प्रसव-चिमटे के समय अधिक खिंचाव की आवश्यकता पड़े, तो रोगिणी को गिरने से बचाने के लिये उलटे पार्श्व में दबाव रखना चाहिए। इसके लिये अपना दक्षिण हाथ दक्षिण जंघा और पेट के बीच में रखना चाहिए।

'डौर्सल कौसवैड' अवस्था में जननी पीठ के बल पर रहती है। नितंब बिस्तर की किनारी से थोड़े बाहर रहते हैं। इसको सुगम करने के लिये बिस्तर के पार्श्व में कुर्सी रखकर उस पर जननी

का पाँव रखवा देना चाहिए। फिर धात्री पलंग पर बैठकर (रोगिणी के पास) कुर्सी से सरकते हुए पाँव को बचावे। यदि 'क्रोवर्स क्रुच' मिल जाय, तो उत्तम है।

दो तौलियों को गाँठ से जोड़कर एक सादा क्रुच (सहरा) बना सकते हैं। एक सिरा रोगी के घुटने के पास बाँधकर और दूसरा ग्रीवा के पीछे से लाना चाहिए, जिससे एक झोली बन जाय। और दूसरा सिरा दूसरे घुटने के पास बाँध देना चाहिए। तौलिए पूरे खींचकर बाँधने चाहिए, जिससे जाँघ पेट पर मुड़ी रहे। घुटनों को दूर-दूर रखना चाहिए।

यदि संकुचित वस्ति की भाँति कभी बड़ी वस्ति में जननी को थोड़े समय के लिये रखना पड़े, तो 'वोल्चर स्थिति' में रखना चाहिए। इस स्थिति में जननी को पीठ के बल रखना चाहिए। नितंब पलंग से नीचे रहें, और पाँव बिना सहारे के लटकते रहने चाहिए। शरीर का भार सारा पीठ की पिछली हड्डी (लंबर वर्टीब्रा) पर रहता है। निचले भार के कारण शेष भाग 'सैक्रो ईलयक' संधि पर झूलता रहता है। इस अवस्था में विटप सदा बहुत नीचे रहता है, जिससे वस्ति के तीर का अग्रिम-पश्चिम व्यास बढ़ जाता है। इस व्यास की लंबाई $\frac{1}{2}$ इंच बढ़ जाती है।

परिशिष्ट

इस पुस्तक में 'कैंसर' (अर्बुद) का वर्णन आवश्यक है। उसका वर्णन यदि न किया जाय, तो यह पुस्तक आधी ही रह जाती है।

गर्भाशय का अर्बुद एक बड़े धोके की वस्तु है। प्रायः प्रारंभ में कोई लक्षण नहीं होता, अतः रोगिणी का ध्यान इस ओर नहीं जाता। परंतु जब अर्बुद बढ़ जाता है, तब जननी का ध्यान आकर्षित होता है। उस समय चिकित्सक की सहायता का यत्न करती है। परंतु इस समय रोग चिकित्सक के हाथ से निकल जाता है। उस समय धात्री भी एक मित्र चारी के संबंध से कार्य आ सकती है। अतः आवश्यक है कि धात्री को उसके लक्षण कुछ-न-कुछ ज्ञात होने चाहिए।

गर्भाशय में अर्बुद दो स्थानों से आरंभ होता है—१. गर्भाशय-गुहा से और २. ग्रीवा-मुख के आगे से। जहाँ से भी आरंभ होता है, वहाँ से आस-पास के तंतुओं में फैलता है, एवं वहाँ से शिराओं तथा लसीका-वाहिनियों द्वारा हृदय या फुफ्फुस में जाकर और भी भयानक हो सकता है। यदि वह इस प्रकार फैल जाय, तो असाध्य होकर शीघ्र मृत्यु का कारण बनता है।

अर्बुद जहाँ भी प्रारंभ में आरंभ हो, तो प्रथम लक्षण योनि-मार्ग में से बहता प्रवाही है। यह प्रवाही या तो शुद्ध रक्त होता है या मासिक धर्म के रंग का होता है या रक्त और पानी-मिश्रित होता है। इसमें या तो गंध नहीं होती या बहुत बुरी होती है। लगातार बहता है या ठहर-ठहरकर आता है। थोड़ा या अधिक मात्रा में आता है। २० वर्ष की आयु के पीछे होता है। प्रायः ४० वर्ष के या ५० वर्ष में 'मैनापोज़' के समय होता है।

प्रायः योनि-मार्ग से ५० वर्ष में होनेवाले प्रवाही को स्वाभाविक समझकर चिकित्सा नहीं कराते, या नासूर न समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करवाते। कारण—(१) लोगों का विश्वास है कि नासूर में दर्द होती है, परंतु इसमें दर्द का अभाव होता है। पीछे जब बढ़ जाता है, तब दर्द होना संभव हो सकता है। (२) लोगों का विश्वास है कि 'मैनापोज़' के समय रक्त बार-बार आता है, वह कोई भयानक नहीं। परंतु स्वस्थ जननी में ऋतु शनैः-शनैः बंद हो जाता है, उसमें कोई रक्त नहीं आता।

इस अवस्था में धात्री को चाहिए कि—

(१) रक्त बंद करने का कोई उपाय (पिचकारी आदि) न करे। कारण, वह निष्फल है।

(२) अंदर क्या है ? यह पता लगाने का यत्न नहीं करना चाहिए। अतः योनि-मार्ग-परीक्षा निष्फल है। धात्री को चाहिए कि चिकित्सक को बुलाकर या स्वयं जननी को इस रोग के विषय में इसके परिणामों तथा इसकी सावधानी के विषय में सावधान कर देना चाहिए।

सहायक पुस्तकों की सूची

१. सुश्रुत

२. चरक

३. शॉर्ट प्रैक्टिस ऑफ़् मिड्विफ़्री — जैक्ट

४. मैन्वल ऑफ़् मिड्विफ़्री — ,,

५. टैक्स्ट बुक ऑफ़् मिड्विफ़्री — जौहंस्टन

६. प्रैक्टिकल ऑवेस्टे ट्रिक्स — ऑक्सफ़ोर्ड-युनिवर्सिटी

७. दाई माटे सुवा वढनो अभ्यास — गुजराती

८. धात्री-शिक्षा — बँगला

९. सुश्रुत-टीका (हारायणचंद्र)

१०. गदनिग्रह (यादवजी-त्रिकमजी आचार्य)

स्त्रियोपयोगी कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

प्रसूति-तंत्र

लेखक, प्रो० डॉक्टर रामदयाल कपूर एम्० बी०, बी० एस्०, प्रोफ़ेसर मेडिकल-कॉलेज, गुरुकुल-युनिवर्सिटी, हरद्वार।

हिंदोस्तान में प्रतिवर्ष लाखों बच्चे केवल दाइयों और माताओं की असावधानी से मर जाते हैं। गर्भाधान से लेकर जन्म-समय तक जिन-जिन बातों का माता को ध्यान रखना चाहिए, वे अभी हमारे देश की माताओं को बहुत कम मालूम रहती हैं। इसी कारण उन्हें ग र्भ-काल तथा प्रसूति-गृह में सैकड़ों रोग आ घेरते हैं, और अंत में प्रसूत आदि कठिन रोगों का उन्हें शिकार होना पड़ता है। हिंदी में अब तक इस विषय पर जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वे वैद्य लोगों की ही लिखी हुई थीं। वैद्यक और अँगरेज़ी-प्रणाली, दोनो के जानने-वाले किसी भी व्यक्ति ने इस विषय पर अब तक क़लम नहीं उठाई थी। इसीलिये आयुर्वेद-महाविद्यालय के प्रोफ़ेसर तथा लखनऊ-मेडिकल-कॉलेज के सम्मानित डॉक्टर श्रीरामदयालजी से लिखवाकर हमने यह वृहद् ग्रंथ प्रकाशित किया है। इसमें पुरुष और स्त्रियों के प्रेम का मूल, उनकी जननेंद्रियों का वैज्ञानिक विवरण, गर्भाधान की क्रिया के नियम, गर्भ-काल के नियम तथा रोग और उपचार, प्रसूति-काल की कठिनाइयाँ और उनके उपाय आदि सभी बातों का सचित्र वर्णन है। १६० से भी अधिक अलभ्य चित्रों द्वारा सुसज्जित इस पुस्तक को संतान-प्राप्ति, गर्भ में पुत्र और पुत्री की पहचान और निर्विघ्न संतानोत्पत्ति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ना चाहिए।

मेडिकल-कॉलेजों में पाठ्य-पुस्तक बनाने योग्य यह 'प्रसूति-तंत्र' वैद्यों और डॉक्टरों को सदा अपने पास रखना चाहिए। दाइयों और स्त्रियों के लिये तो यह ग्रंथ एक दम अनिवार्य है। गुरुकुल में पढ़ाया भी जाने लगा है। मूल्य २॥), ३)

भारतीय स्त्रियाँ

श्रीमती महारानी साहिबा बड़ोदा की The Position of Women in Indian Life के आधार पर लिखित। लेखक, बा० रामचंद्र वर्मा। स्त्री-समाज के कतिपय जटिल प्रश्नों का महारानी साहिबा ने इसमें कैसा निराकरण किया है, यह पुस्तक पढ़ने से पता लगेगा। इसमें निम्न-लिखित विषयों पर योग्यता, सरलता और सफलता-पूर्वक विचार किया गया है। स्त्रियों का आंदोलन, खेती-बारी, घरों की सजावट, कला और शिल्प, परोपकारिता के कार्य, गृह-प्रबंध, निरीक्षण-कार्य, सहयोग या समवाय-सिद्धांत, महाजनी या लेन-देन, परोपकारिणी संस्थाएँ, मितव्यय, परिश्रम और पारिश्रमिक, उद्धार-कार्य, स्त्रियों के हित और जापान की स्त्रियाँ, गृह तथा देश-संबंधी कार्यों में स्त्रियाँ किस प्रकार और कितना योग दे सकती हैं—फलतः देश में नई जागृति पैदा करने में उनका कितना हाथ है और हो सकता है—आदि बातें भारतवर्ष की प्रत्येक स्त्री को अवश्य जाननी चाहिए। अभी तक हिंदी में ऐसी पुस्तक कोई भी नहीं निकली। इस पुस्तक से एक बड़े अभाव की पूर्ति होती है। प्रत्येक घर में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। इसमें महारानी साहिबा का चित्र भी है। पुस्तक के कवर पर भी रंगीन चित्र है। मूल्य केवल १), १॥)

देवी द्रौपदी

लेखक, कविवर पं० रामचरित उपाध्याय। यह पुस्तक देवी द्रौपदी का जीवन-चरित है, आख्यायिका के ढंग पर लिखा गया है, जिससे

इसके पाठ से उपन्यास, प्राचीन इतिहास और जीवन-चरित तीनों के पढ़ने का आनंद आता है। यों तो यह पुस्तक समान रूप से सबके लिये शिक्षा-प्रद है, पर स्त्रियों के लिये यह पुस्तक अमूल्य रत्न है। इस नवीन संस्करण में कई रंगीन चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ।=), ॥)

स्त्रियों के व्यायाम

लेखक, विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इंद्र'। इस पुस्तक में 'स्त्रियों के व्यायाम' से संबंध रखनेवाली अनेक क्रियाओं का उल्लेख है। व्यायाम की आवश्यकता, घरेलू व्यायाम, प्राणायाम, व्यायाम कितने प्रकार का होता है, डंबेल का कार्य, विविध व्यायाम इत्यादि बातों पर भले प्रकार से प्रकाश डाला गया है। स्त्रियों को व्यायाम की कितनी आवश्यकता है, हमारी माताओं और बहनों का स्वास्थ्य दिनोंदिन कैसा क्षीण होता जा रहा है, इन सब बातों का अच्छी तरह विवेचन किया गया है। पुस्तक एक बार हाथ में लेने से छोड़ने को जी नहीं चाहता। बढ़िया, सुंदर काग़ज़। प्रायः ३० चित्र। मूल्य १), १॥)

नारी-उपदेश

लेखक, श्रीयुत गिरिजाकुमार घोष। इस सचित्र पुस्तक में प्रामाणिक ग्रंथों और शास्त्र-पुराणों में से स्त्रियों के योग्य शिक्षाएँ संगृहीत की गई हैं। स्त्रियों के लिये जितनी बातें आवश्यक हैं, सब इसमें आ गई हैं। भाषा अत्यंत सरल और मधुर है। पढ़ने में रोचक है। इसका पहला संस्करण हाथोंहाथ बिक गया। द्वितीयावृत्ति। मूल्य ।=), ॥)

सती सावित्री

लेखक, अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि'। इस विषय की और भी पुस्तकें निकल चुकी हैं। पर उनमें सावित्री को देवी-रूप

मानकर उनकी जीवनी लिखी गई है, जिसे पढ़कर यह भावना उठती है कि यदि वह देवी हैं, उन्होंने ऐसा अलौकिक काम किया है, तो उसमें उनकी क्या तारीफ़ है, देवी तथा देवतों को तो कोई काम कठिन ही नहीं। पर यह पुस्तक एक मामूली कन्या किंवा बालक की दृष्टि से लिखी गई है, जिसके पढ़ने से कोमल हृदय पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। यह पुस्तक कुमारी कन्याओं और विवाहिता स्त्रियों तथा बड़े-बूढ़ों के पढ़ने के लिये अपूर्व, शिक्षाप्रद और सर्वोत्तम है। इसमें सती सावित्री के, जिनके नाम पर घर-घर स्त्रियाँ वट-सावित्री का व्रत करती हैं, पतिव्रत-धर्म का वर्णन है, जिसके कारण स्वयं यमराज को भी हार माननी पड़ी थी—सावित्री ने अपने पति को मौत के पंजे से छुड़ा लिया था। ऐसा कौन भारतीय परिवार होगा, जो अपनी बहू-बेटियों और वनिताओं को सावित्री के पतिव्रत की कथा न पढ़ाना चाहता हो। पुस्तक का तिरंगा कवर आँखों के आगे से हटाने को जी नहीं चाहता। मूल्य ॥), रंगीन जिल्द ॥।), राज-संस्करण सजिल्द १)

नल-दमयंती

इसे पढ़कर बच्चे जान जायँगे कि जुआ खेलने का फल कैसा बुरा होता है, और सती की रक्षा भगवान् किस प्रकार करते हैं, इत्यादि। कथानक में नवीनता, शैली में रोचकता, भाषा में मिठास और सरलता, सब एक साथ देख लीजिए। पृष्ठ-संख्या १९६; मूल्य ॥=), सजिल्द १=)